अपश्चिम तीर्थंकर महावीर

(भाग-द्वितीय)

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.)

❖ अपश्चिम तीर्थंकर महावीर
(भाग – द्वितीय)
प्रेरणा स्रोत– आचार्यश्री रामेश

❖ प्रथम संस्करण : सितम्बर, 2008 3100 प्रतियाँ

❖ अर्थ सहयोगी
श्री सुजानमलजी कर्नावट, बैंगलोर

❖ मूल्य : 40/– (चालीस रु. मात्र)

❖ प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.)
दूरभाष : 0151–2544867, 3292177, 2203150 (फैक्स)

❖ आवरण सज्जा : विष्णु व्यास, बीकानेर

❖ मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस
मोहता चौक, बीकानेर (राज.)
फोन : 9314962474/75

प्रकाशकीय

भारतीय संस्कृति अपने भीतर अनेक धर्मों को समाहित करने वाली है। अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय, अनेक जातियों के मध्य जैन धर्म का विशिष्ट एवं प्रभावशाली स्थान है। जैन धर्म अनादिकाल से करुणा, दया, वात्सल्य, स्नेह का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी धारा को निर्मल एवं पवित्र बनाकर प्रवाहित कर रहा है। जैन धर्म में अनेक सम्प्रदायों के मध्य श्री साधुमार्गी जैन संघ का विशिष्ट स्थान है। श्री साधुमार्गी जैन संघ को इतिहास के स्तर पर आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर चरम तीर्थंकर भगवान महावीर से जोड़ा जा सकता है। इन सभी तीर्थंकरों ने अपने समय में विशुद्ध धर्म अर्थात् समता धर्म, शुद्ध आत्मधर्म, अहिंसा, संयम, तप, वीतराग धर्म का प्रवर्तन किया और तत्कालीन युग में व्याप्त विकृतियों और विषमता के खिलाफ विचार और आचार दोनों स्तरों पर क्रान्ति कर सच्ची साधुता, सज्जनता, सात्विकता का मार्ग प्रशस्त किया। उसी परम्परा की विचार ऊर्जा और आचारनिष्ठा को अपने में समाहित किये हुए श्री साधुमार्गी जैन संघ आज भी जीवन्त है।

वर्तमान में शास्त्रज्ञ, तरुण तपस्वी, प्रशान्तमना श्रमण विभूति संयम सरोवर के राजहंस कोहिनूर दीप्ति मणी आचार्य–प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. अपनी अद्भुत प्रतिभा और प्रखर मेघा के साथ संघ का कुशल नेतृत्व कर रहे हैं। जिनके प्रवचनों में जवाहराचार्य की झलक, अनुशासन में गणेशाचार्य की झलक एवं जिनके जीवन में नानेशाचार्य की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। शास्त्रीय धरातल और आगमिक ग्रन्थों के तलस्पर्शी अध्ययन के साथ ही आचार्य श्री रामेश संयमी क्रिया के प्रति भी अत्यन्त सजग है। तिन्नाणं और तारयाणं पद को सार्थक करते हुए आचार्य श्री रामेश अपने साथ–साथ अपनी शिष्य मंडली के शुद्धाचार हेतु सदैव सजग रहते है। अपने उज्ज्वल एवं पवित्र जीवन तथा शास्त्र के दिशा–निर्देश को अपने जीवन में ढालकर पूज्य आचार्यदेव ने जनमानस के समक्ष एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। ज्ञान और क्रिया के बेजोड़ संगम आचार्यदेव अपने श्रावक समुदाय को भी ज्ञानवान, चारित्रवान एवं क्रियावान बना देखना चाहते हैं।

शुद्ध साध्वाचार के प्रतिबिम्ब आचार्यदेव सम्पूर्ण जनमानस के कल्याण एवं उत्थान की भावना को लेकर ग्राम–ग्राम, नगर–नगर में पदविहार करते हुए धर्म की ज्योत को प्रज्वलित कर रहे हैं। हुक्मसंघ के इतिहास में प्रथम बार उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड की धरा को पावन करते हुए पूज्य आचार्यदेव के चरण भारत की महानगरी कोलकाता की ओर बढ़े। जहाँ पर जन–जन को धर्म का बोध देते

हुए वर्तमान में हावड़ा में चातुर्मास हेतु विराज रहे है। कुछ वर्षों पूर्व भगवान महावीर के सिद्धान्तों एवं जीवनशैली पर कुछ लेखनी की आवश्यकता महसूस हुई। हमारे संघ के वरिष्ठ सुश्रावक श्रीमान् पीरदानजी पारख तथा श्रीमान् हरीसिंहजी रांका ने इस विषयक अपनी जिज्ञासाएँ भी प्रस्तुत की।

इसका शोध करते हुए विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म.सा. ने चूर्णि आदि प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए भगवान के तपपूत जीवन को अपनी लेखनी से उकेरा तथा अपश्चिम तीर्थंकर महावीर भाग-1 का प्रकाशन हमारे ही संघ के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष संघरत्न शासन गौरव श्रीमान् सुजानमलजी कर्णावट परिवार, बैंगलोर के सौजन्य से हुआ। इसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तक की अत्यधिक मांग रही तथा विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म. सा. ने गुरुकृपा एवं अथक परिश्रम से अपश्चिम तीर्थंकर महावीर भाग-2 का भी कार्य सम्पूर्ण किया। उसी का परिणाम है कि यह द्वितीय भाग आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसके प्रकाशन के लिये भी श्रीमान् सुजानमलजी कर्णावट ने अपनी उदारता का परिचय दिया है, एतदर्थ संघ आपका आभारी है। श्री कर्णावट परिवार निश्चित रूप से संघ एवं समाज की अद्वितीय सेवा कर रहा हैं। श्री साधमार्गी जैन संघ का परम सौभाग्य है कि आचार्यदेव अपने सूक्ष्म शास्त्रीय विवेचनों से साधु-साध्वी समाज में ज्ञान की अलख जगा रहे हैं। उन्हीं में से एक विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म.सा. का वैदुष्य एवं कौशल इस ग्रन्थ के सहज, सुगम्य है।

विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म.सा. ने अपनी सांसारिक अवस्था में संस्कृत में एम.ए. प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की थी। दीक्षा पश्चात् स्व. आचार्य श्री नानेश के चरणों में आगमों का तलस्पर्शी ज्ञान किया। इस हेतु हम विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म.सा. के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

हालांकि भगवान महावीर का जीवन सागर के समान गहरा, आकाश के समान विशाल एवं कोहिनूर हीरे के समान उज्ज्वल है, फिर भी उनके जीवन एवं उनकी विहार यात्रा तथा संयमी चर्या के कुछ महत्त्वपूर्ण भागों को इस पुस्तक में अत्यन्त कुशलतापूर्वक उभारा गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रकाशित करने में पूर्ण सावधानी बरती गई है, फिर भी कोई त्रुटि हो तो हम क्षमाप्रार्थी है।

मदनलाल कटारिया
संयोजक-साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

समर्पण

श्रमण संस्कृति की प्रतिनिधि धारा साधुमार्ग में ज्योतिर्धर,
क्रांतदर्शी और शांतक्रान्ति के सूत्रधार आचार्यों की
ज्योतिरत्न मालिका में वर्तमान शासननायक,
जिनशासन प्रद्योतक, सिरीवाल प्रतिबोधक,
मेरे परम आराध्य, अविचल आस्था के केन्द्र
''आचार्यप्रवर 1008 श्री रामलालजी महाराज सा.''
को सादर समर्पित

– साध्वी विपुलाश्री

अर्थ सहयोगी परिचय

नए शब्दों के साथ नूतन वाक्यों में शास्त्रोक्त निहित प्रेरक प्रसंगों के प्रस्तुतिकरण की एक अद्वितीय कृति है– **"अपश्चिम तीर्थंकर महावीर"** भाग–2 इस अनुपम कृति के अर्थ सहयोगी अनन्य निष्ठावान, परम गुरुभक्त, सेवारत, साधनाशील श्री सुजानमलजी कर्नावट एवं उनकी धर्मपत्नी अखण्ड सौभाग्यवती श्रीमती गुणमालाजी कर्नावट हैं। पूर्व में भी "अपश्चिम तीर्थंकर महावीर" भाग–प्रथम के प्रथम व द्वितीय संस्करणों का मुद्रण भी आपके अर्थ सौजन्य से ही हुआ है।

मध्यप्रदेश की औद्योगिक नगरी इन्दौर में जन्मे श्री सुजानमलजी कर्नावट आत्मज श्री प्यारचंदजी कर्नावट ने व्यावसायिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में महनीय कर्मठ कार्यों से न केवल कुल परम्परा को यशस्वी बनाया है, वरन् अपने उज्ज्वल कृतित्व से जिनशासन को भी गौरवान्वित किया है।

हुक्मगच्छ के परम प्रतापी जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. से लेकर वर्तमान आचार्यप्रवर श्री रामलालजी म.सा. के शासन के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित कर्नावट परिवार धर्मसंघ की सभी प्रवृत्तियों में सक्रिय योगदान देने के लिए सदा ही अग्रसर रहा है।

उन्हीं श्रावकरत्न श्री सुजानमलजी कर्नावट के आदर्शपद चिन्हों का पदानुसरण करने वाले युवा हृदय श्री किशोरकुमाजी–श्रीमती नन्दाजी तथा दीपककुमारजी–श्रीमती रेखाजी पुत्र एवं पुत्रवधुएं भी उसी तरह से संघ, समाज, जिनशासन तथा गुरु भगवन्तों के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित हैं।

कर्नावट परिवार भाग्यशाली है कि उन्हें शास्त्रज्ञ तरुण तपस्वी, चारित्र चूड़ामणि, अखण्ड बाल ब्रह्मचारी परम पूज्य आचार्यश्री रामलालजी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी परम विदुषी, पंडितरत्ना, महासती श्री विपुलाश्रीजी म.सा. द्वारा विरचित अनुठी कृति "अपश्चिम तीर्थंकर महावीर" भाग–2 के मुद्रण का सौभाग्य मिला है।

मैं श्री कर्नावटजी को इस हेतु अपनी प्रणति समर्पित करते हए शासनदेव से प्रार्थना करता हूं कि वे इसी तरह से आचार्य भगवन् के शासन के चहुंमुखी विकास में अपना समर्पण एवं योगदान देते हुए सदैव कालजयी बने रहे।

देवीलाल सुखलेचा

विषयानुक्रमणिका

णमो जिणाणं

अनुत्तरज्ञानचर्या का प्रथम वर्ष
समर्पण की सौरभ

पदयात्रा की एक झलक :

भगवान् का कैवल्य ज्ञान महोत्सव ऋजुबालिका नदी के तट पर देवों ने हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न किया।[1] बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाने के अनन्तर शक्रेन्द्र[क] स्वयं सौधर्म[ख] देवलोक में जाने को समुद्यत हुआ। भारतवर्ष की भूमि से कोटाकोटि योजन दूर [ग]घनोदधि[i] पर आधारित[2] सौधर्म देवलोक[ii] अपने दिव्य आलोक से चहुँ ओर आलोक विकीर्ण[घ] करता हुआ अर्धचन्द्राकार[4] रूप से अवस्थित अनेक देव-देवियों के आकर्षण का केन्द्र था। तेरह मंजिला[5] यह सौधर्म कल्प सभी वैमानिक[ङ] देव-देवियों में सर्वाधिक विमानों को समाहित करने वाला है।[6] इसमें रहे हुए बत्तीस लाख विमान त्रिकोण, चतुष्कोण[iii] एवं गोल[7], जो कि एक-दूसरे से असंख्येय योजन दूर, पंक्तिबंद्ध रूप से अपनी शोभा से नेत्रों को स्तम्भित कर रहे हैं। इन्हीं पंक्तिबद्ध विमानों के मध्य विविध आकार धारण किये हुए [च]पुष्पावकीर्ण[iv] विमान पुष्प की तरह यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे हुए-से प्रतीत होते हैं।[8] प्रत्येक मंजिल के मध्य में रहे हुए विमान, इन्द्रक विमान[9] के नाम से विख्यात हैं, जिनमें शक्रेन्द्र एवं उनके सामानिक[छ] देव निवास करते हैं।

प्रत्येक इन्द्रकविमान[v] एवं [ज]आवलिका प्रविष्ट[vi] विमानों के बीच चार दिशाओं में चार [झ]अवतंसक बने हुए हैं। पूर्व में [ञ]अशोक अवतंसक[vii], दक्षिण में सप्तपर्ण अवतंसक, पश्चिम में चम्पक अवतंसक और उत्तर में आम्र अवतंसक अपनी भव्य आभा से देवों को भी मंत्र-मुग्ध करने वाले हैं। इनके मध्य में सौधर्म अवतंसक है। इन सभी में उस-उस विमान के अधिपति देव का निवास स्थान है।

अनुत्तर ज्ञान–केवल ज्ञान

(क) शक्रेन्द्र–प्रथम देवलोक का इन्द्र

(ख) सौधर्म–प्रथम देवलोक का नाम

(ग) घनोदधि–घना जमा हुआ पानी

(घ) आलोक विकीर्ण–प्रकाश फैलाना

(ङ) वैमानिक– विमान में रहने वाले देव (12 देवलोक 9 लोकान्तिक 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमानवासी देवो के लिए रूढ़)

(च) पुष्पावकीण–फूल की तरह बिखरे

(छ) सामानिक देव–इन्द्र के समान ऋद्धि वाले किन्तु इन्द्र पदवी से रहित देव

(ज) आवलिका प्रविष्ट – पंक्ति रूप में रहे हुए

(झ) अवतंसक – श्रेष्ठ महल

(ञ) अशोक अवतंसक– अशोक नामक महल (विमान)

इन्द्रक विमान के चारों ओर चार अवतंसक और मध्य में सौधर्म अवतंसक है। इसी सौधर्म अवतंसक के मध्यातिमध्य[क] भाग में शक्रेन्द्र का सौधर्म विमान है।[10] ऋजुबालिका से आगत शक्रेन्द्र ने इसी सौधर्म विमान में प्रवेश किया। सौधर्म विमान की चारों दिशाओं में श्वेतवर्णी[ख] एक-एक हजार द्वार आकर्षक, विचित्र चित्रों से चित्रित हैं। मणियों की जगमगाहट से उद्योतित[ग] द्वारों के उभय पार्श्वों[घ] में बने विशाल मंच अपनी दिव्य आभा से देवों की महर्द्धि को प्रदर्शित कर रहे हैं। मंचों पर रखे सुगठित चन्दन कलश अपनी भीनी-भीनी महक से वायुमण्डल में मलयज[ङ] प्रसरित कर रहे हैं। मंचों के ऊपरी भाग पर नागदंत (खूंटियाँ) हैं, जिन पर लटकती वन मालाएँ जगती तल के विवाह मण्डप की शोभा को निरस्त कर रही हैं। उनके ऊपर बनी खूंटियों पर लटकते हुए छींके, जिनमें धूप दान रखे हुए हैं। वे अगरु, तुरुष्क, लोबान आदि की गंध से मानों देवलोक को गंधवटिका के समान बना रहे हैं। मंचों पर मणिमय चबूतरे बने हुए हैं और उन चबूतरों पर भव्य प्रासाद[च] निर्मित हैं। उन प्रासादों में सिंहासन, भद्रासन[छ] रखे हुए हैं, जिन पर इन्द्र के सामानिक देव अपने परिवार सहित ऋद्धि का उपभोग करते हैं।

सौधर्म विमान के ठीक मध्यातिमध्य भाग में शक्रेन्द्र का उपकारिकालयन[ज] राजभवन है। यह राजभवन अपने से 500-500 योजन दूर चारों ओर से चार वनखण्डों[झ] (अशोकवन, सप्तपर्ण वन, चम्पक वन और आम्र वन) से घिरा है। इसी वनखण्ड में शक्रेन्द्र ने प्रवेश किया। विशालकाय सघन वृक्षों से घिरा यह वनखण्ड कृष्ण मेघमाला की द्युति को धारण किये हुए है। समश्रेणि[ञ] में स्थित तरुवृन्द पुष्प-फलों से लदे, अत्यन्त झुके हुए थे। वहाँ रहे हुए फल स्वादिष्ट, निरोग एवं निष्कंटक थे। नवीन मंजरियों से शृंगारित होकर पादप-वृन्द[ट] शक्रेन्द्र के स्वागत में आतुर था।

तरुवृन्दों[ठ] के मध्य बने हुए लतागृह, कदलीगृह क्रीड़ास्थली की विशेष शोभा

(क) मध्यातिमध्य-ठीक बीचों बीच
(ख) श्वेतवर्णी-श्वेत रंग वाले
(ग) उद्योतित-प्रकाशित
(घ) उभयपार्श्व-दोनों ओर
(ङ) मलयज-चन्दन से उत्पन्न सुगंध
(च) प्रासाद-महल
(छ) भद्रासन-एक प्रकार का सिंहासन (आसन)
(ज) उपकारिका लयन-प्रशासनिक कार्यों की व्यवस्था के लिए निर्धारित भवन
(झ) वनखण्ड-जिस उद्यान में भिन्न जाति के उत्तम वृक्ष होते हैं उसे वनखण्ड कहते हैं
– जीवाजीवाभिगम चूर्णी
(ञ) समश्रेणि-कतारबद्ध
(ट) पादपवृन्द-वृक्ष समूह
(ठ) तरुवृन्द-वृक्ष-समूह

में चार चाँद लगा रहे थे। स्थान-स्थान पर बनी स्वच्छ निर्मल जल की वापिकाएँ[क] चंचल लहरों पर जीवन की क्षणिकता का इतिहास उत्टंकित[ख] कर रही थी। भ्रमरों की गुंजार और पक्षियों की चहचहाट वातावरण को कलनाद से व्याप्त कर रही थी।

प्रत्येक वनखण्ड में बना श्रेष्ठ प्रासाद अपनी श्रेष्ठ शिल्प रचना से अनिमेष[ग] नेत्रों से देखने योग्य था। इन्हीं प्रासादों में वनखण्ड के अधिपतिदेव (अशोक देव, सप्तपर्ण देव, चम्पक देव और आम्र देव) निवास करते हैं।

इन प्रासादों की शोभा की एक झलक दृष्टिगत करके शक्रेन्द्र के चरण अपने राजभवन की ओर, जहाँ वह प्रशासनिक व्यवस्था करता है, गतिमान बन रहे हैं। वह राजभवन की पद्‌मवर वेदिका[घ] में प्रविष्ट हुआ जहाँ विविध जाति के कमल छत्राकार रूप छत्रियों के रूप में खड़े मानों मुसलाधार वर्षा से रक्षा करने में तत्पर हैं। पद्‌मवर वेदिका के पास प्रासाद के चहुँ ओर घिरा वनखण्ड अपनी परिमल[ङ] से वातावरण में सुगन्ध प्रसरित कर रहा है। इसी वनखण्ड के मध्य में बना प्रासाद, जिसकी चारों दिशाओं में चार द्वार और तीन-तीन सीढ़ियाँ हैं, पर खचित[च] मणियों से चन्दन से भी अधिक सुगन्धित महक प्रसरित हो रही है।

इस राजभवन (उपकारिकालयन) के मध्यातिमध्य भाग में निर्मित एक प्रासाद-अवतंसक[छ] पाँच सौ योजन चौड़ा व 250 योजन लम्बा अपनी मनोहर आभा से विहँसता हुआ-सा प्रतीत हो रहा है। इसके ईशान कोण में सौ योजन लम्बी एवं 50 योजन चौड़ी तथा 72 योजन ऊँची अतीव मनोहर रूप-लावण्य की उत्कृष्ट प्रतिकृति अप्सराओं से व्याप्त सुधर्मा सभा[viii] है।

इस सुधर्मा सभा की तीन दिशाओं (पूर्व, दक्षिण और उत्तर) में तीन द्वार श्रेष्ठ स्वर्णशिखरों एवं वनमालाओं से अलंकृत है। इसमें निर्मित अड़तालीस हजार चबूतरे और 48 हजार शय्याएँ[ix] अतीव शोभा से सुशोभित हैं।[11] इसी सुधर्मा सभा के मध्य श्रेष्ठ सिंहासन पर शक्रेन्द्र आकर विराजमान हुआ।

देह से शक्रेन्द्र सुधर्मा सभा में सिंहासनस्थ हैं, लेकिन मन............ वह तो

(क) वापिकाएँ–बावड़ियाँ
(ख) उत्टंकित–उल्लिखित
(ग) अनिमेष–लगातार
(घ) पद्‌मवर वेदिका–श्रेष्ठ कमलों की बनी वेदिका–परकोटा–सा
(ङ) परिमल–सुगंध
(च) खचित–जटित
(छ) प्रासाद–अवतंसक–श्रेष्ठ महल

करुणा निलय[क] भगवान् महावीर से संपृक्त[ख] है। चिन्तन की चाँदनी में लौटती लहरों की बाँसुरीवत् भगवान् महावीर के संस्मरण चित्रपट की तरह मानस पटल पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। उसी में आकण्ठ डूबा श्रद्धाभिनत[ग] होकर सोच रहा है। ओह ! कैसा अद्वितीय जीवन भगवान् महावीर ने जीया है। स्वयं प्रज्वलित होकर दूसरों को जिलाया है। स्वयं कष्टसहिष्णु बनकर दूसरों को बचाया है। समता का उपदेश देने से पहिले स्वयं परम समत्व की भूमिका पर आरोहण कर वीतरागता का मार्ग प्रशस्त किया है और अपने भीषणतम कर्म-जंजाल को मात्र 12½ वर्ष में .... मात्र 12½ वर्ष के अत्यल्पकाल[घ] में तोड़ डाला। वे किसी भी स्थिति-परिस्थिति में, किसी भी क्षेत्र में, किसी भी अवस्था में असफल, अपराजित नहीं हुए, क्योंकि उन्होंने सदैव स्वयं को जीतने का अप्रतिम[ङ] पुरुषार्थ किया। दूसरों के किसी भी कृत्य से स्वयं को जोड़ने का प्रयास नहीं किया, न स्वयं की प्रशंसा से कहीं प्रसन्नता की झलक दिखलाई, न निन्दा से विद्वेष की, प्रतिशोध की भावना। वैभाविक[च] परिणामों से सर्वथा दूर, वे स्वयं में जीकर स्वयं को जीतने का पुरुषार्थ करते रहे। सहस्रों की भीड़ में भी एकाकी रहकर आत्मशक्तियों को उजागर करने का प्रयास करते रहे।

प्रव्रज्या[छ] के प्रथम दिन जब उन पर घोर उपसर्ग आया और एक सामान्य ग्वाला भी अपने बैल बाँधने की रस्सी से उन्हें मारने को उद्यत हुआ तभी मैं स्वयं वहाँ पहुँचा और ग्वाले को समझाकर उसे मारने से रोका और भगवान् से निवेदन भी किया, भंते ! साधना के मार्ग में अभी भीषणतम उपसर्ग आने वाले हैं और उनसे रक्षा करने हेतु मैं स्वयं आपकी सेवा में उपस्थित रहना चाहता हूँ, लेकिन वे ठहरे महावीर ! उन्होंने कहा—कष्टों में समाधि ही वीतरागता प्राप्ति का मार्ग है। मैं उस मार्ग में स्वयं अपने-आप को गतिमान करना चाहता हूँ इसलिए इस कार्य के लिए तुम्हारी उपस्थिति नहीं, मेरा स्वयं का पुरुषार्थ उत्तम है।

कहाँ सामान्य मनुष्य, जो [ज]स्वल्प-सा भी कष्ट आने पर निरन्तर देव-स्मरण कर देव-सहायता के लिए अविरल[झ] तत्पर रहता है और कष्टों से निजात[ञ] पाने

(क) निलय-सदन
(ख) संपृक्त-लगा हुआ
(ग) श्रद्धाभिनत-आस्था से युक्त
(घ) अत्यल्प काल-बहुत थोड़ा समय
(ङ) अप्रतिम-अद्वितीय
(च) वैभाविक-संसार में भटकाने वाले
(छ) प्रव्रज्या-दीक्षा
(ज) स्वल्प- थोड़ा
(झ) अविरल- लगातार
(ञ) निजात-मुक्ति

के लिए कुछ सिद्धियाँ प्राप्त कर देवाकर्षण का प्रयास करता है और कहाँ महावीर! भगवान् महावीर ! जिनके लिए मैं स्वयं सेवा में समुपस्थित था। साथ रहने का आकांक्षी, कष्ट से मुक्ति दिलाने को समुत्सुक[क] लेकिन भगवान्................ वे वय से अल्प, देहोत्सेध[ख] से अल्प................ लेकिन पुरुषार्थ में................ सहनशीलता में बहुत आगे................ त्वरित गतिमान अपने कर्मों को नष्ट करने में................ तोड़ने में................ मात्र स्वयं का ही अवलम्बन................ एकमात्र ध्येय था स्वयं की शक्ति को जगाने का और उसको पाने हेतु निरन्तर चलते रहे। कोई कष्ट देता तो भी समभाव................ क्रोध करे तो समभाव................ गाली दे तो समभाव. .... फाँसी लटकाये तब भी समभाव................ समभाव की पराकाष्ठा को कहना सरल है, सोचना सरल है, पर जीवन में अपनाना अत्यन्त कठिन है।

भगवान् महावीर ने अपने रोम-रोम में निष्कषाय भाव को समा लिया था। मन, वचन, काया को कषाय के भीषणतम रोग से बचाते रहे। सदैव राग-द्वेष की आँधी से अपने-आप को दूर रखते रहे। माया की चिनगारियों को सरलता के जल से बुझाते रहे। लोभ के भीषण पारावार[ग] को श्रुत शील की नौका से तैरते रहे और तैरते-तैरते पार पहुँच गये।

धन्य है ऐसे महान् पराक्रमशाली, धैर्य की पराकाष्ठा पर चलने वाले **अपश्चिम तीर्थंकर**[घ] भगवान् महावीर को, जिनका वह दिव्य तेजस्वी आभामण्डल, जिसे देखकर नयन हटते नहीं, मन थकता नहीं, चरण वहीं थम जाते हैं और मन में उत्ताल[ङ] तरंगें तरंगायित होती हैं मानों जीवन का सर्वस्व समर्पण कर डालूँ। स्मरण हो रहा है, उस ऋजुबालिका का, जहाँ भगवान् के पधारने से कण-कण पवित्र हो गया। एक नई ताजगी, नई स्फूर्ति, नई चेतना और नये वातावरण का निर्माण हो गया। अरे ! उस ऋजुबालिका की छटा को एक बार और निहार लूँ। यह चिन्तन कर अपनी अवधिज्ञान[च] की धारा से शक्रेन्द्र ने पूर्वद्रष्ट ऋजुबालिका[x] पर ध्यानाकर्षित किया और नयनाभिराम दृश्यों से मन में आनन्द का अनुभव करते हुए................ "ओह ! ऋजुबालिका का सौम्य छटा वाला कूल[छ]

(क) समुत्सुक-सम्यक् प्रकार से उत्सुक
(ख) देहोत्सेध-शरीर की ऊंचाई
(ग) पारावार-समुद्र
(घ) अपश्चिम तीर्थंकर-अन्तिम तीर्थंकर
(ङ) उत्ताल-उछलती, चंचल
(च) अवधिज्ञान-रूपी पदार्थों को देखने वाला ज्ञान
(छ) कूल-किनारा

प्रभु के विराजने से कितना नयनाभिराम लग रहा है। कल-कल की मधुर ध्वनि करने वाला नदी का स्वच्छ नीर अपनी चंचल लहरों से अठखेलियाँ करता हुआ सतत पुरुषार्थ की प्रेरणा प्रदान कर रहा है। नदी के समीप पशु-पक्षियों का झुण्ड अपनी तृषा शमित करने के लिए निरन्तर स्वच्छ जल का पान कर विश्रान्ति का अनुभव कर रहे हैं। समीपवर्ती भूमि में स्थित पेड़-पौधे नवीन पल्लवों[क] को धारण कर मानों किसी के आगमन की प्रतीक्षा में हर्षान्वित हो रहे हैं। आम्रवृक्षों पर आने वाली मंजरियों का रसास्वादन कर कोकिल पंचम स्वर से मीठी-मीठी वाणी बोल रही है। समीपस्थ खेतों की हलों से कर्षित[ख] भूमि पर नव-नवीन अंकुर प्रस्फुटित हो गये हैं। हरीतिमा की चादर ओढ़कर धरती रूपी अभिसारिका[ग] मानो सर्वस्व पाने हेतु समागम को उद्यत है। सर्वत्र हर्ष का वातावरण परिलक्षित हो रहा है।

ऐसी बासन्तिक छटाओं से अभिनव शृंगारित भूमि पर अद्‌भुत नजारा दिखलाई दे रहा है। बसंत का यौवन चरमोत्कर्ष पर है। भीनी-भीनी महक से दिशाओं-अनुदिशाओं को सुगन्धित करती हुई वासन्तिक-बयारें[घ] नवजीवन में स्फूर्ति प्रदान कर रही हैं। हरीतिमा की चादर ओढ़कर उसमें मंजरियों के झिलमिलाते सितारों को जटित कर प्रकृति नवोढ़ा[ङ] का रूप धारण कर रही है। ऐसे ऋतुराज में शालवृक्ष की शीतल छाया तले गोदुह आसन[च] से ध्यान-साधना में लीन, आत्मशक्तियों को जागृत करने में संलग्न, भगवान् महावीर अपनी भीतरी ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करने में संलग्न हैं। इधर भीतरी प्रकाश से भगवान् महावीर अपनी आत्मा को ओतप्रोत करने में लगे हैं। उधर भुवन भास्कर अपनी चमचमाती मयूखा[छ] से वसुन्धरा को पूर्ण प्रकाशमान बनाकर निरन्तर अपनी उज्ज्वल प्रभा विकीर्ण कर रहा है।

लेकिन दोनों में विशिष्ट अन्तर दिखलाई दे रहा है। दिनकर तो प्रखर तीक्ष्णता धारण कर शनैः-शनैः शीतल प्रकाश फैलाता हुआ मन्द ज्योतिपुञ्ज बन रहा है, लेकिन भगवान् महावीर तो आत्मज्योति का उज्ज्वल, उज्ज्वलतम प्रकाश पाने में सफलता के सोपानों पर आरोहण कर रहे हैं।

(क) पल्लव- पत्ता
(ख) कर्पित-जुती हुई
(ग) अभिसारिका-रात्रि-नायिका
(घ) बयारें-हवाएँ
(ङ) नवोढ़ा-नव-वधू
(च) गोदुह आसन-गाय दूहने वाला जैसे बैठता है, वह गोदुह आसन
(छ) मयूख-किरण

शनैः-शनैः दिन के अन्तिम याम[क] का आगमन हो गया। अस्तंगत[ख] होने को उद्यत रवि[xi] पश्चिम दिशा से विदाई लेने को उद्यत है। ऐसे समय में चरम आत्मोत्कर्ष की ओर गतिमान शुभ मन, वचन, काया के योगों से, शुक्ल लेश्या में निरत ज्ञान की अविरल धारा को शुभ्रतम बनाते हुए, चार घनघाती[ग] कर्मों[घ] (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय) को क्षय करते हुए कैवल्यज्ञान[ङ] उपलब्ध कर लिया।

अब शक्रेन्द्र चिंतन करता है–"अहो ! वह कैसा अद्‌भुत समय था........ कैसा मनोरम वातावरण था........। मैं (शक्रेन्द्र) भी स्वयं असंख्य देव-देवियों से परिवृत[च] होकर भूमण्डल पर दिव्य महोत्सव मनाने गया था। अरे....... मैं......... ही क्या? स्वयं 64 इन्द्र ! अपने-अपने देव-देवी परिवार सहित वसुधा[छ] पर महोत्सव मनाने गये थे .... चहुँ ओर देव-देवी दिखलाई दे रहे थे, मानो कोई देवमेला लगा हो या जगती-तल पर देवों की बरात उतर आई हो। क्या धूम मची थी जंभियग्राम के बाहर, ऋजुबालिका नदी के तट पर ! कितना नयनाभिराम दृश्य ! मनोहरी समवसरण और उसमें भगवान् की भव्य देशना........ अब तो स्मृति मात्र रह गयी........।

एक मूहूर्त के पश्चात् भगवान् ने विहार कर दिया और मैं........... मैं........... भी........... यहाँ चला आया।" (पुनः शक्रेन्द्र अवधिज्ञान से वर्तमान में भगवान् को देखकर) "ओह ! भगवान् अभी भी विहारचर्या में निरत हैं। मध्यम पावा की ओर पधार रहे हैं। सर्वस्व प्राप्त कर लिया फिर भी कितना पुरुषार्थ ! भव्य जीवों को प्रतिबोध देने के लिए, अनेक मुमुक्षुओं को संयम-पथ पर अग्रसर करने के लिए, अनेक भव्यात्माओं को कष्टों से उबारने के लिए, भोग से त्याग की पावन यात्रा करवाने के लिए, हिंसा के महाताण्डव का महाविनाश करने के लिए चल रहे हैं, पैदल विहार.......... पद विहार........... कर रहे हैं।

अपनी छोटी अंगुली पर लोक को उठाने का सामर्थ्य[xii] रखने वाले[12], अतुल बलशाली, महान लब्धियों के धारक ! वे चाहते तो अपनी शक्ति के प्रयोग से एक क्षण में मध्यम पावा पधार जाते, लेकिन नहीं........... महान् पुरुष शक्ति का आश्रय नहीं लेते........... पुरुषार्थ को प्रधानता देते हैं........... लब्धि का प्रयोग नहीं करते...

(क) याम–प्रहर
(ख) अस्तंगत–अस्त होने वाला
(ग) घनघाती कर्म–प्रबलता से घात करने वाला कर्म
(घ) कर्म–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय
(ङ) केवल्यज्ञान– सम्पूर्ण ज्ञान
(च) परिवृत–घिरे हुए
(छ) वसुधा–पृथ्वी

.... वे अपवाद मार्ग[क] का जल्दी से सेवन नहीं करते.......... वे तो आकाश-दीप की भाँति सबको दिशाबोध कराते हुए अपने कदमों से नंगे पाँव चलकर सतत पथदर्शक बने रहे हैं। उनका अपना भव्य चिन्तन है "मैं ही लब्धि का प्रयोग करूँगा तो भविष्य में होने वाले साधु-साध्वी, वे तो.......... थोड़ी-सी मुसीबत आने पर......... तुरन्त लब्धि का प्रयोग करेंगे, फिर........... नंगे पाँव........... पद यात्रा करने........... वाले......... ... क्वचित्-कदाचित् ही रह जायेंगे"........... साधु-साध्वियों को इंगित करने के लिए प्रभु चरणों को निरन्तर गतिमान कर रहे हैं और महान् ऋद्धिशाली देव, जो स्वल्प समय में वैक्रिय शक्ति से असंख्यात योजन पार चले जाते हैं, वे भी भक्तिवश. .... श्रद्धावश भगवान् के साथ निरन्तर पदयात्रा कर रहे हैं।

कितना अभिराम दृश्य है ! आगे-आगे भगवान् और उनके पीछे-पीछे अनेक देव, जिनके मुकुट-कुण्डल-वस्त्र और आभूषणों की दिव्य आभा से रात्रि में भी दिवा-सम[ख] प्रकाश फैल रहा है।

निश्चल नीरव निशीथिनी[ग] में प्रभु की पदयात्रा[13] का यह दृश्य अनन्त काल बाद देखने को मिल रहा है।[14] शान्त-प्रशान्त प्रहरी[घ] के समान खड़े वृक्षों की पंक्तियाँ फल-फूलों से लदकर प्रभु का अभिवादन कर रही हैं। भगवान् के चरण पड़ने से भूमि का कण-कण सुगन्धित हो रहा है। वृक्षों के झुरमुटों पर आश्रय ग्रहण किये हुए खगवृन्द[ङ] मौन रहकर भगवान् का स्वागत कर रहे हैं। कल-कल निनाद[च] करने वाले प्रपात[छ] शीतल जलधारा का उत्स प्रवाहित कर प्रभु के आगमन पर कल-कल की हर्ष ध्वनि मुखरित कर रहे हैं। भगवान् के चरण-कमल जहाँ गिरते, उससे पहले उस स्थान पर देव स्वर्ण-कमल की रचना कर अपनी भीतरी दृढ़ आस्था का प्रकटीकरण कर रहे हैं और भगवान् की अतिशय पुण्यवानी का सूचन कर रहे हैं। अड़तालीस कोस की यह सुदीर्घ यात्रा मात्र एक ही यामिनी[ज] में बिना रुके, निरन्तर गमन करते हुए भगवान् तय कर रहे हैं।[15] धन्य है ऐसे महान् पराक्रमी प्रभु को।" (यहाँ यह ज्ञातव्य है कि भगवान् ने अपने केवलज्ञान में जैसा देखा वैसा किया, किन्तु अन्य सभी साधु-साध्वियों को रात्रि-विहार का पूर्णतया निषेध किया है। वृहत्कल्प-सूत्र 1/44)

(क) अपवाद मार्ग-आपत्ति में चलने योग्य मार्ग (ख) दिवा-सम-दिन के समान
(ग) निशीथिनी-अर्द्धरात्रि (घ) प्रहरी-पहरेदार
(ङ) खगवृन्द-पक्षी-समूह
(च) निनाद-आवाज
(छ) प्रपात-झरने
(ज) यामिनी-रात्रि

शक्रेन्द्र अपने ज्ञान से भगवान् की विहार यात्रा सुधर्मा सभा में बैठा चित्रपट की भाँति देख रहा है। भगवान् विहार करते हुए मध्यम पावा के महासेन उद्यान में जाने को समुद्यत हैं। शनैः-शनैः कदमों से उन्होंने पावा के महासेन उद्यान में असंख्य देवियों और देवों सहित प्रवेश किया।

महासेन का यह उद्यान आज प्रभु के पदार्पण से पुण्य-पुञ्ज-सा आभासित[क] हो रहा है। अपनी हरीतिमा से अतीव शोभायमान होता हुआ यह अनेक प्राणियों का आश्रय-स्थल बना हुआ है। विशालकाय पादपों का समूह सघन पत्तों से परिवृत, फल-फूलों से लदी डालियों से पृथ्वी-तल को चूमने-सा लगा है। नव-आगन्तुक मंजरियों ने प्रभु के पधारने से अपने यौवन के उत्कर्ष को प्राप्त-सा कर लिया। पक्षियों के वृन्द अपने-अपने घोंसलों में प्रभु-सम्मिलन से मंत्र-मुग्ध बने हुए भगवान् का स्वागत करते हुए चहचहाट करने लगे। मधुकरों[ख] की मधुर गुञ्जार की मनोरम ध्वनि प्रभु के आगमन पर पलक-पावड़े बिछाने लगी।

स्थान-स्थान पर फहराने वाली ध्वजाएँ मानो कैवल्यज्ञान रूपी विजय का प्रदर्शन करने लगी। बावड़ियों पर बने सुरम्य झरोखों से छनकर आने वाली मन्द-मन्द समीर शीतलता प्रदान करती हुई प्रभु के चरण चूमने लगी। ऐसे सुरम्य वातावरण में भगवान् ने महासेन उद्यान में आश्रय ग्रहण किया और तप-संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

प्रकृति के अंचल में पलने वाली मध्यम पावा नगरी का कण-कण पावनतम बन रहा है। प्राची[ग] दिशा सिन्दूरी रंग से रंगी हुई सूर्य को प्रकट करने की तैयारी में संलग्न है। सुमेरु की प्रभा से अरुणाभ[घ] बना दिनकर धीरे-धीरे निकलता हुआ अपनी अरुण[ङ] किरणों से वसुन्धरा को अरुणाभ बना रहा है। खगों में नभ में उड़ने की होड़-सी लग रही है। तभी शक्रेन्द्र का आसन यकायक कम्पायमान होता है। (शक्रेन्द्र चिन्तन धारा में) अरे........... यकायक. .... यह क्या........... आसन प्रकम्पित हो रहा है? ....क्यों? (तुरन्त अपने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर) ....हाँ...........हाँ........... आज तो मध्यम पावा

(क) आभासित-प्रकाशित, दृष्टिगत
(ख) मधुकर-भ्रमर
(ग) प्राची-पूर्व
(घ) अरुणाभ-लाल आभा वाला
(ङ) अरुण-लाल

में समवसरण[क] की रचना करनी है। अभी आभियोगिक[ख] देवों को बुलाता हूँ। तुरन्त.......... आभियोगिक देवों को बुलाया।

आभियोगिक देव आकर—शक्रेन्द्र की जय हो। आपका आदेश पाकर हम श्रीचरणों में आये हैं। आप हमारे योग्य सेवाकार्य फरमाइये।

शक्रेन्द्र—तुम मध्यम पावा जाओ और समवसरण की रचना के लिए भूमि परिमार्जित[ग] आदि करो।[16]

आभियोगिक देव—"जैसी प्रभु की आज्ञा।"

यों कहकर, ईशान कोण की ओर चले गये। वहाँ जाकर वैक्रिय शरीर बनाने के लिए [घ]वैक्रिय समुद्घात[xiii] किया। उससे उन्होंने संख्यात योजन का रत्नमय दण्ड बनाया। उस रत्नमय दण्ड बनाने के लिए आभियोगिक देवों ने 1. कर्केतन रत्न, 2. वज्र रत्न, 3. वैडूर्य रत्न, 4. लोहिताक्ष रत्न, 5. मसारगल्ल रत्न, 6. हंसगर्भ रत्न, 7. पुलक रत्न, 8. सौगन्धिक रत्न, 9. ज्योति रत्न, 10. अंजन रत्न, 11. अंजन पुलक रत्न, 12. रजत रत्न, 13. जातरूप रत्न, 14. अंक रत्न, 15. स्फटिक रत्न और 16. रिष्ट रत्न—इन सोलह रत्नों के बादर (असार—अयोग्य) पुद्‌गलों को दूर किया। यथासूक्ष्म (सारभूत) पुद्‌गलों को ग्रहण किया। इसके पश्चात् पुनः वैक्रिय समुद्‌घात किया और वैक्रिय समुद्‌घात करके उत्तर वैक्रिय शरीर बनाया[17] और तत्पश्चात् अत्यन्त त्वरित[ङ] गति से वे मध्यम पावा[xiv] के महासेन वन उद्यान में आये।

द्वितीय समवसरण मध्यम-पावा वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा[xv] की, आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके भगवान् से कहा—हम शक्रेन्द्र के आभियोगिक देव आप देवानुप्रिय को वंदन करते हैं, नमस्कार करते हैं। आपका सत्कार-सम्मान करते हैं। आप कल्याण रूप हैं, मंगल रूप हैं, देव रूप हैं, चैत्य रूप हैं, आप देवानुप्रिय की हम पर्युपासना करते हैं।

[xvi]आभियोगिक देवों द्वारा यों कहे जाने पर भगवान् महावीर उन्हें सम्बोधित करते हुए फरमाते हैं—हे देवों ! यह प्राचीनकाल से, देव-परम्परा से चला आ

(क) समवसरण-भगवान् का प्रवचन स्थल, जो देव निर्मित होता है।

(ख) आभियोगिक-नौकर देवों की एक जाति निम्न श्रेणी के देव जो विद्याधरों की श्रेणी से 10 योजन ऊँचा आभियोगिक देवों के रहने का स्थान है।।

(ग) परिमार्जित-स्वच्छ

(घ) वैक्रिय समुद्घात-वैक्रिय शरीर निर्माण योग्य पुद्गलों का प्रबलता से घात करना। इस प्रक्रिया के बाद उत्तर वैक्रिय शरीर बनता है, जिसको बनाकर ही देव भूमण्डल पर आते हैं।

(ङ) त्वरित-शीघ्र

रहा जीत-कल्प[क] है। यह देवों द्वारा करणीय है। यह देवों द्वारा आचीर्ण[ख] है। यह सब देवेन्द्रों ने संगत माना है कि सभी भवनपति[ग], वाणव्यन्तर[घ], ज्योतिष्क और वैमानिक देव[ङ] अरिहंत भगवन्तों को नमस्कार करते हैं एवं नमस्कार करते हुए अपने नाम-गोत्र को बतलाते हैं। भगवान् की इस मधुरिम वाणी को श्रवण कर आभियोगिक देव अत्यन्त हर्षित-प्रफुल्लित हुए। उन्होंने प्रभु को वंदन-नमस्कार किया और ईशानकोण[च] में चले गये। वहाँ जाकर पूर्ववत् वैक्रिय समुद्घात करके रत्नमय दण्ड बनाया। पुनः वैक्रिय समुद्घात करके उत्तर वैक्रिय रूप बनाया, संवर्तक[छ] वायु की विकुर्वणा की और तत्पश्चात् राजप्रांगण की सींकों की बुहारी से सफाई करने वाले महान बलशाली पुरुषों की तरह आभियोगिक देवों ने भगवान् महावीर के आस-पास की एक योजन[ज] भूमि को साफ करना प्रारम्भ किया। वहाँ पर रहे हुए घास, पत्ते, कंकर, पत्थर आदि को चुन-चुन कर एकान्त में फेंक दिया, फेंककर भूमि को स्वच्छ बना दिया।

तत्पश्चात् पुनः वैक्रिय समुद्घात[xvii] से उत्तर वैक्रिय शरीर बनाकर जैसे कोई भृत्य मनोयोग से फुलवारी को सींचता है, वैसे ही उन्होंने मेघों की विकुर्वणा (रचना) की और रचना करके चार कोस की भूमि पर रिमझिम-रिमझिम फुहारें बरसायी। उन फुहारों से भूमि रजकण से आर्द्र बन गयी और मिट्टी में सौंधी-सौंधी महक आने लगी।

तदनन्तर आभियोगिक देवों ने पुष्पवर्षक[झ] पयोधरों[ञ] की विकुर्वणा की और चार कोस की भूमि में अचित्त पंचरंगे मनमोहक सुगन्धित पुष्पों की वर्षा की।

उन मनमोहक सुमनों की सुगंध से वातावरण महकने लगा।[18] तदनन्तर व्यन्तर देव वहाँ पर उपस्थित हुए। उन्होंने चारों दिशाओं में विचित्र मणि-रत्नों वाले आकर्षक तोरण द्वारों का निर्माण करना प्रारम्भ किया। मणियों की झिलमिलाहट से जगमगाते तोरण द्वार निपुण शिल्पकला द्वारा निर्मित करने के पश्चात् उन तोरणों पर छत्र, पुत्तलियाँ, मकर, ध्वजा और स्वस्तिक के अति

(क) जीतकल्प–आचार परम्परा
(ख) आर्चीण–पहले आचरण किया गया।
(ग) भवनपति–भवनों में रहने वाले असुरकुमार आदि
(घ) वाणव्यन्तर–भूत, पिशाच आदि
(ङ) वैमानिक–विमान में रहने वाले 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान)
(च) ईशानकोण–पूर्व–उत्तर का कोण जहाँ पूर्व–उत्तर का समागम होता है।
(छ) संर्वतक–वायु विशेष
(ज) एक योजन– चार कोस
(झ) पुष्पवर्षक–फूल बरसाने वाले।
(ञ) पयोधर–बादल

सुन्दर जीवन्त-से लगने वाले चित्रों को चित्रित किया।

तोरण द्वारों का निर्माण होने के पश्चात् तीन परकोटों को बनाने के लिए वैमानिक, ज्योतिष्क एवं भवनपति देव अवतरित हुए। वैमानिक देवों ने आभ्यन्तर[क] परकोटे का निर्माण करना प्रारम्भ किया। विविध प्रकार के रत्नों से उन्होंने परकोटा बनाकर, पंचरंगी मणियों से बड़े ही आकर्षक कंगूरों को निर्मित किया और कंगूरों को बरबस नेत्रों को आकृष्ट करने वाले ध्वजा, पताका और तोरणों से चित्रित कर डाला। मध्य का परकोटा ज्योतिष्क देवों ने अतीव सुन्दर पीली आभा वाले स्वर्ण से बनाया और उस पर रत्नमय कंगूरे रत्नजड़ित स्वर्णहारों की शोभा को विजित करने वाले बनाये। रजतमय[ख] बाह्य परकोटे का निर्माण करके उस पर स्वर्णमय कंगूरे अपनी विशिष्ट लब्धि, शक्ति व कौशल से भवनपति देवों ने बनाये। सभी कंगूरों पर विशिष्ट शिल्पकला को प्रदर्शित करने वाले चित्र, तीन लोक की शोभा का दिग्दर्शन करा रहे थे। अब व्यन्तर देवों ने चतुर्दिक् में अगरु, तुरुष्क और लोबान की सुरभि प्रसरित कर आन्तरिक उल्लास का अनुभव किया।

तीन परकोटों का निर्माण होने के पश्चात् आभ्यन्तर परकोटे के बहु-मध्य भाग में एक भव्य आभा वाले, सघन पत्तों वाले, भगवान् महावीर की अवगाहना से द्वादश गुण[ग] ऊँचाई वाले अशोक वृक्ष की स्थापना स्वयं शक्रेन्द्र ने की। उसके नीचे पर्णकों[घ] की घनी छाँव में एक आकर्षक पीठ[ङ] (चबूतरे) का निर्माण किया। उसके ऊपर एक देवच्छन्दक[च] और उस पर एक स्फटिक सिंहासन को निर्मित किया। तत्पश्चात् ईशान देवलोक[छ] के देव सिंहासन के ऊपर तीन छत्रों का निर्माण करते हैं। उस सिंहासन के दोनों ओर दो यक्ष दो श्रेष्ठ चँवरों को बींजते रहते हैं। इन चँवरों का निर्माण चमरेन्द्र[ज] और बलिन्द्र[झ] करते हैं। तत्पश्चात् एक पद्म प्रतिष्ठित धर्म-चक्र को देव स्थापित करते हैं।[19]

आकर्षक रंग से सुसज्जित, इस प्रकार, एक भव्य समवसरण का निर्माण होता है। समवसरण के ये तीनों परकोटे दर्शकों को मंत्र-मुग्ध बनाने वाले थे।

(क) आभ्यन्तर-भीतरी
(ख) रजतमय-चाँदी का
(ग) द्वादश गुण-बारह गुण
(घ) पर्णक-पत्तों
(ङ) पीठ-चबूतरा
(च) देवच्छन्दक-ऊँची चौकी जैसा
(छ) ईशान देवलोक-दूसरा देवलोक
(ज) चमरेन्द्र-असुरकुमार भवनपति का दक्षिण दिशा का इन्द्र
(झ) बलिन्द्र-असुरकुमार भवनपति का उत्तर दिशा का इन्द्र

एक परकोटे से दूसरे परकोटे की दूरी 1300 धनुष प्रमाण थी। प्रथम आभ्यन्तर परकोटे में 10,000 पंक्तियाँ और मध्य एवं बाह्य परकोटे में 5000-5000 पंक्तियाँ बनायी गयी थी। ये बीस हजार पंक्तियाँ एक-एक हाथ ऊँचाई पर बनी थी। चूँकि चार हाथ का एक धनुष[क] तथा दो हजार धनुष का एक कोस होने से समवसरण ढाई कोस ऊँचा था, परन्तु भगवान् के अतिशय प्रभाव से वहाँ चढ़ने में किसी को किंचित्मात्र भी थकान का अनुभव नहीं होता था।[20]

ऐसे दिव्य समवसरण की रचना करने के पश्चात् अनेक देव भगवान् के समीप महासेन वन[ख] में गये और भगवान् के चरणों में स्तुति करने लगे। भंते ! समवसरण परिपूर्णता को संप्राप्त है, आप वहाँ पधारें और भव्यजनों को विशिष्ट बोध प्रदान करें।

तब भगवान् महावीर महासेन वन–उद्यान से समवसरण की ओर पधारते हैं एवं देव निर्मित समवसरण के पूर्व द्वार से देवों द्वारा स्तुति किये जाते हुए प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात् समवसरण के मध्यातिमध्य[ग] भाग में, जहाँ स्फटिक सिंहासन निर्मित था, वहाँ पधारते हैं और 'तीर्थाय नमः' कहकर उस पर विराजमान होते हैं। तदनन्तर देव दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में प्रभु का प्रतिरूप निर्मित करते हैं, जिससे किसी भी दिशा से प्रवेश करने वाले को यह आभास होता है कि भगवान् हमारी ओर मुख करके देशना प्रदान कर रहे हैं।

भगवान् का अनुगमन करते हुए प्राची[घ] द्वार से प्रविष्ट वैमानिक[xviii] देव भी 'तीर्थाय नमः' का उच्चारण करके गणधरों एवं श्रमण वर्ग के लिए स्थान छोड़कर वहीं स्थान ग्रहण कर लेते हैं। भवनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिष्क देव दक्षिण द्वार से प्रवेश करके प्रभु की तीन बार प्रदक्षिणा करके नैऋत्यकोण[ङ] में खड़े रहते हैं। इनमें भी सर्वप्रथम भवनपति, उनके पीछे ज्योतिष्क एवं उनके पृष्ठभाग[च] में व्यन्तर देव खड़े रहते हैं। ज्योतिष्क देवियाँ, भवनपति देवियाँ एवं व्यन्तर देवियाँ दक्षिण अपर दिशा में बैठ गयीं। मनुष्य एवं मनुष्य स्त्रियाँ उत्तर द्वार से प्रवेश करके उत्तर दिशा में बैठ गयीं।

द्वितीय परकोटे में तिर्यंच पशु-पक्षी, तिर्यंच स्त्रियाँ बैठ गयीं। तृतीय बाह्य

(क) धनुष–4 हाथ या 96 अंगुल
(ख) वन–जिस उद्यान में एक जाति के वृक्ष हों, उसे वन कहते हैं।
(ग) **मध्यातिमध्य**–ठीक बीचों–बीच
(घ) **प्राची**–पूर्व दिशा
(ङ) **नैऋत्यकोण**–दक्षिण–पश्चिम कोण
(च) **पृष्ठभाग**–पीछे

परकोटे में आगन्तुक श्रद्धालुओं ने यान[क] आदि रख दिये। इस प्रकार समवसरण में भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक–ये चार जाति के देव, चारों जाति की देवियाँ, मनुष्य, मनुष्य स्त्रियाँ, तिर्यंच, तिर्यंच स्त्रियाँ इन बारह जाति की परिषद से सुशोभित प्रभु की दिव्य छटा दर्शनीय थी।

उद्बोधन : भव्यों को परिषद के सुशोभित होने पर मंगलाचरण करने के लिए सर्वप्रथम प्रथम देवलोक का इन्द्र–शक्रेन्द्र स्वयं भक्ति से रोमांचित होकर, अंजलि जोड़कर स्तुति करते हुए इस प्रकार मधुरिम मनमोहक शब्दावली प्रस्तुत करता है–भगवन् ! आपकी ऊर्जस्विल आभा-मण्डल की भव्य प्रभा समस्त दर्शकों को विस्मयान्वित बना रही है। आपके इस दिव्य मुखमण्डल को देखने के लिए, आपकी भव्य देशना को कर्णगोचर करने के लिए अनुत्तर विमानवासी देव[ख] भी तरसते रहते हैं, लेकिन फिर भी.......... वे आपकी इस अमृत देशना का पान करने के लिए भूमण्डल पर अवतरित नहीं हो सकते। हमारा तो आज महान् पुण्योदय है कि हमें आपका पावन सान्निध्य संप्राप्त हुआ है। यह स्वर्णिम अवसर हमारे समक्ष है, इसका हमें परिपूर्ण लाभ लेना है। आपकी सुखद शरण का ही समाश्रय ग्रहण करना है। आपकी ही पर्युपासना[ग] कर जीवन को धन्य बनाना है। निरन्तर आपकी स्तुति करते हुए सिद्धि-सौध[घ] को प्राप्त करना है। आप ही इस भीषण संसार-सागर से पार कराने वाले कुशल, परम नाविक हैं। राग-द्वेष के सघन बंधनों से मुक्त कर वीतरागता के दर्शन कराने वाले हैं। भ्रांतिमय जगत् में आसक्त बनाने वाले मोह कर्म का समूल उच्छेद करने में सामर्थ्यवान हैं। भव्य आत्माओं को विरति के मार्ग पर आरूढ़ करने वाले हैं। सभी को कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर करने वाले हैं। हे भंते ! अब मैं आपश्रीजी को विनति करता हूँ कि आप अपनी अमृतमय वाणी से भव्य आत्माओं को उदबोधन प्रदान करावें। इस प्रकार अपनी श्रद्धा से परिपूर्ण भगवन चरणों में निवेदन प्रस्तुत कर शक्रेन्द्र प्रभु को वंदन-नमस्कार करके अपना आसन ग्रहण करते हैं।

तत्पश्चात् स्वयमेव भगवान् महावीर अपनी दिव्य देशना प्रदान करते हैं[21]।

अहो ! यह संसार समुद्र के समान कठिनाई से पार करने योग्य है। इस संसार में भटकने का मूल कारण कर्म ही है। जैसे कुआँ खोदने वाला व्यक्ति स्वयमेव नीचे ही नीचे चला जाता है, वैसे ही स्वयं द्वारा उपार्जित अशुभ कर्म के उदय से जीव निरन्तर अधोगति में जाता रहता है। तद् विपरीत जैसे महल

(क) यान-रथादि सवारी योग्य साधन, गाड़ी
(ख) अनुत्तर विमानवासी देव-सबसे ऊपर रहने वाले वैमानिक देव, उनके ऊपर सिद्धशिला है।
(ग) पर्युपासना-सेवा, भक्ति   (घ) सिद्धि सौध-मोक्ष-महल

बनाने वाला व्यक्ति क्रमशः ऊपर-ऊपर चढ़ता है, वैसे ही शुभ कर्मों वाला व्यक्ति स्वयं उपार्जित शुभ कर्मों के उदय से ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है।

अशुभ कर्मबंधन की आधारशिला है–हिंसा। हिंसा दुर्गति का द्वार है, हिंसा दुःख का पारावार है, हिंसा घोर दुःखमय फल प्रदान करने वाला आश्रव[क] है। हिंसा अविवेक की जननी है। हिंसा घोर भय उत्पन्न करने वाली है।[22]

इस संसार में अनेक पातकी, संयमविहीन, अनुपशांत[ख] क्रोधादि परिणाम वाले, दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में हर्ष का अनुभव करने वाले, प्राणियों के प्रति द्वेष भाव रखने वाले भयंकर प्राणवध–हिंसा[23] किया करते हैं। वे पाप में आसक्त अन्य प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने में आनन्द का अनुभव करते हैं।

इस हिंसा का प्रमुख कारण है–आसक्ति। कई मानव अनेक प्रकार के वाद्यों, चमड़े के बैग, मुलायम पर्स, मुलायम जूतों के लिए चमड़ा प्राप्त करने के लिए जीवित गर्भवती गाय-भैंसादि का वध करते हैं और उनके जीवित गर्भस्थ शिशु का चमड़ा उतार कर मुलायम चमड़े को प्राप्त करते हैं। केवल स्वयं की प्रसन्नता के लिए ऐसी घोर हिंसा करके भी आनन्द का अनुभव.......... हा ! हा !. .... यह भीषण कर्मबंध का कारण है।

कई लोग रेशमी वस्त्र को प्राप्त करने के लिए हजारों-लाखों कीड़ों को खौलते गर्म पानी में डालकर उनकी निर्मम हत्या करके आनन्द का अनुभव करते हैं, यह घोर दुःख का द्वार है। अपनी विलासिता के लिए दीन-हीन, मूक, असमर्थ, असहाय जन्तुओं की हत्या–यह नरक का द्वार है।[24]

ये बेचारे मूक प्राणी अशरणभूत हैं। इनका कोई नाथ नहीं। ये सहायक विहीन अपने अशुभ कर्मों की बेड़ियों से जकड़े हैं। इनका कितनी निर्ममता से घात मनुष्य करता रहता है। इनके मांस का लोलुप बनकर कैसे-कैसे इन दीन-हीन पशुओं की गर्दन पर छुरियाँ चलाकर अपना उदर-पोषण करता है। केवल अपनी जिह्वालोलुपता से इतना जबरदस्त प्राणघात... हिंसा... घोर कृत्य...।

हिताहित के विवेक से शून्य अज्ञानी हिंसक बुद्धि से, कषाय से, प्रेरित होकर अपने मनोरंजन के लिए, रति[ग] के लिए, मौज-शोक के लिए क्रुद्ध होकर प्राणियों का हनन करता है, लुब्ध होकर प्राणियों का हनन करता है, मुग्ध होकर

(क) आश्रव–जिसके द्वारा आत्मा में कर्म–परमाणु प्रविष्ट होते हैं, उसे आश्रव कहते हैं।
(ख) अनुपशांत–हिंसक।
(ग) रति–विषयसुख।

प्राणियों का हनन करता है। अर्थ के लिए प्राणियों का घात करता है, काम के लिए प्राणियों का घात करता है, बलि आदि चढ़ाने में धर्म मानकर प्राणियों का घात करता है। वह इस घोरतम पाप कर्म का फल भोगने के लिए आयु समाप्त होने पर नरक[क] में पैदा होता है।[25]

नरक गति, जिसका नाम श्रवण करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, उसकी वज्र की बनी दीवारों में जरा-सा भी छिद्र नहीं है। वहाँ से बाहर निकलने का कोई द्वार नहीं। वहाँ की भूमि अत्यन्त कठोर है। भयंकर दुर्गन्ध निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। सदैव भीषण अंधकारमय बने वे नरकावास बड़े ही बीभत्स लगते हैं। पीव और रुधिर के निरन्तर बहने से वहाँ पर सदैव कीचड़ बना रहता है। तलवार से भी अधिक तीक्ष्ण वहाँ की भूमि का स्पर्श है। वहाँ किसी को कोई शरण देने वाला नहीं। अनाथ बने वे नैरयिक जीव निरन्तर असह्य वेदना से संत्रस्त रहते हैं।[26] पन्द्रह परमाधामी[ख] देव भीषण वेदनाएँ उन नारकी जीवों को देकर आनन्द प्राप्त करते हैं। वे परमाधामी देव इस प्रकार वेदना देते हैं।

1. अम्ब (परमाधामी)- ये नारकों को ऊपर उछालकर नीचे पटकते हैं।
2. अम्बरीष–छुरी आदि शस्त्रों से नारकों के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर भाड़ में पकाते हैं।
3. श्याम–नारकों को लातों, घूसों से मारकर जहाँ उन्हें वेदना मिलती है, उन स्थानों में पटक देते हैं।
4. शबल–नारक जीवों की आँतें, नसें, कलेजे को बाहर निकालकर फेंक देते हैं।
5. रुद्र–भाले आदि नुकीले शस्त्रों में नारकों को पिरो देते हैं।
6. उपरुद्र–ये भयंकर असुर नारकों के अंगोपांगों को फाड़ देते हैं।
7. काल–ये नारकों को कड़ाही में पकाते हैं।
8. महाकाल–ये नारकों के मांस के खण्ड-खण्ड करके उन्हें जबरदस्ती खिलाते हैं।
9. असिपत्र–ये तलवार जैसे तीक्ष्ण पत्ते नारकों के शरीर पर गिराते हैं और उनके टुकड़े कर डालते हैं।
10. धनुष–तीक्ष्ण धनुष-बाण फेंककर नारकों के शरीर का छेदन करते हैं।
11. कुम्भ–ये नारकों को कुम्भियों में पकाते हैं।

(क) नरक-जिसमें से सुख निकल गया है ऐसा दुःख भोगने का स्थान
(ख) परमाधामी-नारकी के देवों को दुःख देने वाले देव

12. बालु—ये नारकों को गर्म रेत में चूने की तरह भुनते हैं।
13. वैतरणी—ये मांस, रुधिर, पीव वाली, पिघले ताँबे और शीशे आदि उष्ण पदार्थों से उबलती-उफनती वैतरणी नदी में नारकों को फेंक देते हैं और उन्हें उस नदी में तैरने के लिए विवश करते हैं।
14. खरस्वर—ये तीक्ष्ण काँटों वाले शाल्मली वृक्ष पर नारकों को चढ़ाकर उन्हें इधर-उधर खींचते हैं।
15. महाघोष—घोर यातना से बचने के लिए इधर-उधर भागते नारकों को बाड़े में बंद कर देते हैं।

कितना दुःसह दुःख नारक जीवों को मिलता है। परमाधामी देव कभी उन्हें तेल के कड़ाह में तलते, हैं तो कभी रोटी जैसे सेकते हैं तो कभी पशु की तरह घसीटते हैं, लेकिन वहाँ कोई उनको बचाने में समर्थ नहीं होता।

जिन पारिवारिकजनों के लिए मनुष्य हिंसा करता है, वे पारिवारिकजन वहाँ एक क्षण भी उन्हें शांति नहीं पहुँचा सकते।

नरक की घोर वेदना से हताहत हुआ वह नैरयिक भयंकर रुदन करता हुआ चिल्लाता है। हे स्वामिन ! हे भ्राता ! हे बाप ! हे तात ! मैं मर रहा हूँ। मैं दुर्बल हूँ। मैं व्याधि से पीड़ित हूँ। मुझे ऐसा दारुण दुःख मत दो। मुझे छोड़ दो। थोड़ा-सा विश्राम लेने दो। मैं प्यास से मर रहा हूँ। मुझे थोड़ा-सा पानी दे दो। लेकिन, हा........... हा........... कोई रखवाला नहीं।

उन्हें पानी की जगह उबलता गर्म शीशा पिलाते हैं। वे क्रन्दन करते हैं, रोते हैं तो नरकपाल[क] कुपित होकर उनको धमकाते हैं और चिल्लाते हैं—इसे पकड़ो, मारो, छेदो, भेदो, चमड़ी उधेड़ो, नाक-कान काटो...........।

कितनी दुःसह वेदना पल्योपम[ख] और सागरोपम[ग] तक भोगते हैं और कई जीव मरकर तिर्यंच योनियों में पैदा होते हैं। वहाँ भी उन्हें दारुण कष्टों का सामना करना पड़ता है। वे पराधीन बने दुःख सहते हैं। गायादि के दूध नहीं देने पर घर से बाहर निकाल देते हैं। कत्लखानों में बेच देते हैं, जहाँ पर उनकी निर्ममतापूर्वक हत्या की जाती है।

कई पुण्यहीन प्राणी नरक से निकलकर मनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं, लेकिन

(क) नरकपाल–नरक की रक्षा करने वाला, परमाधामी
(ख) पल्योपम–चार कोस के कुएँ को युगलिकों के बाल से ठसाठस भरने पर, 100 वर्ष से एक बाल निकालने पर जितने समय में वह कुआँ खाली हो, वह एक पल्योपम होता है।
(ग) सागरोपम–दस कोटाकोटि पल्योपम को इतने से ही गुणा करने पर एक सागरोपम होता है।

उन्हें सर्वत्र निन्दा, अपमान और तिरस्कार ही मिलता है। वे अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों से सदैव पीड़ित बने रहते हैं। अपना उदर-पोषण करने में भी सामर्थ्यवान नहीं बनते।[27]

अस्तु ! हे भव्यात्माओं यह हिंसा का भीषण फल-विपाक है, जो भव-भवान्तरों तक जीव को भोगना पड़ता है। यह अल्प सुख और भीषण दुःखवाला है। यह महाभयानक, दारुण, कठोर, भयंकर असाता पैदा करने वाला है। बहुत लम्बे काल तक भोगने पर इससे छुटकारा मिलता है। यह घृणारहित, नृशंस, भयानक, त्रासजनक एवं अन्याय रूप करुणाहीन मनुष्यों का कार्य है। यह मरण और दीनता का जनक है। अतएव इस हिंसा का त्याग कर परम अहिंसा धर्म का सेवन करना चाहिए।[xix]

अहिंसा समस्त प्राणियों के लिए शरणभूत है। यह सुख का द्वार है। यही उत्तम पुरुषों द्वारा आचरणीय है। इसी का अनुपालन कर उत्तम मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। अतएव धैर्य एवं विवेक सम्पन्न होकर अहिंसा की आराधना करने वाला अत्यन्त आनन्द को उपलब्ध कर लेता है।[28]

भगवान् महावीर की धाराप्रवाह दिव्य देशना चल रही है। विशाल जन-समूह, देव-समूह, तिर्यंच[क], पशु-पक्षी एकाग्रचित्त से देशना को श्रवण करने में निरत हैं। अपूर्व शांति का निर्झर प्रवाहित हो रहा है।

मेला : यज्ञ का मध्यम पावा की वह धर्म-धरा, जहाँ एक ओर सर्वज्ञ महाप्रभु महावीर के पदार्पण से धर्ममय बन गयी वहीं दूसरी ओर धनाढ्य सोमिल ब्राह्मण द्वारा यज्ञ का आयोजन करवाने से सैकड़ों विद्वानों की सम्मिलन नगरी बन गई है।

मध्यम पावा का निवासी सोमिल ब्राह्मण उस समय का ख्यातिप्राप्त धनाढ्य गृहस्थ था। उसने एक दिन अपने मन में चिंतन किया कि मुझे यहाँ पर विराट् यज्ञ का आयोजन करवाना है।[29] उसमें सुदूर प्रान्तों से उच्चकोटि के विद्वान पण्डितों को बुलाकर एक यज्ञ मेला-सा लगाना है। यही चिंतन कार्य रूप में परिणत करने के लिए सोमिल कटिबद्ध हो गया। इसके लिए खूब छानवीन करने लगा। अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क साधकर दूर-दूर रहने वाले विद्वान पंडितों का एक सूचीपत्र तैयार किया और मन में निश्चय किया कि ऋतुराज वसंत में ही यह यज्ञ मेला लगवाना है। विचार-विमर्श के पश्चात् उसने वैशाख शुक्ला एकादशी का दिन निर्धारित किया कि इसी दिन विराट् यज्ञ का आयोजन करवाऊँगा।[30] तिथि निर्धारण करने के पश्चात् उसने विद्वान् पण्डितों को निमंत्रण भेजना प्रारम्भ किया।

(क) तिर्यंच-पशु-पक्षी आदि

उसने विद्वत् सूचीपत्र में सर्वप्रथम यज्ञानुष्ठान के आचार्य पद पर नियोजित करने के लिए इन्द्रभूति गौतम का नाम चयन किया और सर्वप्रथम उन्हें ही निमंत्रण भेजा। इन्द्रभूति गौतम का जन्म राजगृह नगर के समीपस्थ गोबर[xx] गाँव में ई. पू. 607 में गौतम गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्मे इन्द्रभूति गौतम के पिता का नाम वसुभूति एवं माता का नाम पृथ्वी था। इनके दो सहोदर छोटे भ्राता क्रमशः अग्निभूति और वायुभूति थे।

इन तीनों भाइयों ने गुरुकुल में रहकर वेद[क]-वेदांग[ख] और उपांग[ग] का सम्यक् अध्ययन किया और स्वल्प वय[घ] में ही अपनी विनयशीलता एवं विलक्षण मेधावी प्रतिभा से विशिष्ट विद्वत्ता को प्राप्त कर लिया। विद्वत्ता प्राप्त करने के पश्चात् अनेक बार विद्वद् गोष्ठियों में जाकर अनेक विद्वानों को वाद में पराजित कर यशोकीर्ति अर्जित की। चहुँ ओर इनकी यशोगाथा प्रसरित होने से अनेक छात्र अध्ययन करने के लिए आने लगे। तीनों भाई अलग-अलग छात्रों को अध्यापन करवाते थे। तीनों भाइयों के पास वर्तमान में 500-500 छात्र अध्ययनरत थे।[31]

इसी समय सोमिल ब्राह्मण का निमंत्रण मिला कि मध्यम पावा में वैशाख शुक्ला एकादशी को विराट् यज्ञ मेला करवाना चाहता हूँ। आप अपने शिष्य परिवार सहित पधारें। आपके तत्त्वावधान में ही यज्ञ करवाना चाहता हूँ। आप पधार कर इस यज्ञ में आचार्य पद को ग्रहण करें। इन्द्रभूति ने इस निमंत्रण को विद्वत्ता की कसौटी मानकर स्वीकार कर लिया। इन्द्रभूति के साथ सोमिल आर्य ने अग्निभूति एवं वायुभूति को भी निमंत्रण भेजा। उन्होंने भी इस निमंत्रण पर अपनी स्वीकृति जाहिर कर दी।

इसके पश्चात् सोमिल आर्य ने कोल्लाक सन्निवेश में व्यक्तभूति एवं सुधर्मा नामक दो उद्भट[ङ] विद्वानों, जो 500-500 शिष्यों के आचार्य थे, निमंत्रण भेजा। व्यक्त के पिता का नाम धनदेव एवं माता का नाम वारुणी था। ये भारद्वाज गोत्रीय थे। वेद-वेदांग के प्रखर ज्ञाता, वर्तमान में 500 शिष्यों को अध्यापन करवा रहे थे। इन्होंने सोमिल आर्य के निमंत्रण को प्राप्त कर अपनी सहज स्वीकृति प्रदान की। सुधर्मा भी धम्मिल एवं भद्दिला के पुत्र अग्निवैश्यायन गोत्रीय थे। विनय की प्रतिमूर्ति सुधर्मा का ज्ञान अतीव निर्मल था और इन्होंने भी अपने गुरुकुल में छात्रों को अध्ययन करवाना प्रारम्भ किया। वर्तमान में 500 छात्रों को सुन्दर शैली से अध्ययन

(क) वेद–ऋगवेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद।
(ख) वेदांग–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष।
(ग) उपांग–मीमांसा, न्याय, धर्म–शास्त्र एवं पुराण।
(घ) स्वल्प वय–छोटी उम्र।
(ङ) उद्भट–विशिष्ट।

करवाने का कार्य करते थे। सोमिल आर्य का निमंत्रण पाकर इन्होंने भी सहज स्वीकृति प्रदान की।

सोमिल ने तदनन्तर अपना निमंत्रण मौर्य सन्निवेश में मण्डित व मौर्य पुत्र को प्रेषित किया। मण्डित धनदेव एवं विजयादेवी के आत्मज तथा मौर्यपुत्र मौर्य एवं विजयादेवी के अंगजात[क] थे। दोनों वेद, वेदांग, उपांग के ज्ञाता थे। दोनों 350-350 छात्रों को अध्ययन करवाते थे। सोमिल आर्य के निमंत्रण पर दोनों ने हर्षान्वित होकर स्वीकृति प्रदान की।

तदनन्तर सोमिल आर्य ने मिथिला नगरी में गौतम गोत्रीय देव एवं जयन्ति के पुत्र, 300 छात्रों के आचार्य अकम्पित को निमंत्रण भेजकर उनकी स्वीकृति प्राप्त की।

इसके पश्चात् कोसला निवासी हारित गोत्रीय अचलभ्राता वसु एवं नन्दा के नन्द[ख] जो 300 छात्रों को अध्ययन करवाने में निपुण थे, उन्होंने भी सोमिल के निमंत्रण को स्वीकार किया।

तदनन्तर वत्सभूमि के तुंगिय सन्निवेश में कौण्डिन्य गोत्रीय दत्त एवं वरुणादेवी के आत्मज, 300 शिष्यों के अध्यापक मैतार्य को एवं राजगृह में कौण्डिन्य गोत्रीय 300 छात्रों के अध्यापक बल एवं अतिभद्रा के पुत्र प्रभास[32] को सोमिल ने यज्ञ के लिए निमंत्रित कर स्वीकृति प्राप्त की।

अन्य अनेक उद्‌भट विद्वानों को निमंत्रण भेजकर सोमिलाचार्य ने स्वीकृति प्राप्त कर ली। उस यज्ञ की कई दिनों से बड़ी जोर-शोर से तैयारी चल रही थी। सब निमंत्रित विद्वान यथासमय अपने शिष्य समुदाय सहित उस विराट् यज्ञ मेले में भाग लेने हेतु आ गये थे। सभी उत्सुकता से वैशाख शुक्ला एकादशी का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे।

गणधर समागम :-

अनेक अरमानों को मन में संजोये इन्द्रभूति विविध प्रकार से यज्ञ को सफल बनाने के लिए चिंतनशील थे। उनके इस चिंतन को कार्यरूप में परिणत करने हेतु यह वैशाख शुक्ला एकादशी का दिन अपनी दिव्य आभा को लेकर मध्यम पावा में अवतरित हुआ। इन्द्रभूतिजी यज्ञ मण्डप में अनेक विद्वानों के साथ आये और वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए आहुतियाँ देने लगे। विशाल जन-समूह अत्यन्त निमग्नता से इस यज्ञ के कार्य को उत्सुकता से देख रहा

(क) अंगजात-पुत्र
(ख) नन्द-पुत्र

था। इधर यज्ञ का कार्य बहुत जोरों से चल रहा था, उधर आकाश मण्डल में यत्र-तत्र-सर्वत्र देव विमान दिखाई देने लगे।

तभी इन्द्रभूति ने सगर्व सोमिलार्य से कहा–"देखो आर्य ! यज्ञ की महिमा देखकर ये देव-विमान[क] हमारे यहाँ अवतरित हो रहे हैं।"[33]

सभी मण्डप की जय-जयकार करने लगे। खचाखच भरा यज्ञ मण्डप जय-जयकारों से गुंजित हो उठा। सब टकटकी लगाकर आकाश की ओर निहारने लगे, लेकिन देखकर हतप्रभ रह गये..........। यह क्या..........? विमान इधर आते-आते रुक गये..........। तब इन्द्रभूति ने पूछा–क्या पावा में और कोई ऐंद्रजालिक आया हुआ है?

सोमिल ने कहा–जनश्रुति है कि महावीर नामक कोई सर्वज्ञ आये हैं और आज उनका समवसरण हो रहा है।

इन्द्रभूति–महावीर.......... सर्वज्ञ.......... क्या मुझसे बड़ा इस दुनिया में कोई विद्वान है? वह तो मायावी है, मायावी ! उसने देवों को भी अपने वश में करके भ्रमजाल में डाल दिया है। देव आये थे यज्ञ मण्डप में, लेकिन.......... उस मायावी ने........ भ्रमित कर दिया। अभी जाता हूँ, उस मायावी के मायाजाल की धज्जियाँ उड़ाकर आता हूँ। यों कहकर इन्द्रभूति गौतम अपने 500 शिष्यों सहित चल पड़े।[34]

इन्द्रभूति के कदम तीव्रता से समवसरण की ओर गतिमान हो रहे हैं। मन उससे भी तीव्र चल रहा है कि कब उस मायावी को देखूँ और कब परास्त करूँ!, लेकिन अहंकारी कभी किसी को परास्त नहीं कर सकता। वह या तो स्वयं ही पराजित होकर चरणों में गिरता है या अपने सम्पूर्ण जीवन के सद्गुण अहंकार की आग में झोंक देता है। इन्द्रभूति के अहंकार को भी चुनौती है।

पथ में गमन करते हुए स्वयं की विजय का दम्भ मन में कुलाचें[ख] भर रहा था। दंभ में अपने ज्ञान को प्रशंसनीय मानते हुए न जाने कब पथ समाप्त हो गया, पता ही नहीं चला।

वह चलते-चलते भगवान् के समवसरण के समीप पहुँचता है। समवसरण की दूर से ही आभा देख कर दाँतों तले अंगुली दबाने लगता हैं। अरे ! यह तो बाहर से ही अत्यन्त आकर्षक लग रहा है तो फिर भीतर का तो कहना ही क्या..........?

कदम बढ़ रहे हैं। आवेग शांत बन रहे हैं। शनैः-शनै समवसरण में प्रवेश

(क) विमान–पुण्य करने वाले जिनका विशेष भोग करते है, विमान है।

(ख) कुलाचें–उछालें

करवाने का कार्य करते थे। सोमिल आर्य का निमंत्रण पाकर इन्होंने भी सहज स्वीकृति प्रदान की।

सोमिल ने तदनन्तर अपना निमंत्रण मौर्य सन्निवेश में मण्डित व मौर्य पुत्र को प्रेषित किया। मण्डित धनदेव एवं विजयादेवी के आत्मज तथा मौर्यपुत्र मौर्य एवं विजयादेवी के अंगजात[क] थे। दोनों वेद, वेदांग, उपांग के ज्ञाता थे। दोनों 350-350 छात्रों को अध्ययन करवाते थे। सोमिल आर्य के निमंत्रण पर दोनों ने हर्षान्वित होकर स्वीकृति प्रदान की।

तदनन्तर सोमिल आर्य ने मिथिला नगरी में गौतम गोत्रीय देव एवं जयन्ति के पुत्र, 300 छात्रों के आचार्य अकम्पित को निमंत्रण भेजकर उनकी स्वीकृति प्राप्त की।

इसके पश्चात् कोसला निवासी हारित गोत्रीय अचलभ्राता वसु एवं नन्दा के नन्द[ख] जो 300 छात्रों को अध्ययन करवाने में निपुण थे, उन्होंने भी सोमिल के निमंत्रण को स्वीकार किया।

तदनन्तर वत्सभूमि के तुंगिय सन्निवेश में कौण्डिन्य गोत्रीय दत्त एवं वरुणादेवी के आत्मज, 300 शिष्यों के अध्यापक मैतार्य को एवं राजगृह में कौण्डिन्य गोत्रीय 300 छात्रों के अध्यापक बल एवं अतिभद्रा के पुत्र प्रभास[32] को सोमिल ने यज्ञ के लिए निमंत्रित कर स्वीकृति प्राप्त की।

अन्य अनेक उद्भट विद्वानों को निमंत्रण भेजकर सोमिलाचार्य ने स्वीकृति प्राप्त कर ली। उस यज्ञ की कई दिनों से बड़ी जोर-शोर से तैयारी चल रही थी। सब निमंत्रित विद्वान यथासमय अपने शिष्य समुदाय सहित उस विराट् यज्ञ मेले में भाग लेने हेतु आ गये थे। सभी उत्सुकता से वैशाख शुक्ला एकादशी का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे।

गणधर समागम :–

अनेक अरमानों को मन में संजोये इन्द्रभूति विविध प्रकार से यज्ञ को सफल बनाने के लिए चिंतनशील थे। उनके इस चिंतन को कार्यरूप में परिणत करने हेतु यह वैशाख शुक्ला एकादशी का दिन अपनी दिव्य आभा को लेकर मध्यम पावा में अवतरित हुआ। इन्द्रभूतिजी यज्ञ मण्डप में अनेक विद्वानों के साथ आये और वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए आहुतियाँ देने लगे। विशाल जन-समूह अत्यन्त निमग्नता से इस यज्ञ के कार्य को उत्सुकता से देख रहा

(क) अंगजात–पुत्र
(ख) नन्द–पुत्र

था। इधर यज्ञ का कार्य बहुत जोरों से चल रहा था, उधर आकाश मण्डल में यत्र-तत्र-सर्वत्र देव विमान दिखाई देने लगे।

तभी इन्द्रभूति ने सगर्व सोमिलार्य से कहा–"देखो आर्य ! यज्ञ की महिमा देखकर ये देव-विमान[क] हमारे यहाँ अवतरित हो रहे हैं।"[33]

सभी मण्डप की जय-जयकार करने लगे। खचाखच भरा यज्ञ मण्डप जय-जयकारों से गुंजित हो उठा। सब टकटकी लगाकर आकाश की ओर निहारने लगे, लेकिन देखकर हतप्रभ रह गये...........। यह क्या...........? विमान इधर आते-आते रुक गये...........। तब इन्द्रभूति ने पूछा–क्या पावा में और कोई ऐंद्रजालिक आया हुआ है?

सोमिल ने कहा–जनश्रुति है कि महावीर नामक कोई सर्वज्ञ आये हैं और आज उनका समवसरण हो रहा है।

इन्द्रभूति–महावीर........... सर्वज्ञ........... क्या मुझसे बड़ा इस दुनिया में कोई विद्वान है? वह तो मायावी है, मायावी ! उसने देवों को भी अपने वश में करके भ्रमजाल में डाल दिया है। देव आये थे यज्ञ मण्डप में, लेकिन........... उस मायावी ने........ भ्रमित कर दिया। अभी जाता हूँ, उस मायावी के मायाजाल की धज्जियाँ उड़ाकर आता हूँ। यों कहकर इन्द्रभूति गौतम अपने 500 शिष्यों सहित चल पड़े।[34]

इन्द्रभूति के कदम तीव्रता से समवसरण की ओर गतिमान हो रहे हैं। मन उससे भी तीव्र चल रहा है कि कब उस मायावी को देखूँ और कब परास्त करूँ!, लेकिन अहंकारी कभी किसी को परास्त नहीं कर सकता। वह या तो स्वयं ही पराजित होकर चरणों में गिरता है या अपने सम्पूर्ण जीवन के सद्गुण अहंकार की आग में झोंक देता है। इन्द्रभूति के अहंकार को भी चुनौती है।

पथ में गमन करते हुए स्वयं की विजय का दम्भ मन में कुलाचें[ख] भर रहा था। दंभ में अपने ज्ञान को प्रशंसनीय मानते हुए न जाने कब पथ समाप्त हो गया, पता ही नहीं चला।

वह चलते-चलते भगवान् के समवसरण के समीप पहुँचता है। समवसरण की दूर से ही आभा देख कर दाँतों तले अंगुली दबाने लगता हैं। अरे ! यह तो बाहर से ही अत्यन्त आकर्षक लग रहा है तो फिर भीतर का तो कहना ही क्या...........?

कदम बढ़ रहे हैं। आवेग शांत बन रहे हैं। शनैः-शनै समवसरण में प्रवेश

(क) विमान–पुण्य करने वाले जिनका विशेष भोग करते है, विमान है।

(ख) कुलाचें–उछालें

करता है। समवसरण में प्रवेश करते हुए अपने प्रतिद्वन्दी को देखने के लिए नेत्र विस्फारित थे, कर्ण लालायित थे, वचन निसृत होने को आतुर थे। पद अविलम्ब द्रुतगति से गतिमान थे। तभी सहसा भगवान् महावीर सिंहासन पर विराजमान दृष्टिगत हुए। भगवान् के मुख-मण्डल के अपरिमित तेज को देखकर चिंतन करता है–ऐसा भव्य मुख-मण्डल, ऐसी दिव्य ज्योति मैंने कहीं भी, कभी भी नहीं देखी.........। हो सकता है ये सर्वज्ञ हों।

इन्द्रभूति का चिंतन चल रहा है, तभी भगवान् ने इन्द्रभूति को सम्बोधित करके कहा–इन्द्रभूति गौतम ! (इन्द्रभूति अपना नाम श्रवण कर) ओह ! यह मेरा नाम भी जानता है? मेरा नाम.......... मेरा नाम.......... मैं तो ख्यातिप्राप्त विश्वप्रसिद्ध विद्वान हूँ। तब मेरा नाम तो यह जानता ही होगा। लेकिन यह मेरे मन में रहे हुए संशय को जाने और उसे छिन्न कर डाले तब जानूँ, यह सर्वज्ञ है।

तभी भगवान् ने इन्द्रभूति से कहा–गौतम ! तुम्हारे मन में आत्मा के अस्तित्व को लेकर संशय है। वेद वाक्यों का सम्यक् अर्थ नहीं समझने से तुम्हारे मन में संदेह पैदा हो रहा है कि आत्मा नामक कोई पदार्थ है या नहीं? इसके लिए तुम यह मानते हो कि यदि आत्मा नामक पदार्थ होता तो वह प्रत्यक्ष क्यों नहीं दिखता?

लेकिन तुम्हारा यह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रत्येक जीव को यह अनुभूति होती है कि मैं हूँ। ऐसा ज्ञान जीवों को होता है, अजीव पदार्थों को नहीं। बस, यही अस्तित्वबोध, आत्मा की सिद्धि करता है। जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है, उस घट का निर्माता कुम्हार है, वैसे ही शरीर का निर्माता आत्मा है।

संसार में अनन्त आत्माएँ हैं और उनका पृथक्-पृथक् अस्तित्व है। एक आत्मा सर्वव्यापी नहीं है अपितु आत्मा तो शरीर-व्यापी है। इसी कारण अलग-अलग आत्माओं के पृथक्-पृथक् पुण्य-पाप आदि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। यह आत्मा अजर, अमर तथा अविनाशी तत्त्व है।

यह आत्मा पंचभूतों[क] से पैदा नहीं होती, क्योंकि पंचभूत जड़ एवं आत्मा चेतन है। जड़ से कभी भी चैतन्य की उत्पत्ति संभव नहीं है। इसलिए आत्मा नामक एक चैतन्य पदार्थ लोक में विद्यमान है।

वेद में जो यह वाक्य आया है–"विज्ञान धन एवं भूतेभ्यो समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञा अस्ति।"[35] इसका तात्पर्य है कि पदार्थ से पैदा होने वाला ज्ञान पदार्थ को देखकर उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है, पूर्वकालीन

(क) पंचभूत–पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, आकाश।

ज्ञान नहीं रहता अर्थात् जैसे किसी व्यक्ति ने घड़े को देखा तो उसको ज्ञान पैदा होगा कि यह घड़ा है। उसके पश्चात् उसने कपड़े को देखा तो वह घड़े सम्बन्धी ज्ञान उस समय नहीं रहकर कपड़े सम्बन्धी ज्ञान पैदा हो जायेगा कि यह कपड़ा है। इस वाक्य का यही अर्थ है।

वेद में भी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारते हुए कहा है-"अस्तमिते आदित्य याज्ञवल्क्य ! चन्द्रमस्यस्तमिते, शान्तेऽग्नौ, शांतायांवाचि, किं ज्योतिरेवायं पुरुषः? आत्म ज्योति रेवायं सम्राड्ति होवाच।" अर्थात् हे याज्ञवल्क्य जब सूर्य अस्त हो जाता है, जब चन्द्र अस्त हो जाता है, अग्नि शांत हो जाती है, वचन शांत हो जाता है, तब पुरुष में कौनसी ज्योति होती है? हे सम्राट् आत्म ज्योति होती है।" इस वेदवाक्य में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। अतः हे गौतम ! आत्मा नामक पदार्थ जगत् में विद्यमान है। तुम्हें संशय नहीं करना चाहिए।

वीतराग परमात्मा महावीर की वाणी को श्रवण कर इन्द्रभूति गौतम का संशय दूर हुआ, अंधकार समाप्त हुआ और विनयपूर्वक प्रभु की पर्युपासना करते हुए बोले-भगवन् मैं अहं से ग्रसित अत्यन्त तुच्छ विचार लेकर आपको पराजित करने हेतु यहाँ उपस्थित हुआ। सूर्य के सामने-टिमटिमाता दीया बनकर उसकी ज्योति को धूमिल करने चला। तिनका बनकर रत्नाकर[क] की अथाह जलराशि पर प्रभुत्व जमाने लगा। कषाय कलुषित बनकर निष्कषायी, निर्मल परमात्मा को जीतने चला, लेकिन जिसने राग-द्वेष आदि विकारों को परास्त कर दिया, उसे कौन परास्त कर सकता है ! अतः मैं अपने अपराध की क्षमायाचना चाहता हूँ। आप सरीखे भव्य कल्पवृक्ष के दर्शन कर मैं संसार से विरक्त होकर शिष्य समुदाय सहित श्रीचरणों में दीक्षित होकर समर्पित बनना चाहता हूँ। आप मुझे अपनी नेश्राय में शिष्य रूप में स्वीकार करने का अनुग्रह करावें।

तब भगवान् महावीर ने इन्द्रभूति एवं उनके शिष्यों की भावना को केवलज्ञान के आलोक से जाना। उसी समय संयम यात्रा के निर्वाह के लिए कुबेर नामक देवता ने उन्हें धर्मोपकरण प्रदान किये। धर्मोपकरण चारित्र पालन में सहायक हैं, ऐसा जानकर उन्होंने देव प्रदत्त धर्मोपकरणों को ग्रहण कर लिया।[36] स्थानांग, आचारांग एवं छेद सूत्रों[ख] में तथा अन्य अनेक स्थानों पर आगमों में साधक को धर्मोपकरण ग्रहण करने एवं उन्हें यतना[ग] से रखने का विधान परिलक्षित होता है। अतः जो वस्त्र रखने में परिग्रह मानते हैं उनकी मान्यता शास्त्रोक्त प्रकरण से मेल नहीं खाती।[37]

(क) रत्नाकर-समुद्र

(ख) छेदसूत्र-दशाश्रुत स्कन्ध, वृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथसूत्र

(ग) यतना-विवेक

इन्हीं धर्मोपकरणों को ग्रहण कर इन्द्रभूति आदि सभी ने प्रभु महावीर के पास संयम ग्रहण कर अपना जीवन समर्पित कर दिया। इधर इन्द्रभूति तो अहंकार का परित्याग कर विनयधर्म की आराधना में लग गये, उधर यज्ञ-मण्डप में इन्द्रभूतिजी का बेसब्री से इंतजार हो रहा है कि इतनी देर हो गई, अभी तक क्यों नहीं लौटे? उसी पथ पर टकटकी लगाकर अनिमेष नेत्रों से अग्निभूतिजी देख रहे हैं और चिंतन कर रहे हैं कि मेरे अग्रज, सहोदर भ्राता उस पाखण्डी को पछाड़कर आने ही वाले होंगे। इंतजार करने में समय निरन्तर व्यतीत हो रहा है। मन ऊहापोह में लगा है। ओह ! क्या विवाद लम्बा हो गया है? या लगता है वह पाखण्डी बड़ा धूर्त है, उसने मेरे भैया को ठग लिया है ! अब क्या यहाँ रहकर ही उनकी प्रतीक्षा करूँ? नहीं.......... नहीं.......... बहुत.......... विलम्ब[क] हो जायेगा.......... भैया कहीं अकेले न पड़ जायें.......... वह पाखण्डी कहीं उन्हें परास्त न कर दे.......... मुझे अपने भैया का सहयोग करना चाहिए.......... विपत्ति में भाई के भाई काम न आया तो वह भाई किस काम का? लगता है वह पाखण्डी बड़ा धूर्त है, उसने अपने इन्द्रजाल में भैया को फँसा लिया होगा, क्योंकि मेरे भैया बड़े ही सरल और विनीत प्रकृति वाले हैं लेकिन मैं.......... मैं.... .... उसके मायाजाल में फँसने वाला नहीं हूँ। मैं जाता हूँ.......... मैं जाता हूँ..... ...... ऐसा चिंतन करते हुए अग्निभूति भी अपने 500 शिष्यों सहित भगवान् को परास्त करने चल पड़े।[38]

विचारों में डूबे हुए, कब समवसरण आ गया, अग्निभूति को पता ही नहीं चला। यकायक जब भगवान् महावीर को अपने सामने सिंहासन पर बैठे देखा तो देखते ही.......... अरे ! यह भव्य मुख-मण्डल ! ऐसा ओजस्वी, तेजस्वी, सौम्य वदन[ख] कभी देखा ही नहीं। वे प्रभु को देखते ही अभिभूत होकर निहारते ही रहते हैं। निहारते-निहारते विस्मृत हो गये कि वे किस कारण यहाँ समुपस्थित हुए थे। उनके अधर[ग] खुल ही नहीं पा रहे थे। वाणी मूक बन गयी। मन तल्लीन! तभी भगवान् ने उन्हें सम्बोधित करते हुए फरमाया—अग्निभूति ! तुम्हारे हृदय में कर्म के विषय में संदेह है। वेद वाक्यों का सम्यक् अर्थ नहीं जानने के कारण तुम कर्मों के विषय में संदेह करते हो कि कर्म है या नहीं? लेकिन तुम्हारा यह संदेह व्यर्थ है। ज्ञानियों ने अपने केवलज्ञान में कर्म की सत्ता को प्रत्यक्ष देखा है।

(क) विलम्ब–देर
(ख) वदन–मुख
(ग) अधर–होंठ

तुम यह सोचते हो कि कर्म तो मूर्तिमान (रूपी)[क] हैं, उनका अमूर्त (अरूपी)[ख] आत्मा के साथ कैसे सम्बन्ध हो सकता है? अमूर्त आत्मा को मूर्त कर्म कैसे सुख-दुःख दे सकते हैं? किन्तु तुम्हारा यह चिंतन निरर्थक है, क्योंकि जैसे तुम्हारी अंगुली रूपी है, दिखाई देती है, लेकिन अंगुली को फैलाने आदि की क्रिया अमूर्त है, दिखाई नहीं देती, फिर भी अंगुली का फैलने आदि की क्रिया के साथ सम्बन्ध होता है, इसी प्रकार अमूर्त आत्मा के साथ भी मूर्त कर्मों का सम्बन्ध होता है।

जैसे मूर्त शराब अमूर्त आत्मा का उपघात करती है और मूर्त औषधि अमूर्त आत्मा का अनुग्रह लाभ करती है, वैसे ही मूर्त कर्म भी अमूर्त आत्मा का अनुग्रह एवं उपघात करते हैं। कर्म की विचित्रता से ही प्राणियों को सुख-दुःख की अनुभूति होती है। व्यक्ति कर्म से ही महान और कर्म से ही शैतान बन जाता है। कर्म से ही एक भाई राजा व दूसरा भाई भिखारी बनता है।

इस संसार में कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई अच्छा, कोई बुरा बनता है उसमें कर्म ही कारण है। संसार की विचित्रता कर्म से ही संभव है। यह संसार कर्मकृत है, ईश्वरकृत नहीं। क्योंकि ईश्वर तो सर्वज्ञ है। वह वीतराग होने से किसी को सुखी या किसी को दुःखी क्यों बनायेगा? अतः कर्म की सत्ता को तुम्हें स्वीकार करना ही चाहिए।

वेद वाक्यों का सम्यक् ज्ञान नहीं होने से तुम्हें कर्म के विषय में संदेह हो रहा है। तुमने वेद में पढ़ा "पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानः। यदन्नेनातिरोहति तदेजति, तद् न्नैजति, तद दूरे तद् अन्तिके यदनन्तरस्य सर्वस्य यत् सर्वस्यास्य बाहयतः।"[39] इसका तुम यह अर्थ करते हो कि आत्मा ही है, जो इस संसार में चेतन-अचेतन रूप दिखाई देता है, जो भूतकाल में था, जो भविष्य में है, जो अमरण भाव या मोक्ष का प्रभु है, जो अन्न से वृद्धि प्राप्त करता है, जो चलता है, जो अचल है, जो दूर है, जो निकट है, जो इन चेतन-अचेतन पदार्थों के मध्य है, जो इन सब पदार्थों से बाह्य है, वह सब केवल पुरुष है, आत्मा है। इस वेद वाक्य से तुम यह समझते हो कि आत्मा के अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है, लेकिन तुम्हारा मानना संगत नहीं, क्योंकि इस वाक्य में अतिशयोक्तिपूर्वक पुरुष (आत्मा) की महिमा गाई है।

लेकिन इतने मात्र से कर्म का खण्डन नहीं होता। स्वयं वेदों में कर्म की

(क) **मूर्तिमान**–जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हो।
(ख) **अमूर्त**–जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श नहीं हो।)

सत्ता स्वीकार की गई है। वहाँ कहा है- 'पुण्यः पुण्येन, पापः पापेन कर्मणा' अर्थात् पुण्यकर्म से पुण्य और पापकर्म से पाप मिलता है। इस प्रकार तुम्हारे मन में संदेह होता है कि कर्म है या नहीं? परन्तु हे अग्निभूति ! अब तुम्हारा संशय दूर हो गया होगा।

तब अग्निभूति ने प्रभु चरणों में वंदन कर कहा—भंते ! मैं अब कर्म की सत्ता को निस्संदेह स्वीकार करता हूँ तथा आपकी जो पूर्व में अविनय आशातना की उसके लिए क्षमायाचना करता हूँ। आपकी सर्वज्ञता को अनुमान एवं व्यवहार से दृष्टिगत कर मैं आपश्री के चरणों में दीक्षित होना चाहता हूँ।

तब भगवान् ने अग्निभूति एवं उसके 500 शिष्यों को प्रव्रज्या देकर दीक्षित किया।[40]

अग्निभूति प्रभु-चरणों में समर्पित हो गए यह समाचार वायुभूति के कर्ण-कुहरों[क] तक पहुँचे। तब चिंतन की चाँदनी में झलकने लगा कि जिन सर्वदर्शी सर्वज्ञ प्रभु के चरणों में इन्द्रभूतिजी, अग्निभूतिजी सर्वस्व समर्पण कर अपने जीवन के स्वर्णिम क्षणों को धन्य बना रहे हैं, उनकी पर्युपासना करके मैं भी अपने जीवन को निष्पाप बना डालूँ और मेरे मन में जो संशय है वह भी मिटा डालूँ। तो मैं भी जाता हूँ.......... मैं भी जाता हूँ.......... चिंतन के साथ कदम भी चल पड़े। अपने शिष्य परिवार सहित विचारधारा में डूबे हुए ही समवसरण में प्रविष्ट हुए। जैसे ही उन्होंने प्रभु चरणों में प्रणति[ख] की, भगवान् ने उनको सम्बोधित करते हुए कहा—"वायुभूति गौतम !" भगवान् की अमृत वाणी से निसृत कर्णप्रिय शब्दों का सम्बोधन सुना, भगवान् का अप्रतिम सौन्दर्य देखा और समवसरण की भव्य छटा को दृष्टिगत कर वे स्तब्ध हो गए। आश्चर्यचकित होकर मानो सब-कुछ भूलकर निर्निमेष प्रभु को ही निहारने लगे। तब प्रभु ने फरमाया—वायुभूते ! तुम्हारे मन में सुदीर्घकाल से संशय चल रहा है कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं या एक ही। तुम्हारे इस संशय का कारण वेद वाक्य है। तुमने वेद वाक्य पढ़े, लेकिन उनका सम्यक् अर्थ नहीं जाना इसलिए तुम संदेहग्रस्त हो। तुम ऐसा चिंतन करते हो कि जैसे बुलबुला जल में से उठकर जल में ही समाप्त हो जाता है वैसे ही जीव शरीर में से पैदा होकर शरीर में ही नष्ट हो जाता है।[41] परन्तु वायुभूते! जीव और शरीर वस्तुतः पृथक्-पृथक् हैं, क्योंकि शरीर जड़ है और चैतन्य आत्मा उपयोग लक्षण वाला, ज्ञान गुण वाला है।[42] जड़ से कभी चैतन्य की उत्पत्ति नहीं होती।[43] जैसे रेत से तेल नहीं निकलता वैसे ही जड़ से चेतन पैदा नहीं होता है। अतः शरीर के नष्ट होने पर उसमें से आत्मा निकल

(क) कर्ण कुहरों–कानों तक (ख) प्रणति–प्रणाम

जाती है। साथ ही जैसे आँख देखने का कार्य करती है, कान सुनने का, नाक सूँघने का, जीभ चखने का तथा शरीर स्पर्श का अनुभव करता है। लेकिन इन सबका अनुभव करने वाला, स्मरण करने वाला आत्मा ही है। वही आत्मा इन्द्रियों का निर्माण करता है। इससे भी सिद्ध होता है कि जीव व शरीर अलग-अलग हैं। तुम ऐसा विचार करते हो कि जैसे गुड़, फूल आदि में मदशक्ति नहीं है, लेकिन उनको मिलाने पर उनके समुदाय में मदशक्ति उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु और आकाश में चैतन्य शक्ति नहीं है, लेकिन इनको मिलाने से चैतन्य शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

लेकिन तुम्हारा यह मानना उचित नहीं है, क्योंकि गुड़ में और फूल आदि में थोड़ी-थोड़ी मादक शक्ति होती है। उनको मिलाने पर विशेष मादक शक्ति पैदा हो जाती है। परन्तु जड़ पदार्थों में थोड़ी-सी भी चैतन्य शक्ति नहीं है तब उनको मिलाने पर चैतन्य शक्ति पैदा नहीं हो सकती है।[44] वेद में जो यह कहा है–विज्ञान धनएव एतेभ्य.......... उसका अर्थ तो यह है कि किसी भी पदार्थ को देखने से जो ज्ञान होता है, वह उस पदार्थ के हटने पर हट जाता है। वेदों में स्पष्ट कहा है–स्वर्ग कामी जुहुयात्........... स्वर्ग की इच्छा से यज्ञ करो। जब आत्मा परलोक में जाती नहीं, फिर स्वर्ग की इच्छा क्यों होगी? अतएव आत्मा परलोक जाती है। वह जड़ पदार्थों से भिन्न है। भगवान् द्वारा ऐसा कहने पर वायुभूति बोले–प्रभो ! मेरा संशय दूर हो गया है। अब मैं आपके सान्निध्य में संयम अंगीकार करना चाहता हूँ।

भगवान् ने वायुभूति व उसके 500 शिष्यों की भावना जानकर उन्हें प्रव्रज्या प्रदान की।[45]

विशाल यज्ञ-मण्डप में से तीन महाविभूतियों के समवसरण में प्रविष्ट होकर सर्वज्ञ प्रभु से समाधान प्राप्त कर अपने जीवन को संयम के परिवेश में सुसज्जित कर लिया। उनकी प्रव्रज्या[क] के समाचार यज्ञ-मण्डप में स्थित व्यक्तभूति को कर्णगोचर हुए। उन्होंने भी चिंतन किया कि अब मुझे भी समवसरण में जाकर उस महापुरुष के दर्शन करना चाहिए जिसने स्वल्प समय में 1503 साधुओं को दीक्षित कर दिया।

इस प्रकार विचार करते हुए व्यक्तभूति अपने शिष्य समुदाय सहित यज्ञ-मण्डप से निकले और शनैः-शनै समवसरण में प्रवेश किया। प्रभु का यह अत्यंत पुण्य प्रभा से संवलित[ख] भव्य दीदार देखकर अत्यंत आकृष्ट बने निर्निमेष नेत्रों से

(क) प्रव्रज्या–दीक्षा, पाप हटकर शुद्ध चरण योगों में प्रवचन गमन करना प्रव्रज्या है।
(ख) संवलित–युक्त

देखते ही रहे। वे मानों सब कुछ विस्मृत हो गए। तब भगवान् ने उन्हें सम्बोधित करके कहा—व्यक्त भारद्वाज ! तुम्हारे मन में बहुत समय से संशय चल रहा है। उसका कारण है वेद में परस्पर विरोधी वाक्यों का तुमने श्रवण किया, लेकिन उनका सम्यक् अर्थ नहीं जाना। तुमने वेद का एक वाक्य श्रवण किया, "स्वपनोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरंजसा विज्ञेयः।" अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्न सदृश है। यह ब्रह्मविधि (स्पष्ट) रूप से जानने योग्य है। इस वाक्य को पढ़कर तुमने यह चिंतन कर लिया कि सारा संसार स्वप्न के समान है। किन्तु दूसरी जगह तुमने वेद वाक्य को श्रवण किया—"द्यावा पृथिवी आपो देवता" अर्थात् पृथ्वी देव है, जल देव है, इससे पदार्थों का अस्तित्व सिद्ध होता है। इससे तुम्हारे मन में संशय हो गया कि यह दिखने वाला संसार काल्पनिक है या इसमें किसी पदार्थ की सत्ता है? हे व्यक्त ! मैं तुम्हें सम्यक् अर्थ बतला दूँगा जिससे तुम्हारा संशय दूर होगा। जो पदार्थ तुम्हें आँखों से प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहे हैं, उन्हें तुम स्वप्नवत् कैसे मान लोगे? जैसे इस लोक में तुम अपना स्वयं का अस्तित्व मानते हो वैसे ही पृथ्वी, अप्, वनस्पति, जो साक्षात् दिखलाई देते हैं, उनका अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए। वायु का भी हमें स्पर्श से ज्ञान होता है। सभी पदार्थों का कोई आधार होना चाहिए और वह आधार है आकाश[क] (खाली जगह)।

इस प्रकार प्रत्यक्ष दिखने वाले जीव और अजीवों का स्वरूप तुम्हें स्वीकार करना चाहिए। वेद में संसार को स्वप्नवत् बतलाया इसका अर्थ यह नहीं कि संसार में पदार्थों का अभाव है, लेकिन इसका यह अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति सांसारिक पदार्थों के आकर्षण में आसक्त न बन जाए। इसी उद्देश्य से संसार को असार जानकर मानव निर्मोही बनकर संसार से विरक्त बने और शाश्वत सुख-धाम मोक्ष को प्राप्त करे।

भगवान् के ऐसा फरमाने पर व्यक्तभूति ने कहा—भंते ! मेरा संशय सर्वथा छिन्न हो गया है। मैं आपके पावन सान्निध्य में चारित्र अंगीकार करना चाहता हूँ।

भगवान् ने व्यक्तभूति के विरक्तिपरक भावों को जानकर 500 शिष्यों सहित उन्हें जिन-धर्म में दीक्षित कर दिया। व्यक्तभूति के समाचारों का बेताबी से इंतजार कर रहे थे—सुधर्मा। वे जानना चाहते थे कि व्यक्तभूति लौटेगा या समर्पित बनेगा। तभी उन्हें यज्ञ-मण्डप में समाचार मिले कि व्यक्तभूति ने 500 शिष्यों सहित भगवान् महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार कर लिया है।[46]

यह श्रवण कर उन्होंने सोचा कि अब मुझे भी प्रभु को वंदन-नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करनी चाहिए। वे भी इसी उद्देश्य को लेकर समवसरण की ओर भक्तियुक्त कदमों से चलने लगे।

(क) आकाश-सभी द्रव्यों का आधारभूत द्रव्य (खाली जगह)

प्रभु दर्शनों की ललक को मन में संजोए न जाने कब पथ की इतिश्री हो गई, पता ही नहीं चल पाया। वे भव्य आभा वाले समवसरण में प्रविष्ट हुए और प्रभु के अतिशयसम्पन्न आभामण्डल को देखकर स्तब्ध रह गए। तभी भगवान् ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा–सुधर्मन् अग्निवेश्यायन ! तुम्हारे मन में एक संशय व्याप्त है। तुमने एक वेद वाक्य श्रवण किया–"पुरुषोमृतः सन् पुरुषत्वमेवाश्नुते पशवः पशुत्वम्" अर्थात् पुरुष मरकर पुरुष होता है व पशु मरकर पशु होता है, लेकिन दूसरी जगह वेद में कहा है कि "शृगालो वै एष जायते यः स पुरीषो दह्यते" अर्थात् जिसको मल सहित जलाया जाता है, वह शृगाल बनता है। इस प्रकार वेद वाक्यों से तुम्हें संदेह हो रहा है कि जो इस लोक में मनुष्य है वह मरकर क्या मनुष्य ही बनता है या तिर्यंच आदि बन सकता है?

सुधर्मन् ! जो तुम यह सोचते हो कि मनुष्य मरकर सदैव मनुष्य ही बनता है, तुम्हारा यह सोचना ठीक नहीं है, क्योंकि कई लोग मनुष्य गति में दान, शील, तप आदि की श्रेष्ठ आराधना करते हैं और विशेष पुण्य का अनुबंध करने से वे मनुष्य नहीं, देव योनि को प्राप्त करते हैं अन्यथा दान आदि निष्फल हो जाएंगे। चूँकि कर्मानुसार योनि प्राप्त होती है, इसलिए जो जैसा करता है उसको वैसी ही गति प्राप्त हो जाती है। वेद में जो कहा है कि पुरुष मरकर पुरुष होता है उसका तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य इस भव में सज्जन, विनयी, दयालु और अमत्सर[क] प्रकृति का होता है, वह मनुष्य नाम गोत्र कर्म का बंधन करता है। ऐसा मानव मृत्यु आने पर कालधर्म को प्राप्त कर मनुष्य गति में जाता है, लेकिन सभी मनुष्य, मनुष्य गति में नहीं जाते। इसी प्रकार जो तिर्यंच माया के कारण तिर्यंचनामगोत्र[ख] का उपार्जन करता है, वह पुनः पशु योनि को प्राप्त करता है, सभी नहीं। इस प्रकार जीव की कर्मानुसार गति होती है। वेद में भी यही कहा गया है कि पुरुष भी शृगाल रूप में पैदा होता है।

भगवान् के इस प्रकार फरमाने पर सुधर्मा स्वामी का संशय दूर हुआ। वे प्रभु चरणों में निवेदन करते हैं-भंते ! मुझे आपश्री के चरणों में प्रव्रजित करने की कृपा करावें। तब भगवान् ने सुधर्मा एवं उनके 500 शिष्यों की भावना को जानकर उन्हें प्रव्रजित किया।[47]

मंडित पुत्र ने, सुधर्मा एवं उनके 500 शिष्यों के द्वारा प्रव्रज्या अंगीकार कर ली गई है, ऐसा श्रवण किया तब उनके मन के महासागर में प्रभु को वंदन-नमस्कार करने एवं पर्युपासना-उपासना करने के भाव जागृत हुए और उन्हीं भावों में अवगाहन करते हुए वे यज्ञ-मण्डप से निकल कर समवसरण की ओर बढ़ने लगे। समवसरण में प्रविष्ट होकर प्रभु के चरणों में नमस्कार किया।

(क) अमत्सर- ईर्ष्या-रहित (ख) तिर्यंचनामगोत्र – तिर्यंचगति में जाने योग्य नाम गोत्र कर्म

तब भगवान् ने फरमाया–मंडिक वसिष्ठ ! तुम्हारे मन में संदेह है कि ज
के बंध और मोक्ष होता है, कि नहीं। विभिन्न प्रकार के वेद वाक्यों को श्रवण क
तुम्हारा मन संदेहग्रस्त हो गया। वेद में एक वाक्य आया "सएष विगुणो वि
बध्यते संसरति वा, न मुच्यते मोचयतिवा, न वा एष बाह्यमभ्यन्तरं वा वेद" अर्थ
यह आत्मा सत्त्वादि गुण-रहित विभु है। उसे पुण्य पाप का बंध नहीं होता।
कर्म से मुक्त नहीं होता, दूसरों को कर्म से मुक्त नहीं करता। वह बाह्य अथ
आभ्यन्तर, कुछ भी नहीं है। इससे तुम समझते हो कि जीव को कर्मबंध न
होता। वेद में दूसरी जगह वाक्य है–नहवै सशरीरस्य प्रिया प्रिययोर पहतिररि
अशरीरं वा वसंतं प्रियाप्रिये नस्पृशतः" अर्थात् सशरीरी जीव के प्रिय-अप्रिय हो
है और अशरीरी का प्रिय-अप्रिय नहीं होता। इससे तुम समझते हो कि संसा
जीव के कर्मबंध होता है और मोक्ष होने पर कर्मबंध नहीं होता है।

अतः दोनों प्रकार के वाक्यों का सम्यक् अर्थ नहीं जानने के कारण तुम्ह
मन में संदेह व्याप्त है कि वस्तुतः जीव के बंध या मोक्ष होता है या नहीं?

लेकिन मंडिक ! संसारी जीवों को राग-द्वेष के कारण कर्मों का बंध अवश्यमे
होता है। कर्म बंधन का कारण राग-द्वेष हैं। जब तक कर्मबंध का कारण विद्यमा
रहेगा, कर्मबंध होता ही रहेगा और राग-द्वेष नष्ट होने पर जीव कर्म-विमुख ब
जायेगा। कर्म-विमुख जीव के कर्म का बंधन नहीं होता। जैसे बीज जलने प
वृक्ष नहीं उगता वैसे ही कर्म नष्ट होने पर सिद्ध जीव के कर्मों का बंधन न
होता है। मंडिक, तुम इस बात को समझो कि संसारी आत्मा के कर्मबंध हो
है, सिद्ध आत्मा के नहीं।

जब यह आत्मा मिथ्यात्वादि के सम्पर्क में रहता है, तब वह भीषण कर्मों क
बंध कर लेता है और उन्हीं कर्मों के कारण चतुर्गति रूप संसार में दारुण दुःख क
अनुभव करता रहता है। तत्पश्चात् कदाचित् उसे किसी दिव्य (चारित्र) आत्मा क
संसर्ग से सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की प्राप्ति हो जाए तो वह सम्यक
पुरुषार्थ कर भीषण बंधे हुए कर्मों को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त बन जाता है।[48]

यद्यपि जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है, तथापि जैसे अनादि काल
सोना मिट्टी के साथ खदान में है, उसको अग्नि आदि में तपाने पर मिट्टी पृथक
हो जाती है, सोना पृथक्। वैसे ही अनादिकालीन जीव और कर्म का सम्बन्ध भ
अनादि होने पर सम्यक् पुरुषार्थ से पृथक् किया जा सकता है।

वेद में "स एष विगुणो.........." कहा गया है। इसमें जीव का स्वरूप बतलाय

वेदवाक्य द्वारा प्रतिपादित किया है कि संसारी जीव जो राग-द्वेष युक्त हैं, उनके ही कर्मबंध होता है।

इस प्रकार भगवान् के मुख से तर्कसंगत वेद-वाक्यों का अर्थ श्रवण कर मंडिक का संशय विनष्ट हुआ। उन्होंने प्रभु चरणों में अपनी निवेदना प्रस्तुत की—भंते ! आप जैसे महान ज्ञानी भगवंत की शरण पाकर मैं धन्य हो गया हूँ। अब मैं आपके चरणों में प्रव्रजित होकर सर्वतोभावेन समर्पित बनना चाहता हूँ।

भगवान् ने मंडित एवं उनके शिष्यों का समर्पण जानकर मंडिक को 350 शिष्यों सहित जैन भागवती दीक्षा प्रदान की।[49]

मंडिक पुत्र अब मुनि अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं और उनके मुनि जीवन स्वीकार करने के समाचार पूरे नगर में तुरन्त लोगों के मुख से प्रसारित होने लगे। उस समाचारं को यज्ञ-मण्डप में स्थित मौर्यपुत्र ने भी श्रवण किया। तब उनके मन में प्रभु को नमस्कार एवं पर्युपासना की भावना जागृत हुई। इसी शुभ भावना से अपने अंतेवासियों सहित प्रभु के समवसरण की ओर बढ़ने लगे।

समवसरण में प्रविष्ट होकर भगवान् के भव्य दीदार को देखकर हतप्रभ रह गए। इतनी विशिष्ट आभा वाला मानव मैंने पहली बार दृष्टिगत किया है। वे प्रभु के अप्रतिम सौन्दर्य को निहारने लगे। तभी भगवान् ने नाम गोत्र से सम्बोधित करते हुए फरमाया—मौर्यपुत्र काश्यप ! तुम्हारे मन में संदेह है कि देव है या नहीं है। तुमने एक वेद वाक्य श्रवण किया—"ए एष यज्ञायुधो यजमानोऽजंसा स्वर्गलोकं गच्छति" यज्ञ करने वाला यजमान निश्चित रूप से स्वर्ग में जाता है। इससे तुमने चिंतन किया कि देवों का अस्तित्व है। लेकिन तुमने दूसरा वेद वाक्य श्रवण किया—"को जानाति मायोपमान् गीर्वाणानिन्द्रयम-वरुण-कुबेरादीन" अर्थात् माया सदृश इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि देवों को कौन जानता है? इससे तुमने चिंतन किया कि देव नहीं है। अतः तुम संशयग्रस्त हो कि देव है अथवा नहीं?

परन्तु हे मौर्यपुत्र ! देवों का अस्तित्व तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी समवसरण में वैमानिक, ज्योतिष्क, भवनपति एवं वाणव्यंतर, चारों जाति के देव हैं। साथ ही मनुष्य यहाँ विशिष्ट पुण्य का उपार्जन करता है, वह उस पुण्य को कहाँ भोगेगा? उसके पुण्य भोगने का स्थान ही देवगति है। वेद में भी यज्ञ करने से देव भव की प्राप्ति बतलाई है।[50] साथ ही वेद में यह भी कहा है कि "इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि माया सदृश हैं।" इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि जैसे माया अनित्य है, वैसे ही देव भव भी अनित्य है। वे भी देवायु को भोगकर पुनः मनुष्य अथवा तिर्यंच बनते हैं। इस प्रकार देवों की सत्ता तुम्हें माननी चाहिए।

भगवान् की गम्भीर गिरा[क] को सुनकर मौर्यपुत्र का संशय निरस्त हुआ और उन्होंने भगवान् से संयम ग्रहण करने हेतु तत्परता प्रदर्शित की।

भगवान् ने मौर्यपुत्र एवं उनके 350 शिष्यों का समर्पण जानकर अपने धर्मसंघ में दीक्षित किया।[51]

सात उपाध्यायों को अपने-अपने परिवार सहित दीक्षित हुआ जानकर अकम्पितजी ने चिंतन किया कि मुझे भी समवसरण में जाकर प्रभु की पर्युपासना करनी चाहिए। ऐसा चिंतन कर अकम्पितजी प्रभु के समवसरण की ओर शिष्य समुदाय सहित चल दिए।

समवसरण में प्रवेश करने पर प्रभु को देखते ही वे विनय से प्रणत होकर पर्युपासना करने लगे।

तब भगवान् ने उनके नाम गोत्र से सम्बोधित करते हुए कहा–हे अकम्पित गौतम ! तुम्हें नरक के बारे में संदेह है, क्योंकि एक वेद वाक्य में कहा है–"नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति।" अर्थात् जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न खाता है, वह नरक में जाता है। इस वेद वाक्य से तुम नरक की सत्ता स्वीकार करते हो तथा अन्य वेद वाक्य में कहा है–"न ह वै प्रेत्य नारकाः।" अर्थात् जीव मरकर नारक नहीं होता। इससे तुम सोचते हो कि नरक नहीं है। अतः तुम्हारे मन में संशय चल रहा है कि नरक है अथवा नहीं?

किन्तु हे अकम्पित ! नरक तुझे तो प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहा है। साथ ही जो मनुष्य या तिर्यंच प्राणी भयंकर पाप कर्म करते हैं तो उस पाप भोगने का अवश्यमेव कोई स्थान है और वह स्थान है नरक, जहाँ निरन्तर भीषण कष्टों की यात्रा गतिमान है।

वेद में जो कहा है–"न ह वै प्रेत्य नारकः।" इस वाक्य का यह अर्थ है कि परलोक में मेरु आदि के समान नरक शाश्वत नहीं है। जो उत्कृष्ट पाप नहीं करते वे नरक में नहीं जाते।

भगवान् के सत्य वचनों को सुनकर अकम्पित का संशय दूर हुआ। उन्होंने निवेदन किया–भंते ! आपश्री की सन्निधि से मेरा संशय दूर हुआ है। मैं आपके ही चरणों में प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

अकम्पितजी द्वारा निवेदन किये जाने पर भगवान् ने उनको 350 शिष्यों सहित सामायिक चारित्र प्रदान किया।[52] अष्ट उपाध्यायों के दीक्षा के समाचार अचलभ्राता के कर्णकुहरों में गुंजित हुए तब उन्होंने भी विशुद्ध मति से विचार

(क) गिर- वाणी

किया कि मुझे भी भगवान् को नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करनी चाहिए। तब वे भी यज्ञ-मण्डप से निकल कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान् महावीर के समवसरण की ओर चल पड़े। समवसरण के करीब पहुँचकर उसकी भव्य प्रभा को देखकर दाँतों तले अंगुली दबाने लगे। ओह ! भूमण्डल पर ऐसा अद्वितीय समवसरण हमने कभी नहीं देखा। समवसरण ही जब इतना भव्य है तो इसमें विराजमान भगवान् तो भव्यातिभव्य होंगे ही।

इन्हीं विचारों में आकंठ डूबे हुए वे समवसरण में प्रविष्ट हुए और प्रभु को नमस्कार करके उनकी मनमोहक सूरत को निहारने लगे। तब भगवान् ने उन्हें सम्बोधित करके कहा–अचलभ्राता हारित ! तुम्हें पुण्य व पाप की सत्ता में संदेह है। तुमने वेद के एक वाक्य को श्रवण किया–"पुरुष एवेदं ग्निं सर्वं।" अर्थात् पुरुष (आत्मा) के अतिरिक्त किसी भी तत्त्व की सत्ता नहीं है। इसी कारण तुम्हें पुण्य-पाप के विषय में संदेह है।

लेकिन तुम्हारा यह संदेह निरर्थक है, क्योंकि जगत् में पुण्य-पाप का फल तो प्रत्यक्ष ही दिखलाई देता है। एक ही प्रकार के अन्न के खाने से एक व्यक्ति को सुख, दूसरे को दुःख पैदा होता है। दो सहोदर भाइयों में भी एक विशाल राज्य का सम्राट् बन जाता है। एक भिखारी बनकर गलियों में चक्कर लगाता है। यह सब पुण्य व पाप का ही फल है।

वेद में भी स्वर्ग की कामना से यज्ञ करने की बात कही है। लोक में भी दान से पुण्य व हिंसा से पाप माना जाता है। अतः पुण्य-पाप, दो स्वतंत्र तत्त्व हैं। वेद में जो यह कहा है–"पुरुष.......... ।" इसका तात्पर्य पुण्य-पाप का निषेध करना नहीं, अपितु आत्मा को शाश्वत[क] बताना है।

भगवान् के ऐसा कहने पर अचलभ्राता का संशय दूर हुआ और उन्होंने प्रभु के चरणों में अपनी विनय प्रज्ञप्ति प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया–भंते ! मैं आपश्रीजी के चरणों में संयम अंगीकार करना चाहता हूँ। तब भगवान् ने उनके भावों को आत्मसात् करते हुए उनके 300 शिष्यों सहित उन्हें प्रव्रज्या प्रदान की।[53]

अचलभ्राता की दीक्षा के समाचार मिलते ही मैतार्य ने चिंतन किया, मैं भी उन भगवान् के दर्शन, वंदन व पर्युपासना करके स्व-जीवन को धन्य बनाऊँ। इसी भावना के साथ वे यज्ञ-मण्डप से अपने शिष्य परिवार सहित समवसरण की ओर चल पड़े। समवसरण की दिव्य-भव्य प्रभा का अवलोकन कर चित्रलिखित रह गए। उत्साही कदमों से समवसरण के भीतर प्रवेश किया और भक्ति-भाव से

(क) शाश्वत– सतत, स्थायी, नित्य

भगवान् की गम्भीर गिरा[क] को सुनकर मौर्यपुत्र का संशय निरस्त हुआ और उन्होंने भगवान् से संयम ग्रहण करने हेतु तत्परता प्रदर्शित की।

भगवान् ने मौर्यपुत्र एवं उनके 350 शिष्यों का समर्पण जानकर अपने धर्मसंघ में दीक्षित किया।[51]

सात उपाध्यायों को अपने-अपने परिवार सहित दीक्षित हुआ जानकर अकम्पितजी ने चिंतन किया कि मुझे भी समवसरण में जाकर प्रभु की पर्युपासना करनी चाहिए। ऐसा चिंतन कर अकम्पितजी प्रभु के समवसरण की ओर शिष्य समुदाय सहित चल दिए।

समवसरण में प्रवेश करने पर प्रभु को देखते ही वे विनय से प्रणत होकर पर्युपासना करने लगे।

तब भगवान् ने उनके नाम गोत्र से सम्बोधित करते हुए कहा—हे अकम्पित गौतम ! तुम्हें नरक के बारे में संदेह है, क्योंकि एक वेद वाक्य में कहा है—"नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति।" अर्थात् जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न खाता है, वह नरक में जाता है। इस वेद वाक्य से तुम नरक की सत्ता स्वीकार करते हो तथा अन्य वेद वाक्य में कहा है—"न ह वै प्रेत्य नारकाः।" अर्थात् जीव मरकर नारक नहीं होता। इससे तुम सोचते हो कि नरक नहीं है। अतः तुम्हारे मन में संशय चल रहा है कि नरक है अथवा नहीं?

किन्तु हे अकम्पित ! नरक तुझे तो प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहा है। साथ ही जो मनुष्य या तिर्यंच प्राणी भयंकर पाप कर्म करते हैं तो उस पाप भोगने का अवश्यमेव कोई स्थान है और वह स्थान है नरक, जहाँ निरन्तर भीषण कष्टों की यात्रा गतिमान है।

वेद में जो कहा है—"न ह वै प्रेत्य नारकः।" इस वाक्य का यह अर्थ है कि परलोक में मेरु आदि के समान नरक शाश्वत नहीं है। जो उत्कृष्ट पाप नहीं करते वे नरक में नहीं जाते।

भगवान् के सत्य वचनों को सुनकर अकम्पित का संशय दूर हुआ। उन्होंने निवेदन किया—भंते ! आपश्री की सन्निधि से मेरा संशय दूर हुआ है। मैं आपके ही चरणों में प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

अकम्पितजी द्वारा निवेदन किये जाने पर भगवान् ने उनको 350 शिष्यों सहित सामायिक चारित्र प्रदान किया।[52] अष्ट उपाध्यायों के दीक्षा के समाचार अचलभ्राता के कर्णकुहरों में गुंजित हुए तब उन्होंने भी विशुद्ध मति से विचार

(क) गिर- वाणी

किया कि मुझे भी भगवान् को नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करनी चाहिए। तब वे भी यज्ञ-मण्डप से निकल कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान् महावीर के समवसरण की ओर चल पड़े। समवसरण के करीब पहुँचकर उसकी भव्य प्रभा को देखकर दाँतों तले अंगुली दबाने लगे। ओह ! भूमण्डल पर ऐसा अद्वितीय समवसरण हमने कभी नहीं देखा। समवसरण ही जब इतना भव्य है तो इसमें विराजमान भगवान् तो भव्यातिभव्य होंगे ही।

इन्हीं विचारों में आकंठ डूबे हुए वे समवसरण में प्रविष्ट हुए और प्रभु को नमस्कार करके उनकी मनमोहक सूरत को निहारने लगे। तब भगवान् ने उन्हें सम्बोधित करके कहा—अचलभ्राता हारित ! तुम्हें पुण्य व पाप की सत्ता में संदेह है। तुमने वेद के एक वाक्य को श्रवण किया—"पुरुष एवेदं ग्निं सर्वं।" अर्थात् पुरुष (आत्मा) के अतिरिक्त किसी भी तत्त्व की सत्ता नहीं है। इसी कारण तुम्हें पुण्य-पाप के विषय में संदेह है।

लेकिन तुम्हारा यह संदेह निरर्थक है, क्योंकि जगत् में पुण्य-पाप का फल तो प्रत्यक्ष ही दिखलाई देता है। एक ही प्रकार के अन्न के खाने से एक व्यक्ति को सुख, दूसरे को दुःख पैदा होता है। दो सहोदर भाइयों में भी एक विशाल राज्य का सम्राट् बन जाता है। एक भिखारी बनकर गलियों में चक्कर लगाता है। यह सब पुण्य व पाप का ही फल है।

वेद में भी स्वर्ग की कामना से यज्ञ करने की बात कही है। लोक में भी दान से पुण्य व हिंसा से पाप माना जाता है। अतः पुण्य-पाप, दो स्वतंत्र तत्त्व हैं। वेद में जो यह कहा है—"पुरुष.......... ।" इसका तात्पर्य पुण्य-पाप का निषेध करना नहीं, अपितु आत्मा को शाश्वत[क] बताना है।

भगवान् के ऐसा कहने पर अचलभ्राता का संशय दूर हुआ और उन्होंने प्रभु के चरणों में अपनी विनय प्रज्ञप्ति प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया—भंते ! मैं आपश्रीजी के चरणों में संयम अंगीकार करना चाहता हूँ। तब भगवान् ने उनके भावों को आत्मसात् करते हुए उनके 300 शिष्यों सहित उन्हें प्रव्रज्या प्रदान की।[53]

अचलभ्राता की दीक्षा के समाचार मिलते ही मैतार्य ने चिंतन किया, मैं भी उन भगवान् के दर्शन, वंदन व पर्युपासना करके स्व-जीवन को धन्य बनाऊँ। इसी भावना के साथ वे यज्ञ-मण्डप से अपने शिष्य परिवार सहित समवसरण की ओर चल पड़े। समवसरण की दिव्य-भव्य प्रभा का अवलोकन कर चित्रलिखित रह गए। उत्साही कदमों से समवसरण के भीतर प्रवेश किया और भक्ति-भाव से

(क) शाश्वत- सतत, स्थायी, नित्य

प्रभु को वंदन-नमस्कार किया और उनकी पर्युपासना करने लगे।

तब प्रभु ने उन्हें सम्बोधित करके कहा—मैतार्य कोण्डिन्य ! तुम्हें परलोक के विषय में संदेह है कि परलोक है अथवा नहीं। लेकिन जगत् में अनेक प्राणी सुख-दुःख आदि प्राप्त करते हुए देखे जा रहे हैं। कोई प्राणी इस भव में बुरा काम नहीं करता फिर भी उसे निरन्तर बुरा फल मिलता है। ये सारे सुख-दुःख एक भव के कर्मानुसार नहीं, अनेक भव के कर्मानुसार मिलते हैं। आत्मा तो शाश्वत है, वह कर्मानुसार जन्म-मरण करती है। इसी से परलोक की सिद्धि होती है। साथ ही अनेक प्राणियों को अपने पूर्वजन्म की स्मृति आती है। इससे परलोक की सत्ता स्वतः सिद्ध है।

तुम वेद का वाक्य–''विज्ञान..........''श्रवण कर सोचते हो कि आत्मा शरीर में पैदा होती है और शरीर के समाप्त होने पर समाप्त हो जाती है। लेकिन यह सोचना ठीक नहीं है, क्योंकि जड़ शरीर से चैतन्य आत्मा का निर्माण नहीं होता।[54] वेद में यह भी कहा गया है–''स्वर्गकामे जुहुयात'' अर्थात् स्वर्ग की कामना से यज्ञ करो। यदि परलोक नहीं तो फिर स्वर्ग की कामना कैसी? अतः तुम्हें परलोक के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए। प्रभु की अमृत देशना सुनकर मैतार्य का संशय दूर हुआ और वे प्रभु चरणों में निवेदन करते हैं—भंते ! अब मैं संशयातीत होकर चरणों में समर्पित होना चाहता हूँ।

भगवान् ने उनकी भावना को जानकर 350 शिष्यों सहित दीक्षित किया।

10 उपाध्यायों को दीक्षित हुआ जानकर प्रभास ने सोचा कि अब मुझे भी भगवान् के पास जाकर उनकी वंदना एवं पर्युपासना करनी चाहिए। इसी चिंतन को कार्यरूप में परिणत करते हुए वे यज्ञ-मण्डप से समवसरण तक पहुँच गए। समवसरण के भीतर प्रवेश करके उन्होंने भगवान् का भव्य आभामण्डल देखकर वंदन-नमस्कार किया एवं एकाग्र बनकर प्रभु की पर्युपासना की। तब भगवान् ने 'प्रभास कौण्डिन्य!' कहकर उन्हें सम्बोधित किया एवं फरमाया कि तुम्हें निर्वाण—मोक्ष के विषय में संदेह है कि मोक्ष[क] है या नहीं। क्योंकि वेद में आने वाले विभिन्न वाक्यों से तुम्हारी मति में विभ्रम पैदा हो गया है।

वेद का एक वाक्य है–"जरामयं वैतत सर्व यदग्निहोत्रम्" अर्थात् वृद्धावस्था में मरण पर्यन्त स्वर्गदायक अग्निहोत्र यज्ञ करना चाहिए। इससे तुम यह समझते हो कि यज्ञ से स्वर्ग ही मिलता है, निर्वाण नहीं। अतः निर्वाण नामक कोई स्थान नहीं है।

इसके अतिरिक्त वेद का अन्य वाक्य है–"सैषा गुहा दुरावगाहा" अर्थात् निर्वाण प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। इससे तुम समझते हो कि निर्वाण है।

) मोक्ष – कर्म से सर्वथा मुक्ति

अब तुम संशय में चल रहे हो कि निर्वाण है या नहीं।

लेकिन प्रभास ! निर्वाण की सत्ता तुम्हें अवश्यमेव स्वीकारनी चाहिए। क्योंकि कर्म के नष्ट होने पर जीव शुद्ध रूप को प्राप्त कर लेता है। कर्म जीवकृत है लेकिन जीव कर्मकृत नहीं है। जीव में बंध-मोक्ष होता है। अतः बंधन की मुक्ति ही निर्वाण है। मोक्ष में पुण्य कर्म का अभाव होने पर भी अक्षय आत्मिक सुख अतुलनीय है। वेद में भी इसी बात की पुष्टि की गई है। "अशरीरं वा वसन्तम्।" अर्थात् अशरीरि मुक्त जीव को तथा सशरीरी वीतराग भगवान् को प्रिय-अप्रिय का स्पर्श नहीं होता है। किन्तु स्वाभाविक निरुपम विषयातीत अकर्मजय, आत्मिक सुख उनमें विद्यमान रहता है।

"जरामयं वैतत सर्वं यदग्निहोत्रम्।" इस वाक्य से तुम यह समझते हो कि वृद्धावस्था में मरणपर्यंत भी स्वर्गदायक अग्निहोत्र यज्ञ करना चाहिए। अतएव यज्ञ से केवल स्वर्ग की प्राप्ति बतलाई है, मोक्ष का उल्लेख तक नहीं। लेकिन तुम्हारा यह सोचना ठीक नहीं है। यहाँ जो "वा" शब्द आया है, उससे इस वाक्य का यह अर्थ ध्वनित होता है कि यावज्जीवन अग्निहोत्र का अनुष्ठान करना चाहिए तथा मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले जीव को मोक्ष के निमित्तभूत अनुष्ठान भी करने चाहिए। अतः इससे भी मोक्ष की सिद्धि होती है।

इस प्रकार भगवान् द्वारा समाधान करने पर प्रभासजी का संशय निर्मूल हो गया। उन्होंने प्रभु-चरणों में निवेदन किया—भंते ! मेरा संशय नष्ट हो गया है। आपकी मधुरिम वाणी ने मेरी अन्तर आत्मा में विरक्ति का भाव जागृत कर दिया है। मैं अब श्रीचरणों में मुण्डित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

प्रभासजी की निवेदना को ध्यान में रखते हुए प्रभु ने उनको 300 शिष्यों सहित संयम प्रदान किया और वे तप, संयम की आराधना में लीन बन गए।[55]

अस्तु, एक ही दिन में महान् प्रज्ञासम्पन्न, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न 11 उपाध्यायों (गणधरों) ने अपने शिष्य परिवार सहित संयम अंगीकार किया और भगवान् ने अपने अतिशय प्रभाव से 4411 शिष्यों को संसार के कीचड़ से निकालकर मोक्ष मार्ग का पथिक बना दिया। भगवान् महावीर के समवसरण में विशाल शिष्य समुदाय बैठा है और अभी भी समवसरण में निरन्तर लोगों का आवागमन बना हुआ है।

मध्यम पावा में खूब धूम मची हुई है। सरलता और विनयशीलता के मूर्तिमंत स्वरूप ब्राह्मण कुल में समुद्भूत ग्यारह दिग्गज विद्वान् इन्द्रभूति आदि ने प्रभु महावीर के चरणों में समर्पण कर एक दिव्य प्रेरणा मानव-समाज को प्रदान की, कि सदैव सत्य को ही स्वीकार करना चाहिए। जब भगवान् की वाणी उन्हें सत्यपूत लगी तब उन्होंने उसी को जीवन में आत्मसात् कर जाति-पाँति के भेद

को निरस्त करने का स्तुत्य कार्य किया। उनका चारित्र अंगीकार करना इस बात को सूचित करता है कि सदैव मनुष्य को सत्य-मार्ग पर पदाधान करना चाहिए। उन्होंने तत्कालीन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य समाज में जो भेदरेखा थी, उसे मिटाकर मानव को मानव के समीप लाने का उपक्रम किया।[56]

इससे मध्यम पावा में परस्पर सामंजस्य में वृद्धि होने लगी और विद्वान ब्राह्मणों की दीक्षा के समाचारों को श्रवण कर अनेक नर-नारियों के समूह समवसरण में पहुँचने लगे। देव-देवियों में भी हलचल मची थी। अनेक देव-देवी आकाश मण्डल से मध्यम पावा की ओर प्रस्थान कर रहे थे।

चंदना का समर्पण :

उसी समय कौशाम्बी नरेश शतानीक के घर पर पलने वाली चम्पा की राजकुमारी चन्दनबाला ने आकाश मार्ग में अद्‌भुत नजारा देखा। बहुरंगी मणियों की झिलमिलाहट से चमचमाते हुए दिव्य देव विमान आकाश-मण्डल में यत्र-तत्र-सर्वत्र चमक रहे थे। वे विमान मध्यम पावा की ओर बढ़ रहे थे। तभी यकायक चन्दनबाला ने चिंतन किया—अरे, निरभ्र[क] आकाश में आज इतने देव विमान! मध्यम पावा की ओर जा रहे हैं। क्या है पावा में.......... क्या भगवान् को केवलज्ञान हो गया.......... लगता है तभी इतने देव भूमण्डल पर आ रहे हैं.......... मुझे भी भगवान् के समवसरण में जाना है.......... लेकिन जाऊँ तो जाऊँ कैसे.......... जल्दी कैसे पहचु.......... क्या भगवान् की कृपा से कोई देव सहायता कर सकता है.......... मुझे भी जाना है.......... प्रभु को प्राप्त करना है..........। चन्दनबाला एकाग्र मन से प्रभु महावीर का स्मरण कर रही थी। तभी आकाश-मार्ग से गमन करते हुए एक देव का उपयोग लगा। देखा, एक राजकुमारी निरन्तर प्रभु को पाने की अभीप्सा लिए उन्हीं में आकंठ डूबी है। उस राजकुमारी को मुझे अपने विमान में बिठाकर समवसरण में ले जाना चाहिए। उस देव ने यह सोचकर विमान की गति को विराम दिया और दिव्य शक्ति से चन्दना को उठाकर अपने विमान में बिठलाकर समवसरण में ले जाकर छोड़ दिया। ऐसा उल्लेख त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र में मिलता है।[57] गुणचन्द्र विरचित महावीर चरियं में ऐसा वर्णन मिलता है कि देवी उसे हाथ पकड़ कर समवसरण में ले जाती है।[58] लेकिन कई आधुनिक ग्रंथों (मधुकरजी का तीर्थंकर चारित्र) में ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान् के केवलज्ञान के समाचारों को श्रवण कर चन्दनबाला शीघ्रता के साथ भगवान् महावीर के दर्शन करने के लिए निकल पड़ी।[59]

देवी ने चन्दनबाला को प्रभु के समवसरण में पहुँचा दिया। प्रभु ने संसार

(क) निरभ्र-बादल रहित स्वच्छ आकाश

के कीच से निकलने का श्रेष्ठतम उपदेश दिया। मोह की जंजीरों को तोड़कर आत्म-साधना की ओर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त किया। कर्म-बंधन से कर्म-विमुक्ति की ओर प्रयाण[क] का पथ प्रदर्शित किया। वीरांगनाओं के लिए संयम ही श्रेयस्कर है, ऐसा निरूपण किया। संयम अनन्त आत्मिक सुख को देने वाला है। इस संयम-मार्ग पर बढ़कर अनेक आत्माओं ने स्व-पर कल्याण का पथ प्रदर्शित किया है। अतएव इसे अविलम्ब स्वीकार करना चाहिए, ऐसा उद्घोष महाप्रभु महावीर ने दिया।

इस भव्य देशना को श्रवण कर चन्दनबाला सहित अनेक राजकुमारियाँ संसार से विरक्त हो गईं और उन्होंने प्रभु चरणों में निवेदना प्रस्तुत की–"भगवन्! हम आपश्रीजी की अमृतवाणी से विरक्त होकर संयम मार्ग अंगीकार करना चाहती हैं।"

प्रभु ने उनकी प्रशस्त भावना को जानकर उन्हें तीन करण[ख], तीन योग[ग] से सावद्य[घ] योगों का त्याग करवाकर सामायिकचारित्र[ङ] प्रदान किया और अपने केवलालोक से महासती चन्दनबालाजी की योग्यता को देखकर उन्हें साध्वी संघ की प्रमुखा घोषित किया।[60]

भगवान् महावीर के विराट् चिंतन ने सामाजिक वातावरण में एक नई क्रान्ति का सूत्रपात किया। जिस समय भगवान् महावीर ने साध्वीश्री चन्दनबाला को श्रमणी वर्ग की प्रमुखा बनाकर उन्हें श्रमण[xxi] वर्ग के बराबर का दर्जा दिया उस समय अन्य किसी धर्म या सम्प्रदाय में नारियों को इस प्रकार अधिकार देने की परम्परा परिलक्षित नहीं होती।

यद्यपि प्राचीनकालीन वैदिक संस्कृति में ऐसा उल्लेख मिलता है कि याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियाँ थी–गार्गी और मैत्रेयी। जब याज्ञवल्क्य संन्यास ग्रहण करने लगे तो उन्होंने दोनों पत्नियों से पूछा–मैं तुम्हें क्या दूँ? गार्गी ने पूछा–तुम्हारे पास देने के लिए क्या-क्या सम्पत्ति है? याज्ञवल्क्य बोले–एक आत्मिक सुख की सम्पत्ति है, जिसे ग्रहण कर तुम अजर-अमर पद को प्राप्त कर सकती हो और दूसरी भौतिक सम्पत्ति है। गार्गी ने कहा–मुझे आत्मिक सुख की सामग्री चाहिए। भौतिक सुख-सामग्री नहीं।

याज्ञवल्क्य ने पूछा–क्यों?

गार्गी ने कहा–येन अमृतत्वं न स्याम तेन ऽहं किं कुर्याम्। अर्थात् जिस भौतिक सामग्री को प्राप्त कर अमरता नहीं मिलती उस सामग्री से मुझे क्या प्रयोजन?

(क) प्रयाण- गमन
(ख) करण- करना, करवाना और अनमोदन करना
(ग) योग- मन, वचन काया
(घ) सावद्य- पापकारी
(ङ) सामायिकचारित्र- पाँच चारित्रों में प्रथम चारित्र (छोटी दीक्षा)

तब गार्गी[61] के इस उत्तर को सुनकर उसे भी संन्यास प्रदान किया।

इस उद्धरण से संभवतः प्राचीनकाल में वैदिक परम्परा में संन्यास की महत्ता स्वीकृत की गई, ऐसा लगता है, परन्तु किसी भी सन्यस्त नारी को पुरुष साधु के बराबर दर्जा, मिला ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

परवर्तीकाल में तो वैदिक आचार्यों ने स्त्री को धर्म करने में परतंत्र मान लिया और इसी कारण अनेक स्थानों पर साधु जीवन से गृहस्थ धर्म को श्रेष्ठ बतला दिया। आचार्य वशिष्ठ ने अपने धर्म सूत्र में इसी बात का उल्लेख करते हुए कहा है–"चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थश्च विशिष्यते।" अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास–इन चार आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सर्वश्रेष्ठ है।[62] आचार्य यम ने तो स्मृति चन्द्रिका व्यवहार में स्त्री के संन्यास ग्रहण का प्रबल विरोध किया है।[63] अत्रिस्मृति में स्त्री के संन्यास को पाप कर्म तक बतला दिया।[64] इस प्रकार परवर्ती वैदिक परम्परा में धार्मिक मंच पर नारी को पुरुष वर्ग के बराबरी का दर्जा नहीं मिला।

बौद्ध परम्परा में भी बुद्ध ने जब धर्मसंघ की स्थापना की थी तब सर्वप्रथम उन्होंने भिक्षु संघ की ही स्थापना की थी।[65] पाँच वर्ष तक उन्होंने अपने संघ में एक भी स्त्री को दीक्षा प्रदान नहीं की। लेकिन पाँच वर्ष पश्चात् उनकी मौसी गौतमी ने, बुद्ध से निवेदन किया कि भंते! आप मुझे प्रव्रजित करें। परन्तु बुद्ध ने उसे अस्वीकार किया।[66] गौतमी ने स्वयं ही केश कर्तन करवाकर काषायिक वस्त्रों को धारण कर लिया और अन्य स्त्रियों को भी अपने साथ लेकर उनके भी केश कर्तन करवा दिये, काषायिक[क] वस्त्र धारण करवा दिये। वे सभी पैदल विहार कर बुद्ध के पास गयीं[67] और पुनः दीक्षा देने का अनुरोध किया, लेकिन बुद्ध को यह बात नहीं जँची। तब आनन्द भिक्षु ने बुद्ध से कहा कि एक तरफ आप अपने सिद्धान्तानुसार नारी को अर्हत पद के योग्य बतलाते हैं, दूसरी ओर उन्हें प्रव्रजित नहीं करते, आपको स्त्रियों को दीक्षा देनी चाहिए।[68]

तब गौतम बुद्ध ने अनिच्छा से गौतमी को दीक्षा प्रदान की और बुद्ध ने आनन्द से कहा–आनन्द! जहाँ स्त्रियाँ प्रव्रजित होती हैं, उस धर्मसंघ में ब्रह्मचर्य स्थायी नहीं रहता।[69] इस प्रकार बौद्ध परम्परा में स्त्रियों को पुरुष के समान अधिकार नहीं थे।

जैन परम्परा में प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि[ख] पर्यन्त एक ही परम्परा परिलक्षित हो रही है। यहाँ धर्मसंघ में साधु और साध्वी को समान अधिकार प्राप्त हैं। भगवान् ऋषभदेव ने धर्मसंघ की स्थापना के दिन ब्राह्मी-सुन्दरी को प्रव्रज्या

(क) काषायिक– गेरूए (ख) अद्यावधि– आज तक

देकर उनको साध्वीप्रमुखा का दर्जा दिया था।[70] और उसी परम्परानुसार भगवान् महावीर ने भी नारियों को दीक्षा देकर उन्हें पुरुष साधु के समान अधिकार दिये।

वेदों में जहाँ स्त्रियों को सम्पूर्ण वेदों को पढ़ने का अधिकार नहीं था, वहाँ जैनियों में मात्र चौदह पूर्वों[xxii] को पढ़ने का अधिकार नहीं दिया गया, क्योंकि पूर्वों में विशिष्ट लब्धियों का प्रयोग होने से स्त्रियाँ कोमल स्वभाव से उनका दुरुपयोग कर सकती थीं। इसलिए उनको पूर्व[xxiii] पढ़ने का अधिकार नहीं था। लेकिन शेष सभी आगम पढ़ने का अधिकार है। साथ ही विशेषता भी है कि नारी जाति को जो सम्मान महावीर ने दिया वह अन्य कहीं भी परिलक्षित नहीं होता। उन्होंने अपने चतुर्विध संघ के चार पायों (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) में से दो पायों का स्थान नारी वर्ग को दिया। इस प्रकार नारियों को ऊँचा उठाने का कार्य करके प्रभु महावीर नारी जाति के उद्धारक बन गये।

संघ स्थापना और तीर्थंकरत्व : साध्वी चन्दनबाला की दीक्षा के पश्चात् जो व्यक्ति साधु जीवन के महापथ पर आरूढ़ नहीं हो सके उनको भगवान् महावीर ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण करवाकर श्रावक एवं श्राविका का अलंकरण दिया।

इस प्रकार साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध [71]संघतीर्थ[xxiv] की स्थापना करके प्रभु महावीर "तीर्थङ्कर"[72] की वास्तविक उपाधि को सार्थक कर रहे थे।

चतुर्विध संघ की स्थापना के पश्चात् भगवान् ने इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वानों को तीन पद बतलाये–1. उप्पन्ने इवा, 2. विगमे इवा और 3. धुवे इवा। अर्थात् पदार्थ उत्पन्न होता है, नष्ट होता है किन्तु अपने स्वरूप में, ध्रुव रूप में स्थित रहता है। जैसे किसी व्यक्ति ने सोने का कंगन तुड़वाकर चैन बनवाई। इसमें कंगन नष्ट हो गया, चैन उत्पन्न हुई लेकिन सोना इन दोनों में स्थित रहा। यही अवस्था प्रत्येक पदार्थ में होती है। इन्द्रभूति आदि ने भगवान् से इन तीन पदों को श्रवण कर सम्पूर्ण द्वादशांगी को आत्मसात् कर लिया।[73] तत्पश्चात् भगवान् ने इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वानों को गणधर[xxv] पद पर प्रतिष्ठित किया और सबको अपने-अपने शिष्य सौंप कर उन्हें अध्ययन करवाने का दायित्व दिया। ग्यारह गणधरों के नौ गण[xxvi] बने। प्रथम सात गणधरों की सूत्र-वाचना पृथक्-पृथक् प्रारम्भ हुई, परन्तु अष्टम-नवम गणधरों की एवं दसम-एकादश गणधरों की सूत्र वाचनाएँ सम्मिलित हुई। इस प्रकार ग्यारह गणधरों की नौ वाचनाएँ चलने लगी।[74]

मध्यम पावा परिपूर्णरूपेण धर्मनगरी बन गई है। त्रिपथ, चतुष्पथ और राजमार्गों पर जगह-जगह एकमात्र भगवान् महावीर की चर्चा हो रही है कि कल क्या दृश्य था, वैशाख शुक्ला एकादशी का ! वह मनोरम दृश्य, जिसमें एक ही दिन में विपुल मात्रा में भव्यजनों ने भागवती दीक्षा अंगीकार कर सभी के मन को

मुग्ध बना दिया है। भगवान् महावीर की दिव्य वाणी का प्रभाव भव्यजनों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। श्रमण समुदाय, श्रमणी समुदाय, श्रावक और श्राविकाएँ मध्यम पावा में सर्वत्र परिलक्षित हो रहे हैं। कोई साधक [क]समिति-गुप्ति[ख] का पालन करता हुआ गोचरी[ग] जा रहा है तो कोई भिक्षाचर्या करके पुनः लौट रहा है। कोई [घ]अचित्त-प्रासुक[ङ] या धोवन पानी[xxvii] की गवेषणा कर रहा है तो कोई एषणीय[च] पानी लेकर लौट रहा है। पावा का कण-कण धर्ममय बन गया और अपश्चिम तीर्थंकर महावीर अपनी उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति तीर्थंकर नाम कर्म का वेदन (अनुभव) कर रहे हैं।

तीर्थंकर[छ] शब्द जैन वाङ्मय का पारिभाषिक शब्द है। जैन धर्म में संस्थापक को तीर्थंकर की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ तीर्थ कहलाता है। इसी चतुर्विध संघ रूपी तीर्थ की रचना करने वाले को तीर्थंकर कहते हैं। यह तीर्थंकर पद अनादि काल से चला आ रहा है। भूतकाल में अनंत तीर्थंकर हो गये। भविष्य में भी अनंत तीर्थंकर होंगे और महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा इस भूमण्डल पर सदैव तीर्थंकर विद्यमान रहते हैं।

तीर्थंकर भगवान् पन्द्रह कर्मभूमिज क्षेत्रों में ही होते हैं। पाँच भरत[xxviii], पाँच ऐरावत[xxix] एवं पाँच महाविदेह, इन पन्द्रह क्षेत्रों में तीर्थंकर होते हैं। पाँच भरत एवं पाँच ऐरावत में तो तीसरे-चौथे आरे में ही तीर्थंकर होते हैं, लेकिन महाविदेह क्षेत्र में सदैव चतुर्थ आरक के समान काल रहने से प्रत्येक काल में तीर्थंकर पाये जाते हैं।[75] लोक में तीर्थंकर कम से कम बीस होते हैं और अधिक से अधिक 170 होते हैं। इस जगती पर पाँच महाविदेह हैं, उनमें बत्तीस विजयों (क्षेत्रों) में तीर्थंकर हो सकते हैं। कम से कम एक महाविदेह में चार और अधिक से अधिक बत्तीस हो सकते हैं। जब एक महाविदेह में चार तीर्थंकर होते हैं तो (5X4=20) पाँच महाविदेह में 20 तीर्थंकर हो जाते हैं। जब अधिक से अधिक प्रत्येक महाविदेह में बत्तीस तीर्थंकर होंगे तो पाँच महाविदेह में (32X5) 160 तीर्थंकर हो जायेंगे। उस समय एक-एक भरत तथा एक-एक ऐरावत में एक-एक तीर्थंकर अवश्य होंगे। अतएव पाँच भरत में 5, पाँच ऐरावत में 5 तथा महाविदेह में 160, इस प्रकार अधिक से अधिक कुल 170 तीर्थंकर होते हैं। जब-जब भूमण्डल पर मनुष्यों की संख्या उत्कृष्ट होती है तब-तब 170 तीर्थंकर होते हैं।

(क) समिति– जिसके द्वारा साधक सम्यक प्रवृत्ति में है वह ईर्यादि के भेद से पाँच प्रकार की है।
(ख) गुप्ति– मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना
(ग) गोचरी– आधाकर्मादि दोष रहित भिक्षा (घ) अचित्त– जीव रहित
(ङ) प्रासुक– प्राण रहित, (अजीव) (च) एषणीय– दोष रहित
(छ) तीर्थंकर– जो तीर्थ/गणधरों को तैयार करते हैं वे तीर्थंकर है (आ.चू.1, पृ.85)

अभी वर्तमान में भगवान् अजितनाथजी के समय 170 तीर्थंकर हुए क्योंकि उस समय मनुष्यों की उत्कृष्ट संख्या थी।[76]

एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर से कभी भी मिल नहीं सकता क्योंकि ऐसा ही शाश्वत नियम है।[77] प्रत्येक तीर्थंकर अर्थ रूप से वही वाणी फरमाते हैं लेकिन सूत्र रूप में अलग-अलग गुम्फन होता है। सूत्रों की रचना गणधर करते हैं।[78] तीर्थंकर भगवान् के महान् पुण्यवानी का उदय होता है। वे पूर्वभव में बीस बोलों की आराधना करने से तीर्थंकर[xxx] बनते हैं। वे बीस बोल[xxxi] इस प्रकार हैं–

1. अरिहन्त भगवान् की भक्ति, उनके गुणों का चिंतन, उनकी आज्ञा का पालन करने से उत्कृष्ट रसायन (भाव) आये तो तीर्थंकर नाम कर्म का बंधन होता है।
2. सिद्ध भगवान् की भक्ति और उनके गुणों का चिंतन करने से।
3. निर्ग्रन्थ प्रवचन रूप श्रुत ज्ञान में अनन्य उपयोग रखने से।
4. गुरु महाराज की भक्ति, आहारादि द्वारा सेवा और उनके गुणगान करने एवं आशातना टालने से।
5. जाति स्थविर (60 वर्ष की उम्र वाले), श्रुत स्थविर (स्थानांग, समवायांग के धारक), प्रवज्या स्थविर (20 वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले) की भक्ति करने से।
6. बहुश्रुत (शास्त्र-ज्ञाता) मुनिराज की भक्ति करने से।
7. तपस्वी मुनिराज की भक्ति करने से।
8. ज्ञान की निरन्तर आराधना करने से।
9. समकित का निरतिचार पालन करने से।
10. गुणज्ञ रत्नाधिकों का तथा ज्ञानादि का विनय करने से।
11. भावपूर्वक उभयकाल प्रतिक्रमण करने से।
12. मूल गुण-उत्तर गुणों का निर्दोष रीति से शुद्धतापूर्वक पालन करने से।
13. सदा संवेग भाव रखने से अर्थात् शुभ ध्यान करते रहने से।
14. तपस्या करते रहने से।
15. भक्तिपूर्वक सुपात्र दान देने से।
16. आचार्यादि[क] दस की वैयावृत्य करने से।
17. सेवा तथा मिष्ट भाषणादि के द्वारा गुरु आदि को प्रसन्न रखने से तथा स्वयं समाधिभाव में रहने से।

(क) अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय स्थविर, कुल, गण, चतुविध संघ, स्वधर्मी और क्रियावान।

18. नवीन ज्ञान का अभ्यास करते रहने से।
19. श्रुत ज्ञान की भक्ति तथा बहुमान करने से।
20. प्रवचन की प्रभावना करने से।

इन बीस बोल की उत्कृष्ट आराधना करने से तीर्थंकर,[79] मध्यम आराधना से गणधर तथा जघन्य आराधना से आचार्यादि पदवी प्राप्त करता है। प्रभु महावीर ने भी इन सबकी आराधना कर तीर्थंकर पद को प्राप्त किया। तीर्थंकर[xxxii] भगवान् का अतिशय प्रभाव रहता है। आतिशयिक प्रभाव के द्योतक उनके चौंतीस अतिशय इस प्रकार हैं –

1. अवस्थित केश–श्मश्रु रोम, नख, केश आदि अशोभनीय रूप से नहीं बढ़ना।
2. निरोग–निर्मल शरीर होना।
3. गाय के दुग्ध के समान रक्त-मांस होना।
4. श्वासोच्छ्वास पद्म-कमल की सुगंध के समान सुगन्धित होना।
5. आहार-निहार चर्म-चक्षुओं से अदृष्ट होना, लेकिन विशेषता यह है कि अवधिज्ञानी तीर्थंकर भगवान् के आहार-निहार को अपने ज्ञान से देख सकता है।
6. आकाश में धर्म-चक्र का चलना।
7. आकाश में गमन करते हुए तीन छत्रों का रहना।
8. आकाश में अत्यन्त स्वच्छ स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान श्वेत चामरों का ढोलना।
9. आकाश के समान अत्यन्त स्वच्छ पाद-पीठयुक्त स्फटिक सिंहासन का होना।
10. आकाशगत उच्च अनेक लघुपताकाओं से परिमण्डित अभिरमणीय इन्द्रध्वजा (शेष ध्वजाओं की अपेक्षा अति महान् होने से इसे इन्द्रध्वजा कहा है) भगवान् के आगे चलना।
11. जहाँ तीर्थंकर भगवान् विराजते हैं वहाँ तत्क्षण पत्र, पुष्प, पल्लव से युक्त छत्र, ध्वजा, घंटा और पताका से युक्त देवनिर्मित श्रेष्ठ अशोक वृक्ष होना।
12. मस्तक के पीछे दिव्य तेजोमण्डल होना।
13. तीर्थंकर भगवान् जहाँ विचरण करते हों वहाँ बहु समरमणीय भूमि भाग होना।

14. तीर्थंकर भगवान् के जहाँ चरण पड़ते हैं, वहाँ काँटों का अधोमुख हो जाना।
15. ऋतुओं का सुख-स्पर्श वाली होना अर्थात् ऋतुएँ शारीरिक क्षमता के अनुकूल होना।
16. संर्वतक वायु के चलने से एक योजन तक की भूमि साफ (सुथरी) स्वच्छ होना।
17. सुगन्धित जल की वर्षा होने से भूमि रजरहित होना।
18. जल एवं भूमि पर खिलने वाले पाँच वर्ण वाले अचित्त पुष्पों की घुटनों प्रमाण वर्षा होना।
19. अमनोज्ञ शब्द, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का अभाव होना।
20. मनोज्ञ शब्द, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का सद्भाव होना।
21. धर्मोपदेश देते समय एक-एक योजन तक फैलने वाला, हृदय को प्रिय लगने वाला स्वर होना।
22. अति सुकोमल अर्धमागधी भाषा में धर्मोपदेश देना।
23. भगवान् द्वारा उपदेश देने पर यह भाषा आर्य, अनार्य देशोत्पन्न मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी समझ जाते हैं, क्योंकि ऐसा अतिशय होने से यह भाषा सब जीवों की अपनी-अपनी भाषा रूप परिणत हो जाती है।
24. अनादिकालीन, भवान्तर एवं जन्म-जात निकाचित वैर वाले वैमानिक, ज्योतिषी, भवनपति, व्यन्तर, मनुष्य आदि भगवान् के समवसरण में प्रभु की सन्निधि में प्रशांत चित्त होकर धर्म श्रवण करते हैं।
25. अन्यतीर्थिक भी आकर भगवान् को वंदना करते हैं।
26. अन्यतीर्थिक भी भगवान् के समीप आकर निरुत्तर हो जाते हैं।
27. जिस-जिस देश में भगवान् विचरण करते हैं, उस-उस देश में 25 योजन तक ईति अर्थात् धान्य के लिए उपद्रवकारी प्रचुर मूषकादि प्राणियों का अभाव होता है।

विशेष :-

19. काला गुरु प्रवरुक, तुरुष्क आदि सुगंधित द्रव्यों की धूप से सुगंधित तीर्थंकर भगवान् के बैठने का स्थान होना।
20. तीर्थंकर भगवान् के दोनों तरफ दो यक्ष का अतिशय अलंकारों को धारण कर चँवर बींजते रहना। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जो 19वाँ तथा 20वाँ अतिशय बतलाया है वह वृहद् वाचना में नहीं है। अतः दूसरे प्रकार से 19वाँ तथा 20वाँ अतिशय[xxxiii] बतलाते हैं।

28. महामारी, हैजा, प्लेगादि का उपद्रव नहीं होता।
29. स्वदेश के राजा और सेना का भय नहीं होता।
30. परचक्र, शत्रु, राजा और सेना का भय नहीं होता।
31. अतिवृष्टि का अभाव होता है।
32. अनावृष्टि का अभाव होता है।
33. दुष्काल का अभाव होता है।
34. भगवान् का जहाँ पदार्पण होने वाला हो, वहाँ उनके पदार्पण से पहले ही ईति, भीति, महामारी, स्वचक्र तथा परचक्र का भय समाप्त हो जाता है।

इन चौंतीस अतिशयों में दूसरे से पंचम पर्यन्त चार अतिशय भगवान् के जन्म से होते हैं तथा इक्कीस से चौंतीस पर्यन्त एवं आभामण्डल–ये पन्द्रह अतिशय चार कर्मों के क्षय से केवलज्ञान होने पर होते हैं। तीर्थंकर भव की अपेक्षा होने वाले अतिशयों के अतिरिक्त शेष 6 से 20 तक 12वें अतिशय को छोड़कर 14 अतिशय देवकृत होते हैं।[80]

भगवान् महावीर के 34 ही अतिशय प्रकट हो गये। इस उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति का उपभोग प्रभु कर रहे हैं।

उनके सत्य वचन के पेंतीस अतिशय कहे गये हैं –

1. संस्कारत्व –तीर्थंकर भगवान् संस्कारयुत् वचनों का प्रयोग करते हैं।
2. उदात्तत्व–भगवान् ऐसे उच्च स्वर से बोलते हैं कि एक योजन बैठी परिषद उनका उपदेश भली-भाँति श्रवण कर लेती है।
3. उपचारोपेतत्व–भगवान् के वचन तुच्छता रहित होते हैं।
4. गम्भीर शब्दत्व–प्रभु की वाणी मेघ गर्जना के समान गम्भीर होती है।
5. अनुनादित्व–जैसे गुफा में बोलने से प्रतिध्वनि उठती है, वैसी भगवान् की वाणी की प्रतिध्वनि उठती है।
6. दक्षिणत्व–भगवान् के वचन सरलता से युक्त होते हैं।
7. उपनीत रागत्व–मालकोशादि राग से युक्त वचन होते हैं।
   ये सात अतिशय शब्द की अपेक्षा से जानने चाहिए। अन्य सारे वाणी के अतिशय अर्थ की अपेक्षा से जानने चाहिए।
8. महार्थत्व–वचन महान् अर्थ वाले होते हैं।
9. अव्याहतपौर्वापर्यत्व–भगवान् के वचन परस्पर अविरोधी होते हैं।
10. शिष्टत्व–भगवान् के वचन शिष्टता युक्त होते हैं।
11. असंदिग्धत्व–असंशय युक्त वचन होते हैं।

12. अपहतान्योत्तरत्व–भगवान् के वचनों में कोई दोष नहीं निकाल सकता।
13. हृदयगाहिता–भगवान् के वचन श्रोताओं को मनोहर लगते हैं।
14. देशकालाव्यतीत्वं–भगवान् के वचन तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार होते हैं।
15. तत्त्वानुरूपत्व–सार्थक और सम्बद्ध पूर्वापर सम्बन्ध युक्त वचन बोलना।
16. अप्रकीर्ण प्रसृतत्व–सारयुक्त वचन बोलना।
17. अन्योन्य प्रगृहीत–परस्पर अपेक्षा रखने वाले पदों और वाक्यों से युक्त होना।
18. अभिजातत्व–वक्ता की शालीनता होना।
19. अतिस्निग्ध मधुरत्व–अतिस्निग्ध मधुर वचन होना।
20. अपरकर्मबोधित्व–मर्मभेदी वचन न होना।
21. अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व–अर्थ और धर्म के अनुकूल वचन होना।
22. उदारत्व–तुच्छता रहित एवं उदारता युक्त होना।
23. परनिन्दात्मोत्कर्ष विप्रयुक्तत्व–स्व-प्रशंसा और पर-निन्दा से रहित होना।
24. उपगतिश्लाघत्व–जिन्हें श्रवण कर श्रोता प्रमुदित होवे।
25. अनपनीत्व–कारक आदि व्याकरण के दोषरहित वचन होना।
26. उत्पादिताच्छिन्न कौतुहलत्व–जिन्हें श्रवण कर श्रोताओं को कौतुहल बना रहता है।
27. अद्भुतत्व–अद्भुत वचन होना।
28. अनतिविलम्बितत्व–धारा-प्रवाह बोलना।
29. विभ्रम-विक्षेप–रोष-भयादि से रहित वचन बोलना।
30. अनेक जाति संश्रयाद्विचित्रत्त्व–वस्तु के स्वरूप का वर्णन करने वाले वचन होना।
31. आहितविशेषत्व–सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा विशेषतायुक्त वचन होना।
32. साकारत्व–पृथक्-पृथक् वर्ण, पद, वाक्य के आकारयुक्त वचन होना।
33. सत्त्वपरिगृहीतत्व–साहस से परिपूर्ण वचन होना।
34. अपरिखेदित्व–खिन्नता रहित वचन होना।
35. अत्युच्छेदित्व–इच्छित अर्थ की सम्यक् सिद्धि करने वाले वचन होना।[81]

तीर्थंकर भगवान् का जीवन निर्दोष होता है। वे अठारह दोषरहित होते हैं –

1. मिथ्यात्व–वस्तु के अयथार्थ स्वरूप पर श्रद्धा होना मिथ्यात्व है। भगवान् क्षायिक समकिती होने से मिथ्यात्व दोषरहित होते हैं।
2. अज्ञान–भगवान् केवलज्ञान से युक्त होते हैं। ज्ञानावरणीय कर्म सर्वथा

क्षय होने से वे अज्ञानरहित होते हैं।

3. मद–सर्वगुणसम्पन्न भगवान् मदरहित होते हैं।
4. क्रोध–भगवान् क्रोधरहित होते हैं।
5. माया–अत्यन्त सरल स्वभावी तीर्थंकर भगवान् मायारहित होते हैं।
6. लोभ–तृष्णारहित संतोष-सागर में रमण करने वाले तीर्थंकर भगवान् होते हैं।
7. रति–इष्ट वस्तु की प्राप्ति से होने वाली खुशी रति कहलाती है। वीतराग भगवान् राग-द्वेष से रहित होने से वे रति-रहित होते हैं।
8. अरति–अनिष्ट वस्तु के संयोग से होने वाली अप्रीति अरति है। अरिहंत राग-द्वेष रहित होने से दुःखरहित होते हैं।
9. निद्रा–अरिहंतों को दर्शनावरणीय कर्म नहीं होता, अतः उन्हें नींद नहीं आती।
10. शोक–मोह विजेता भगवान् शोकरहित होते हैं।
11. अलीक–तीर्थंकर भगवान् मिथ्याभाषण से रहित होते हैं।
12. चौर्य–मालिक की आज्ञा बिना किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करते।
13. मत्सरता–तीर्थंकर भगवान् ईर्ष्या भावरहित होते हैं।
14. भय–तीर्थंकर भगवान् अत्यन्त बलशाली होते हैं।
15. हिंसा–दया के सागर तीर्थंकर प्रभु हिंसा से रहित होते हैं।
16. प्रेम–तीर्थंकर भगवान् तन, धन, स्वजनादि के प्रेम से रहित होते हैं।
17. क्रीड़ा–मोह कर्मरहित तीर्थंकर भगवान् गाना, बजाना, रोशनी, मण्डप आदि क्रीड़ाओं से रहित होते हैं।
18. हास्य–सर्वज्ञ प्रभु अपने केवलज्ञान में सभी वस्तुओं को हथेली पर रखे आँवले की तरह स्पष्ट जानते, देखते हैं। इसलिए वे हास्यरहित होते हैं।

भगवान् महावीर चार घाति कर्मों का क्षय करने से बारह गुणधारी बन गये। वे बारह गुण इस प्रकार हैं –

1. अणासवे–आश्रव कर्म-द्वार को कहते हैं। तीर्थंकर भगवान् इस आश्रव से रहित होते हैं।
2. अममे–ममत्व भावरहित होते हैं।
3. अकिंचणे–अकिंचन परिपूर्ण साधुता सहित।
4. छिन्नसोए–शोकरहित।
5. निरूवलेवे–द्रव्य दृष्टि से निर्मल देहधारी तथा भाव दृष्टि से कर्मबंध

के हेतुरूप उपलेप से रहित।

6. ववगय पेम राग दोस मोहे–प्रेम, राग, द्वेष एवं मोहरहित।
7. निग्गंथस्स पवयण देसए–निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेष्टा।
8. सत्थनायको–धर्म-शास्त्र के नायक।
9. अणंतनाणी–अनंत ज्ञान सहित।
10. अणंतदंसी–अनंत दर्शन सहित।
11. अणंत चरित्ते–अनंत चारित्र सहित।
12. अणंत वीरिय संजुत्ते–अनंत बलवीर्य संयुक्त।[82]

भगवान् महावीर सदैव अनेक गुणों से समन्वित अर्धमागधी भाषा में ही उपदेश फरमाते थे, क्योंकि प्राणी अपने-अपने रूप में यह भाषा समझ लेते थे।[83] विभंग अद्व कथा पृष्ठ 387 पर कहा है कि बालकों को बचपन में कोई भाषा न सिखाई जाये तो वे स्वयं मागधी भाषा बोलने लगते हैं। ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

बौद्ध विद्वान वाग्भट्ट ने भी ऐसा उल्लेख किया है कि हम उसी वाणी को नमस्कार करते हैं जो सबकी अर्धमागधी है, जो सभी भाषाओं को अपना परिणाम दिखाती है और जिसके द्वारा सभी-कुछ जाना और समझा जा सकता है।[84] इससे बौद्ध धर्म में भी अर्धमागधी को सब भाषाओं का मूल माना है, यह सिद्ध होता है।

जर्मन विद्वान रिचार्ड पिशल ने अर्धमागधी के अनेक रूपों का विश्लेषण किया है।[85] जिनदास महत्तर ने अर्धमागधी का लक्षण बतलाते हुए कहा है कि मगध के आधे भाग में बोली जाने वाली अथवा अठारह देशी भाषाओं में नियत भाषा को अर्धमागधी कहा है।[86]

उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला में गोल्ल, मध्यप्रदेश, कनार्टक, अन्तरवेदी मगध, अन्तखेदी, कीर, ढवक, सिंधु, मरु, गुर्जर, लाट, मालवा, ताइय, कौशल, मरहट्ठ और आन्ध्र प्रदेशों की भाषाओं को देशी भाषा[xxxiv] कहा है।[87]

वृहत्कल्प भाष्य में मगध, मालव, महाराष्ट्र, लाट, कर्णाटक, द्रविड़ गौड, विदर्भ इन आठ देशों की भाषाओं को देशी भाषा[xxxv] कहा है।[88]

नवांगी टीकाकार अभयदेव सूरि ने व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में अर्धमागधी का लक्षण निरुपित करते हुए कहा है कि इसमें कुछ लक्षण मागधी के तथा कुछ लक्षण प्राकृत के पाये जाते हैं, इस कारण इसे अर्ध मागधी कहते हैं।[89]

इस प्रकार अर्ध मागधी विशिष्ट भाषा होने से प्रभु महावीर ने अर्ध- मागधी भाषा में ही अपनी धर्मदेशना प्रवाहित की।

सभी तीर्थंकर केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रथम देशना में ही अर्ध-मागधी भाषा में अत्यन्त आह्लादकारी, मर्मस्पर्शी प्रवचन देकर अनेक भव्यात्माओं को संयम पथ पर आरूढ़ करके, अनेक भव्यात्माओं को श्रावक व्रत ग्रहण करवाकर चतुर्विध संघ की संस्थापना करते हैं। लेकिन भगवान् महावीर के लिए यह सिद्धांत लागू नहीं हुआ।

श्वेताम्बर परम्परा में स्थानांग[90] आदि आगमों में तथा आवश्यक निर्युक्ति,[91] विशेषावश्यक भाष्य,[92] त्रिशष्टिशलाकापुरुषचारित्र[93] आदि आगमेतर साहित्य में ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान् महावीर की प्रथम देशना में मात्र देव उपस्थित थे। वहाँ कोई भी मनुष्य नहीं था, इसलिए प्रथम देशना को अभाविता परिषद के रूप में माना है। अभाविता का तात्पर्य इसमें किसी ने कोई व्रत अंगीकार नहीं किया।[94]

आचार्य गुणचन्द्र ने अपने ग्रंथ महावीर चरियं में भगवान् महावीर के प्रथम समवसरण को अभाविता परिषद के रूप में माना है, फिर भी इस प्रथम परिषद में मनुष्य उपस्थित थे, ऐसा स्वीकार किया है।[95]

आचारांग टीकाकार शीलांक ने चउवन्नमहापुरुषचरियं में अभाविता परिषद का कोई उल्लेख तक नहीं किया। उन्होंने ऋजुबालिका के तट पर ही प्रथम देशना में इन्द्रभूति आदि की दीक्षा का उल्लेख किया है।

आचारांग में भगवान् की प्रथम देशना देवों के समक्ष हुई-यही उल्लेख मिलता है[96] और स्थानांग में प्रथम देशना खाली जाने से इसे आश्चर्य रूप माना है। अतएव भगवान् महावीर ने चतुर्विध संघ की स्थापना वैशाख शुक्ला एकादशी को की, यही आगमिक मान्यता स्वीकार करने योग्य है।

इस प्रकार वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन भगवान् महावीर तीर्थ के संस्थापक होने से तीर्थंकर की संज्ञा से अभिहित किये जाते थे।

तीर्थंकर शब्द का प्रयोग जैनों की तरह बौद्धों ने भी किया है। उनके लंकावतार सूत्र में तीर्थंकर शब्द मिलता है।[97] उनके दीघनिकाय तथा सामञ्जफल सूत्र में 16 तीर्थंकरों का उल्लेख मिलता है।[98] वैदिकों में भी तीर्थंकर की जगह अवतार माने हैं।[99] यद्यपि बौद्धों और वैदिकों ने तीर्थंकर या अवतार की कल्पना की है, लेकिन तीर्थंकर शब्द की प्राचीनता जैन इतिहास में मिलती है।

जैन धर्म में चौबीस तीर्थंकरों का सबसे प्राचीन उल्लेख दृष्टिवाद के मूल प्रथमानुयोग में था, लेकिन वर्तमान में वह लुप्त हो गया है।[100] अद्य सबसे प्राचीन उल्लेख समवायांग[101], कल्पसूत्र[102], आवश्यक चूर्णि[103], आवश्यक निर्युक्ति[104], आवश्यकवृत्ति[105], चउप्पन्नमहापुरिषचरियं[106], त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र[107] आदि ग्रंथों में मिलता है। अंगसूत्र गणधर सुधर्मा स्वामी प्रणीत हैं। भगवान् महावीर को ई. पू. 557 में केवलज्ञान तथा 527 में निर्वाण हुआ।[108] अतः समवायांग का रचनाकाल भी ई. पू. 557 से 527 तक ही है।[109]

अतः स्पष्ट है कि बौद्धों के चौबीस बुद्ध एवं वैदिकों के चौबीस अवतारों से जैनों के चौबीस तीर्थंकरों का उल्लेख प्राचीन है।[xxxvi] यही कारण है कि चौबीस तीर्थंकरों की जितनी सुव्यवस्थित सामग्री जैनियों में मिलती है, वैसी बौद्धों या वैदिक वाङ्मय के अवतारों की नहीं मिलती।[110]

साथ ही अपश्चिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने स्थान-स्थान पर ऐसा उल्लेख भी किया है कि जैसा भगवान् पार्श्वनाथ ने कहा है, वैसा मैं भी कहता हूँ।[111] परन्तु बुद्ध ने यह नहीं कहा कि पूर्वबुद्ध[112] ने ऐसा कहा और मैं भी ऐसा कहता हूँ। अपितु गौतम बुद्ध ने सर्वत्र यही कहा कि मैं ऐसा कहता हूँ। इससे भी स्पष्ट है कि बुद्ध के पूर्व बौद्ध धर्म की कोई परम्परा नहीं थी[xxxvii] जबकि भगवान् महावीर के पूर्व तेईस तीर्थंकरों की परम्परा थी।

इन तीर्थंकर भगवंतों की महिमा आगम साहित्य से लेकर आज भी निरन्तर परिलक्षित होती है। चतुर्विंशति स्तव (लोगस्स) में प्रागइतिहासकारों ने तथा गणधरों[113] ने तथा शक्रस्तव (णमोत्थुणं) में स्वयं प्रथम देवलोक के इन्द्र ने तीर्थंकर भगवान् के दिव्य गुणों का वर्णन करते हुए उनकी महिमा का बखान किया है।[114] इसके पश्चात् अनेक स्त्रोतों में तीर्थंकर भगवंतों की महिमा का सुष्ठु दिग्दर्शन उपलब्ध होता है, जिनका आज भी जन-जन में प्रचलन है।

तीर्थंकर भगवान् के नाम के साथ नाथ शब्द कब से जुड़ा, यह भी उल्लेखनीय है। वैसे नाथ, स्वामी या मालिक प्रभु को कहते हैं। उत्तराध्ययन की वृहद्वृत्ति में *शान्त्याचार्य ने योग, क्षेम के विधाता को नाथ कहा है।*[115] *अप्राप्त की प्राप्ति* योग और प्राप्त वस्तु का रक्षण क्षेम है। उत्तराध्ययन के अनाथ अध्ययन में स्वयं एवं दूसरों का संरक्षण करने वाले को नाथ कहा है।[116] नाथ की ऐसी ही परिभाषा बौद्ध साहित्य में भी उपलब्ध होती है।

दीघनिकाय में क्षमा, दया, सरलता आदि सद्गुणों को धारण करने वाले को नाथ कहा है।[117] इन सब विश्लेषणों से नाथ शब्द स्वामी, मालिक या प्रभुत्व का सूचनकर्ता है। सुप्रसिद्ध दिगम्बराचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपणत्तिग्रन्थ में तीर्थंकरों के नाम के साथ नाथ शब्द का प्रयोग किया है यथा 'भरणी रिक्खम्मि से तिणाहो य'।[118] तीर्थंकरों के नाम के साथ नाथ शब्द का प्रयोग पंचम गणधर सुधर्मा स्वामी ने किया। *व्याख्याप्रज्ञप्ति में लोगनाहेणं अर्थात् 'लोक के नाथ'* कहकर भगवान् को सम्बोधित किया है। शक्रस्तव में भी लोगनाहेणं शब्द मिलता है इसी का अनुसरण करते हुए तीर्थंकर भगवंतों के नाम के साथ नाथ या स्वामी शब्द जुड़ गया और भगवान् महावीर को भी भगवान् महावीर स्वामी कहकर सम्बोधित किया जाने लगा।

भगवान् महावीर अपने तीर्थंकर नाम कर्म का वेदन (भोग) करने के लिए, सम्पूर्ण जगत् के जीवों की रक्षा के लिए, दया-रूप, अहिंसा-रूप प्रवचन फरमाने लगे।[119] वे अपने भव्य प्रवचन से भव्यात्माओं को जीव हिंसा से निवृत्त बनाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। उन्हें जहाँ भी लगा कि कोई भव्य आत्मा संसार सागर तैर कर पार करने वाली है, वहाँ वे पाद-विहार करते हुए पधार जाते और अपने पावनतम उपदेश से उन्हें संसार के मोह-कीच से निकालकर सर्वविरति चारित्र (दीक्षा) या देशविरति श्रावक धर्म अंगीकार करवाते।

वे अनेक भव्यात्माओं को संयम के पथ पर आरूढ़ करवाने हेतु, अनेक भव्यात्माओं का उद्धार करने हेतु ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए राजगृह नगर पधार गये।[120]

मगधेश श्रेणिक की पूर्व झलक :-

उस समय राजगृह नगर अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था। वहाँ के लोग बड़े धनाढ्य थे। धनाढ्य होने के साथ-साथ वहाँ के लोग दयालु प्रकृति के भी थे। वहाँ के सरलमना, भद्रपरिणामी लोग साधुओं को अत्यन्त उदारतापूर्वक भिक्षा बहराते थे। राजा श्रेणिक वहाँ का परमप्रतापी नरेश था।

श्रेणिक राजा के पिता प्रसेनजित अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। वे तो स्वयं भरत क्षेत्र के कुशाग्रपुर नगर में राज्य करते थे। पुण्य-भोगी प्रसेनजित अपने मधुर व्यवहार से दूर-दूर तक ख्यातिप्राप्त था। सुदूर प्रान्तों तक उसका कोई शत्रु नजर ही नहीं आता था। उसका सैन्य-समूह राज्य की शोभा में चार चाँद लगाने हेतु था। दृढ़धर्मी[क], प्रियधर्मी[ख] राजा प्रसेनजित भगवान् पार्श्वनाथ का बारह व्रतधारी श्रावक था।

उसने अनेक राजकन्याओं के साथ परिणय सूत्र में बंधकर अनेक पुत्रों का पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। उसकी धारिणी रानी की कुक्षि से ही राजगृह के परम प्रतापी राजा श्रेणिक का जन्म हुआ, जो कि पूर्वभव में भी राजा ही था। उनका पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार मिलता है।

भरत क्षेत्र में बसन्तपुर नामक नगर था। उस बसन्तपुर नगर में राजा जितशत्रु राज्य करता था। उसकी अमरसुन्दरी नामक पटरानी थी, जिसने समय आने पर एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम सुमंगल रखा गया। वह सुमंगल अत्यन्त रूपवान एवं पराक्रमशाली राजकुमार था। उसके अंग-प्रत्यंग से सौन्दर्य फूट-फूटकर बह रहा था। राजसी परिवार में अत्यन्त प्यार और दुलार से वह

(क) दृढ़धर्मी-धर्म में दृढ़, अंगीकृत व्रतों का यथावत पालन करने वाला
(ख) प्रियधर्मी-धर्म में श्रद्धा रखने वाला, धर्म प्रेमी

शनैः-शनैः निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा था। अपनी मधुर किलकारियों से राजभवन के भव्य प्रांगणों को अनुगुंजित कर रहा था। अपनी बालसुलभ चेष्टाओं से सभी के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बना हुआ था।

जिस समय जितशत्रु के यहाँ सुमंगल का जन्म हुआ उसी समय वहाँ के मंत्री के यहाँ पर भी एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ, जिसका नाम सेनक रखा गया। वह सेनक भी शनैः-शनै वृद्धि प्राप्त करने लगा और एक दिन उसने राजकुमार सुमंगल से अपनी मित्रता स्थापित करली।

राजकुमार सुमंगल ने अपने पूर्वभव में शुभ नाम कर्म का बंधन किया जिसके फलस्वरूप उसे सुडौल एवं सुन्दर आकृतिवाला, आकर्षक अंगोपांग वाला गात्र मिला, लेकिन सेनक ने पूर्वभव में अशुभ नाम कर्म का उपार्जन किया जिसके परिणामस्वरूप उसे अशुभ आकार-प्रकार वाला शरीर मिला। उसकी इस शरीराकृति को देखकर हमउम्र के लोग प्रायः हँसी उड़ाया करते थे। उसके मित्र तो उपहास करते ही थे, परन्तु उसका अनन्य मित्र सुमंगल तो जब देखो तब उसका उपहास करता ही रहता था। निरन्तर उपहास पात्र बनने से सेनक के मन में संसार से विरक्ति के भाव पैदा हो गये और चिंतन किया कि इस प्रकार हर समय हँसी उड़ने से मेरा मन खिन्न बना रहता है, फिर इस संसार में रहने से लाभ क्या? अच्छा है, मैं तपस्वी बनकर अपने अशुभ कर्मों को तोड़ने का प्रयास करूँ। इस प्रकार चिंतन कर एक दिन वह वहाँ से निकल चला। शहर से वन की ओर प्रयाण कर दिया। जब वह जंगल से गुजर रहा था, तो उसने वन में एक कुलपति तापस को देखा और उसके पास जाकर निवेदन किया—मैं संसार से उद्विग्न बनकर आपके चरणों में आया हूँ। आप मुझे तापस दीक्षा देकर अनुगृहीत करें। तब कुलपति तापस ने उसके भावों को जानकर तापस दीक्षा दी। सेनक ने तापस दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् उष्ट्रिका व्रत ग्रहण किया और उत्कृष्ट तपश्चर्या करता हुआ विचरण करने लगा।

विचरण करते-करते एक बार वह बसन्तपुर नगर में आया, जहाँ उसका मित्र सुमंगल राजगद्दी पर आसीन हो चुका था। वह तपस्वी वहाँ बसन्तपुर के बाहर आश्रम में तपश्चर्या करते हुए रहने लगा। पूरे नगर में उस तपस्वी की उत्कृष्ट तपश्चर्या की ख्याति फैल गई और अनेक लोग नित्य-प्रति उसके दर्शन हेतु आने लगे।

एक बार लोगों ने उस तपस्वी से पूछा कि आप कहाँ के निवासी हो? आपको वैराग्य कैसे आया? तब उस तपस्वी ने कहा कि मैं आपके नगर में मंत्री

का पुत्र था। मेरा अनन्य मित्र राजकुमार सुमंगल मेरा रूप देखकर बहुत उपहास करता था। उसके उपहास को घोर अपमान समझकर मेरा मन बड़ा खिन्न हुआ और संसार से उदासीन रहने लगा। तभी मेरे भीतर में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हुए और मैं विरक्त बनकर तापस धर्म में दीक्षित बन गया। लोगों ने इस बात को श्रवण किया और बात एक कान से दूसरे कान तक हवा की तरह फैलने लगी।

शनैः-शनैः बात राजा सुमंगल के कानों तक भी पहुँच गई। तब राजा सुमंगल ने विचार किया कि मेरा मित्र तापस जीवन स्वीकार कर उत्कृष्ट तपश्चर्या कर रहा है। मास-मास क्षपण की तपस्या कर रहा है। मुझे भी उसके दर्शन करना चाहिए और पारणे का निमंत्रण देना चाहिए।

ऐसा विचार कर वह सुमंगल, सेनक तपस्वी के पास जाता है। उन्हें विधिवत् प्रणाम करता है और निवेदन करता है कि इस बार मासक्षपण का पारणा मेरे यहाँ करना है। राजा सुमंगल के स्नेहाभिषिक्त आग्रहभरे निमंत्रण को तपस्वी ने स्वीकार कर लिया। राजा सुमंगल अत्यन्त हर्षित होता हुआ राजभवन को लौट गया।

सेनक अपनी तपश्चर्या में लीन था। वह मास-मास क्षपण की तपस्या करता और एक दिन उसी के यहाँ पारणा करता जिसका निमंत्रण वह पहले ही स्वीकार कर लेता। यदि संयोग से वहाँ पारणा नहीं होता तो पुनः बिना पारणा किये मासक्षपण धारण कर लेता, लेकिन दूसरे घर पारणे के लिए नहीं जाता था। अभी भी वह तपश्चर्या में लीन था। पारणे के लिए उसको इस बार राजभवन में जाना था। राजा सुमंगल भी प्रतिदिन गिन-गिन कर उसके पारणे की बाट जो रहा था। समय अपनी गति से बढ़ रहा था। तपस्वी के मासक्षपण पूर्ण हुआ और वह पारणे के लिए राजभवन की ओर प्रस्थित हुआ।

इधर तपस्वी पारणे के लिए राजभवन की ओर जा रहा है और उधर राजा सुमंगल का स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया। राजा का स्वास्थ्य अस्वस्थ होने से द्वारपाल ने राजभवन के द्वार बंद करवा दिये। उसे पता नहीं था कि आज कोई तपस्वी पारणा करने के लिए आयेंगे। जैसे ही सेनक तपस्वी राजभवन के समीप पहुँचा, देखा राजभवन के द्वार बंद हैं और कोई भी वहाँ मौजूद नहीं था जो तपस्वी को पारणे के लिए उसे भीतर ले जा सके।

सेनक तपस्वी उस स्थिति को देखकर पुनः लौट गया और पारणा किये बिना पुनः मासक्षपण धारण कर लिया और जरा भी सुमंगल पर क्रोध नहीं करता हुआ निष्कषाय भाव से तपश्चर्या में लीन हो गया।

इधर राजा सुमंगल दूसरे दिन स्वस्थता को प्राप्त हुआ और उसके स्मृति पटल पर आया कि मैंने तपस्वी को मासक्षपण के पारणे का निमंत्रण दिया था, परन्तु कैसा संयोग........... कल उनके पारणा था और कल ही मेरा स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया था, फलस्वरूप तपस्वी आये होंगे........... जरूर आये होंगे........... किसी ने ध्यान नहीं दिया........... जरूर वे भूखे ही वापिस लौट गये होंगे........... उनका तो पारणा भी नहीं हुआ होगा। राजा सुमंगल ने द्वारपाल को बुलाया और पूछा—क्या कोई तपस्वी आया था?

द्वारपाल—हाँ, हुजूर।

राजा—महल में नहीं आया?

द्वारपाल—राजन् ! आपका स्वास्थ्य खराब होने से राजभवन के द्वार बंद थे, उन्हें देखकर वह वापिस लौट गया।

राजा—बहुत बुरा हुआ। उनके मासक्षपण का पारणा था। मैंने निमंत्रण दिया था, पारणा करने का। वह तपस्वी भूखा ही रह गया........... हाय........... मैं कितना हतभागी...........। कहकर राजा शोकमग्न हो गया।

कुछ समय पश्चात् राजा ने चिंतन किया—मुझे अब उन तपस्वी के चरणों में जाकर क्षमायाचना करनी चाहिए। ऐसा विचार कर राजा सुमंगल तपस्वी के पास गया। अत्यन्त ग्लानि का अनुभव करते हुए दबे शब्दों से उसे प्रणाम किया और सकरुण वाणी से निवेदन किया—तपस्विन् ! मैंने अत्यन्त शुद्ध भावों से आपको निमंत्रण दिया था, लेकिन........... लेकिन मेरे घोर अशुभ कर्मों का उदय आया कि जिस दिन आपके पारणा था उसी दिन मेरा स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया। द्वारपाल ने द्वार बंद कर दिये और मैं आपको पारणा नहीं...........। मेरे कारण आपके आहार-पानी में जबरदस्त अन्तराय लगी है। मैं आपसे हार्दिक क्षमायाचना करता हूँ और निवेदन कर रहा हूँ........... प्रार्थना कर रहा हूँ........... कि इस बार........... पारणा मेरे राजभवन के प्रांगण में करने की कृपा करावें।

राजा के भावभरे आमंत्रण को तपस्वी ठुकरा नहीं सका। उसने राजा से कहा—आपकी भावना के मद्देनजर मुझे आपका हार्दिक निमंत्रण स्वीकार्य है। तपस्वी की वाणी को श्रवण कर राजा बड़ा हर्षित-प्रमुदित होता है और अत्यन्त प्रसन्नता के साथ तपस्वी का यथायोग्य सम्मान और अभिवादन कर राजमहलों में लौट जाता है।

राजा सुमंगल बेताबी से तपस्वी का इंतजार कर रहा है। एक-एक दिन

अंगुलियों पर गिन रहा है और मन में अरमान सजा रहा है, तपस्वी आयेगा, मैं बहुत दूर तक पाँव-पाँव चल कर उसकी अगवानी हेतु जाऊँगा। भक्तिभाव से राजप्रांगण में लाऊँगा और........... स्वयं बैठकर........... उसका पारणा करवाऊँगा. .... उसके लिए विशिष्ट भोजन बनवाऊँगा। इस प्रकार कल्पनालोक में राजा सुमंगल विहरण कर रहा था। निरन्तर तपस्वी के आगमन में पलक-पाँवड़े बिछाये था, लेकिन कर्म की गति बड़ी विचित्र है। निरन्तर इंतजार करते-करते जिस दिन तपस्वी के पारणे का दिन आया, नृप के ख्वाबों का ताजमहल चरमरा कर ढह गया और नृपति अस्वस्थ बन गया। द्वारपाल ने द्वार बंद करवा दिये। तपस्वी पारणे के लिए निकला, पाँव-पाँव चला। दो मास से निरन्तर तपश्चर्या में लीन था। शरीर क्लान्त[क], मन शांत और शनैः-शनैः मंजिल की ओर चलने लगा। लेकिन जैसे ही राजभवन तक पहुँचा तो देखा, द्वार बंद है। कुछ समय इधर-उधर देखा लेकिन देवयोग से कोई दिखाई न दिया जो तपस्वी को पारणे के लिए राजभवन के प्रांगण तक ले जा सके। शांत-प्रशांत अनुद्विग्न[ख] मन से पुनः तपस्वी अपने आश्रम में लौट आया और मासक्षपण का प्रत्याख्यान कर लिया। तपस्वी अपनी तपश्चर्या में तल्लीन है। भूख-प्यास को प्रशांत भाव से सहन करते हुए अकाम निर्जरा करते हुए अपनी साधना में संलग्न है।

दूसरे दिन भूपति स्वस्थ होता है। जैसे ही स्वस्थ बनता है, उसी समय उसे तपस्वी के पारणे की स्मृति आती है। तुरन्त द्वारपाल को बुलाता है। महाराज द्वारा आमंत्रित किये जाने पर द्वारपाल आता है और कहता है–महाराज की जय हो ! आपका क्या आदेश है?

राजा–कल तपस्वी आया था?

द्वारपाल–महाराज ! आपका स्वास्थ्य अस्वस्थ था, इसलिये मैंने द्वार बंद करवा दिये। आये भी होंगे, लेकिन पुनः लौट गये होंगे।

राजा–ओह ! बहुत बुरा हुआ। मैं स्वयं तपस्वी के पास जाता हूँ।

राजा अत्यन्त लज्जित होकर स्वयं तपस्वी के पास पहुँचता है। भारी कदमों से चलकर पश्चात्ताप की भयंकर आग में जलता हुआ अत्यन्त विनम्रता से तपस्वी को प्रणाम करता है और दबे शब्दों से बोलता है– महात्मन् ! आप जैसे धैर्यशील तपस्वी आत्मा की मैंने अत्यधिक अविनय-आशातना की है। मेरे कारण दो माह से आप निराहार हैं और तीसरा माह भी आहार रहित निकालना पड़ेगा।

(क) क्लान्त–थका हुआ (ख) अनुद्विग्न–संताप रहित

धिक्कार है.......... मुझे धिक्कार है.......... यद्यपि मेरी उत्कृष्ट भावना थी कि आप मेरे यहाँ पारणा करें, लेकिन अन्तराय.......... घोर अन्तराय। मैं आपको एक पारणा भी न करा सका। कैसा हतभागी कि मेरे कारण तीन माह निराहार रहना पड़ेगा। ओह.......... अब क्या करूँ.......... क्या करूँ.......... ।

राजा सुमंगल का हार्दिक पश्चात्ताप देखकर सेनक तपस्वी का हृदय मोम की तरह पिघलने लगा। उसके मन में करुणा का सागर लहराने लगा। राजा की भावना ने उसे सोचने को मजबूर बना दिया और सरल हृदय से उसने धरणीधर[क] से कहा—राजन् ! अब भी समय है। इस बार पारणा आपके यहाँ कर सकता हूँ। राजा बड़ा एहसान मानता है और कहता है—आपका अनुग्रह जीवनपर्यन्त नहीं भूल पाऊँगा। तपस्वी की सरलता को दिल में स्थान देकर नृपति वहाँ से चल देते हैं।

राजभवन में आकर प्रतिदिन इंतजार करता है कि वह दिन धन्य होगा जिस दिन मैं तपस्वी को अपने महलों में पारणा करवाऊँगा। अपने हाथों से परोसूँगा, उनका खूब स्वागत-सत्कार करूँगा। ऐसा चिंतन करते-करते उसे स्मृति में आता है कि पूर्व में जब भी तपस्वी आया, द्वार बंद मिला। इस बार द्वारपाल को सचेत करता हूँ। राजा द्वारपाल को सचेत करता है कि अमुक दिन तपस्वी के पारणा है। उस दिन तुम किसी भी परिस्थिति में द्वार बंद नहीं करोगे। द्वारपाल ने कहा—महाराज की जैसी आज्ञा। अब राजा सुमंगल अत्यन्त उत्सुकता से तपस्वी के पारणे का इंतजार कर रहे हैं, परन्तु विधि का विधान अकथनीय है। जैसे ही पारणे का दिन आता है, महाराज अस्वस्थ बन जाते हैं।

पूरे राजभवन में महाराज के अस्वस्थ होने से खलबली मच जाती है। द्वारपाल सोचता है कि जब भी तपस्वी के पारणे का दिन आता है तब राजा अस्वस्थ बन जाता है। वह यह बात राजकर्मचारियों तक पहुँचाता है। राजकर्मचारी अकारण तपस्वी पर आवेशित बन जाते हैं। जैसे ही तपस्वी आता है, सब आवेशजनित तो थे ही, क्रोधान्ध बन कर तपस्वी को सर्प की तरह घसीटते हुए नगर से बाहर फेंक देते हैं। तब अकारण तपस्वी के साथ इस प्रकार व्यवहार होने से वह बड़ा क्षुब्ध हो जाता है और क्रोध में आकर निदान[ख] करता है कि यदि मेरी तपस्या का फल हो तो आगामी भव में मैं इस राजा को मारने वाला बनूँ। मैंने तो राजा का इतना सम्मान किया और राजकर्मचारियों ने इतना अपमान!

(क) धरणीधर–राजा (ख) निदान–तप के फल की पहले से याचना करना, एक शल्य

बस, आगामी भव में इस राजा को मार डालूँगा। ऐसा निदान कर वह तपस्वी मृत्यु को प्राप्त कर अल्पऋद्धि वाला व्यन्तर देव बनता है।

इधर राजा भी स्वस्थ होने पर खूब पश्चात्ताप करता है। कुछ समय पश्चात् राज्य का परित्याग कर वह तापस बनता है और वह भी मरकर व्यन्तर देव बनता है। राजा सुमंगल देवायुष्क पूर्ण कर राजा प्रसेनजित की महारानी धारिणी की कुक्षि में जन्म धारण करता है। समय आने पर महारानी धारिणी[121] एक पुत्र रत्न को जन्म देती है, जिसका नाम श्रेणिक रखा जाता है। राजकुमार श्रेणिक पाँच धायों द्वारा पालन किया हुआ क्रमशः तरुण अवस्था को प्राप्त होता है।[122]

गूंज उठी किलकारियाँ

इसी समय, उसी नगर में नाग नामक रथिक रहता था। वह प्रसेनजित के चरणों में सदैव श्रद्धावनत था। स्वभाव से उदार एवं पर-नारी के लिए सहोदर के समान उस नाग रथिक की वृत्ति थी। उसके सुलसा नामक भार्या थी। उसको विवाह किये सुदीर्घ काल व्यतीत हो गया, लेकिन एक भी संतान पैदा नहीं हुई। शनैः-शनैः पति-पत्नी चिंताग्रस्त रहने लगे। नाग रथिक[क] कई बार विचार करता कि जिस आँगन में बच्चों की किलकारियाँ सुनाई न पड़ें, वह सूना घर-आँगन किस काम का? मैंने व्यर्थ ही विवाह किया। इससे तो अविवाहित रहता तो भी अच्छा था। ऐसा चिंतन कर वह मोह में झूलने लगा। नयनों से अश्रु छलकने लगे और मोतियों की माला की तरह कपोलों[ख] पर ढुलकने लगे। तभी सुलसा वहाँ पर आई और उसने देखा कि पतिदेव आर्तध्यान[ग] कर रहे हैं। उन्हें इस प्रकार रुदन करते हुए देखकर पूछा—प्रिय ! क्या बात है? मुझसे क्या अपराध हो गया? या किस बात की कमी आपको महसूस हो रही है? किस दुश्चिन्ता से आपका मन व्याकुल बन रहा है?

(तब सुलसा के मधुर वचनों को श्रवण कर) नाग ने कहा—प्रिये ! मुझे और किसी बात का दुःख नहीं है। एकमात्र संतान के अभाव में मुझे जीवन भारभूत लग रहा है।

सुलसा (अत्यन्त उदारता से)—प्रियतम ! इतनी-सी बात से आप क्यों दुःखी बन रहे हैं? इसके लिए तो आप दूसरा विवाह कर सकते हैं।

नाग—प्रिये ! मैंने जब तुमसे विवाह किया था, तब मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे अतिरिक्त सभी स्त्रियों को माँ एवं बहिन तुल्य मानूँगा। आज मैं केवल

(क) रथिक–रथ पर सवारी करने वाला, रथ का स्वामी (ख) कपोल–गाल
(ग) आर्तध्यान–चिंता, इष्ट वियोग, अनिष्ट के संयोग से होने वाला ध्यान।

अपनी छोटी-सी कामनापूर्ति के लिए शील की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करूँगा। शीलधर्म की अत्यधिक महत्ता है। शीलधर्म को खोने पर जीवन के समस्त सद्गुण चले जाते हैं इसलिए ऐसा करना तो दूर रहा पर मैं स्वप्न में भी नहीं चाहता। मैं तो एकमात्र यही कामना करता हूँ कि तुम कोई ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे तुम पुत्रवती बन जाओ और तुम्हारे से उत्पन्न पुत्र का लालन-पालन कर मैं अपने अरमानों को पूर्ण कर सकूँ।

सुलसा–स्वामिन्! मैं अन्य किसी देव की आराधना करने वाली नहीं हूँ। मैं तो मात्र अरिहंतोपासिका हूँ। केवल जिन-शासन के दो देव–अरिहंत और सिद्ध की भक्ति करने वाली हूँ क्योंकि उन्हीं की आराधना ही मनोवांछित फलदायी होती है।

नाग गाथापति[क]–चाहे किसी की भी आराधना करो, मुझे तो संतान चाहिए, केवल संतान।

सुलसा–ठीक है। ऐसा ही उपाय करूँगी। यों कह कर सुलसा आयंबिल आदि तपश्चर्या करती हुई अपनी आत्मा को भावित करती हुई आराधना करने लगी।

इधर सुलसा की तपश्चर्या का प्रभाव प्रथम देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र तक भी पड़ा और उन्होंने एक बार देवों के समक्ष सुलसा की प्रशंसा करते हुए कहा कि भरतक्षेत्र में सुलसा श्राविका अत्यन्त दृढ़धर्मी, प्रियधर्मी है। उसको केवली-प्ररूपित धर्म से कोई देव, दानव या मानव भी डिगा नहीं सकते।

इन्द्र के मुखारविन्द से सुलसा की प्रशंसा श्रवण कर एक देव अत्यन्त विस्मित हुआ और सुलसा की परीक्षा लेने के लिए वह भूमण्डल पर अवतरित हुआ। सुलसा उस समय भगवत्स्मरण कर रही थी। उस देव ने मुनि का रूप बनाया और निस्सही-निस्सही उच्चारण किया।

सुलसा ने जैसे ही निस्सही श्रवण किया, वह झट से उठी और देखा, एक साधु सामने खड़े हैं। मुनिराज को देखकर वह अत्यन्त हर्षित हुई। उसने मुनि को भाव-सहित वंदन किया और पूछा–आपका आगमन किस हेतु हुआ है? तब उस मुनि रूपधारी देव ने कहा–श्राविके! मुझे लक्षपाक तेल की आवश्यकता है और किसी वैद्य ने कहा, वह तुम्हारे घर मिल सकता है। मैं एक रोगी साधु के लिए वह तेल लेने आया हूँ।

सुलसा ने कहा–ओह! आज मेरा परम सौभाग्य है कि मुनि के उपयोग में

(क) गाथापति–सद्गृहस्थ

आने से मेरा तेल बनाना सफल हो जायेगा। ऐसा कहती हुई वह अत्यन्त हर्ष भाव से तेल का घड़ा लेने गई। उसने घड़ा उठाया और मुनि को बहराने[क] के लिए ला रही थी। तब मुनि रूपधारी देव ने अपनी शक्ति से वह घड़ा उसके हाथ से छुड़वा दिया। घड़ा छूटते ही गिर पड़ा और फूटकर सारा तेल जमीन पर बिखर गया। तब वह दूसरा घड़ा लाई। वह भी देव ने छुड़वा दिया, वह भी फूटा और पूरा तेल जमीन पर बिखर गया, परन्तु सुलसा को किञ्चित मात्र भी खेद नहीं हुआ। अब वह तीसरा घड़ा लेने गई तब देवता ने उसे भी छुड़वा दिया और तेल जमीन पर बिखर गया। तब सुलसा ने सोचा–ओह ! मैं कितनी अल्पपुण्या हूँ। मेरे द्वार पर मुनि पधारे और मैं तेल न बहरा सकी.......... तेल न बहरा सकी.......... वह अत्यन्त ग्लान[ख] भाव का अनुभव करने लगी। सुलसा की इस भावना को जानकर देवता ने अपना रूप प्रकट कर दिया और कहा–अरे ! मैं तो तुम्हारी परीक्षा लेने आया था, क्योंकि देवताओं में शक्रेन्द्र ने तुम्हारी दृढ़ धार्मिकता की प्रशंसा की थी। उस समय मुझे विश्वास नहीं हुआ था, लेकिन आज मैंने परीक्षा करके देख लिया कि तुम वास्तव में दृढ़धर्मी व प्रियधर्मी श्राविका हो। मैं तुमसे अतीव प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई वरदान माँगो। तब सुलसा ने कहा–मुझे और कोई वरदान नहीं चाहिए, लेकिन मेरे पति को संतान प्राप्ति की इच्छा है। तब देव ने उसे दिव्य बत्तीस गुटिकाएँ दी और कहा–ये जितनी गुटिकाएँ हैं, उतने ही तुम्हारे पुत्र होंगे और तुम इनको खा लेना जिससे तुम पुत्रवती बन जाओगी। तुझे जब भी कोई आवश्यकता हो, तब तुम स्मरण कर लेना, मैं उपस्थित हो जाऊँगा। तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा। ऐसा कहकर देव अंतर्धान हो गया।

देव के जाने के पश्चात् सुलसा ने विचार किया कि बत्तीस गुटिका यदि बार-बार खाऊँगी तो बत्तीस बालकों का पालन-पोषण करना मेरे लिए दुरूह है, अतएव ऐसा करती हूँ कि बत्तीस गुटिकाएँ[ग] एक साथ खा लेती हूँ ताकि बत्तीस लक्षण वाला एक ही कुमार उत्पन्न हो जायेगा। अपनी मति से ऐसा विचार करके उसने बत्तीस गुटिकाएँ एक साथ ग्रहण कर लीं। भवितव्यता अति बलवान होती है। एक साथ बत्तीस गुटिकाएँ खाने से उसके उदर में बत्तीस पुत्रों का एक साथ जन्म हुआ। इतने बालक एक साथ गर्भ में पलने से उसे अतिपीड़ा का अनुभव होने लगा। पीड़ा असहनीय बन गई तब उसने देव का स्मरण किया। देव उपस्थित हुआ। सुलसा ने देव से कहा–मुझे बत्तीस गुटिकाएँ खाने

(क) बहराना–देना (ख) ग्लान–खेद (ग) गुटिका–गोली

से असह्य पीड़ा हो रही है। देव ने पूछा—तुमने बत्तीस गुटिकाएँ एक साथ क्यों खाई? खैर ! भवितव्यता बलवान है, अब तो एक साथ बत्तीस पुत्रों का जन्म होगा। असहनीय प्रसव पीड़ा होगी। एक कार्य करता हूँ कि मैं तुम्हारी गर्भजन्य पीड़ा को हरण किए लेता हूँ, लेकिन तुम्हें एक साथ बत्तीस पुत्रों को तो जन्म देना ही होगा। ऐसा कहकर देव ने पीड़ा का संहरण कर लिया और देव अंतर्धान हो गया। सुलसा सुखपूर्वक गर्भ का वहन करने लगी और समय आने पर उसने बत्तीस पुत्रों को एक साथ जन्म दिया। बत्तीस कुमार घर में धाय माँ के द्वारा पालन-पोषण किए जाते हुए एक साथ बड़े होने लगे।[123] उनकी उम्र राजा श्रेणिक के बराबर थी और समय आने पर वे सभी अपनी योग्यता से श्रेणिक के अंगरक्षक बन गए।

प्रज्ञा परीक्षण : नन्दा परिणय :

इधर राजकुमार श्रेणिक भी अपने गुणों की शोभा से निरन्तर सभी का मन मोहने लगे। एक समय राजा प्रसेनजित ने श्रेणिक की योग्यता के मद्देनजर विचार किया कि अब मुझे परीक्षा करनी चाहिए कि मेरे किस पुत्र में राज्य सँभालने की कितनी योग्यता है। तब एक दिन उसने सब पुत्रों को एक साथ बिठाकर खीर का थाल परोस कर उनके सामने रखा। जैसे ही कुमार भोजन करने लगे, राजा प्रसेनजित ने शिकारी कुत्ते छोड़ दिए। उनको देखकर अन्य सभी राजकुमार उठकर चल दिए, परन्तु बुद्धिनिधान श्रेणिककुमार एकाकी ही बैठा रहा। उसने अपनी पैनी प्रज्ञा से हल निकाल लिया। दूसरी थाली में थोड़ी-थोड़ी खीर वह उन कुत्तों को डालता रहा। जब वे कुत्ते उस खीर को चाटते तो श्रेणिक अपनी थाली में ख़ीर खाने लगता। उसे देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने चिंतन किया कि यह श्रेणिककुमार ही राज्य का भार वहन करने के योग्य है।

समय अपनी गति से चलता रहा। एक दिन राजा प्रसेनजित के मन में पुनः राजकुमारों की परीक्षा लेने का विचार प्रादुर्भूत[क] हुआ। तब राजा ने सब कुमारों को एकत्रित करके मोदक के भरे हुए बंद करंडक और पानी के भरे हुए घड़े दिए और राजकुमारों से कहा—इन करंडक व घड़ों को खोले बिना तुम्हें पानी पीना है व लड्डू खाना है। उस समय श्रेणिक के अतिरिक्त कोई भी राजकुमार उनको खोले बिना लड्डू खाने या पानी पीने में समर्थ नहीं बना। तब

(क) प्रादुर्भूत–पैदा

श्रेणिक ने करंडक को इतना हिलाया कि लड्डू चूर-चूर हो गए। तत्पश्चात् सलियों से उस घड़े में छिद्र कर दिए। लड्डू का चूरा निकलने लगा। उसे श्रेणिक ने खाया और पानी के घड़े में छेद करके बूंद-बूंद करके निकलने वाले जल को एकत्रित करके पीया। श्रेणिक की कुशाग्र बुद्धि को देखकर उस समय राजा प्रसेनजित ने उसे ही राज्य सत्ता सम्भलाने का निश्चय किया।

इसी बीच एक बार कुशाग्र नगर में लगातार अग्नि का उपद्रव होने लगा। घर-घर में आग लगने लगी। तब राजा प्रसेनजित ने अवसर को पहिचानकर घोषणा करवाई कि इस नगर में अब जिसके भी घर में अग्नि लगेगी, उस गृहस्वामी आदि को रोगी ऊँट की तरह घर से बाहर निकलना पड़ेगा। सभी लोग अतिसतर्कता से रहने लगे, लेकिन एक दिन रसोइये के प्रमाद से नृपति के घर में अग्नि लग गई। वह अग्नि निरन्तर बढ़ने लगी। तब राजा ने अपने राजकुमारों को आज्ञा दी कि मेरे इस राजभवन से जो वस्तु तुम ले जाना चाहो ले जाओ, क्योंकि यह राजभवन तो मेरी घोषणानुसार मुझे छोड़ना ही पड़ेगा। तब सब कुमारों ने अपनी रुचि अनुसार हाथी, घोड़े, रत्नादि ग्रहण कर लिए। लेकिन श्रेणिककुमार ने मात्र एक भंभावाद्य को ग्रहण किया।

राजा प्रसेनजित ने श्रेणिक से पूछा—श्रेणिक, तुमने केवल भंभावाद्य को क्यों ग्रहण किया?

श्रेणिक ने कहा—पिताश्री ! भंभावाद्य राजाओं का जय चिह्न है। यह भूपतियों की दिग्विजय के लिए श्रेष्ठ मंगल है। अतएव इस वाद्य की रक्षा करनी चाहिए।

श्रेणिक की बुद्धिमत्ता को श्रवण कर राजा ने प्रसन्न होकर उसका नाम भंभासार रख दिया। अब राजा प्रसेनजित ने अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हुए राजभवन में आग लगने पर कुशाग्रपुर नगर का परित्याग कर दिया और वहाँ से एक कोस दूर छावनी बनाकर रहने लगे। जब नृपति राजभवन त्याग कर जाने लगे तब लोगों ने पूछा—राजन् ! आप कहाँ जा रहे हो? राजा ने बड़ी विचक्षण प्रज्ञा से उत्तर दिया कि मैं राजगृह अर्थात् राजा के घर जा रहा हूँ। तब उसी छावनी के स्थान पर समय आने पर राजा ने राजगृह नगर बसाया और वहाँ पर रमणीय महल, किला आदि बनवाये। वहीं पर सुखपूर्वक रहने लगा। राजा प्रसेनजित ने एक दिन विचार किया कि अब राज्य का भार किसी सुयोग्य राजकुमार के कंधों पर डालना चाहिए। तब उसने सभी कुमारों की योग्यता पर दृष्टिपात किया, लेकिन श्रेणिक के अतिरिक्त उन्हें राज्य सत्ता सँभालने में कोई योग्य नहीं लगा। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए राजा ने श्रेणिक की योग्यता को गुप्त रखना ठीक समझा। क्योंकि अन्य

राजकुमार श्रेणिक की योग्यता को नहीं जानते थे। इसी गुत्थी को सुलझाने के लिए राजा ने श्रेणिक के अतिरिक्त सभी को पृथक्-पृथक् राज्य दे दिया और मन में विचार किया कि श्रेणिक को राजगृह नगरी[xxxviii] दे दूँगा। सब कुमार अपने-अपने राज्य का राज करने लगे, लेकिन श्रेणिक को कुछ नहीं मिलने पर उसने अपने पौरुष का घोर अपमान समझा। इस अपमान की गरज से वह राजगृह से निकलकर घूमता-घूमता वेणातट नगरी में आया।[124] सोचा, इधर-उधर घूमने से तो कहीं काम की तलाश करनी चाहिए। इसी हेतु वह बाजार में गया। वहाँ भद्र नामक सेठ की दुकान पर पहुँच गया। उस दिन वेणातट नगर में एक विशाल महोत्सव का आयोजन था और बहुत-से ग्राहक दुकान पर अनेक वस्तुएँ लेने के लिए कतारबद्ध खड़े थे।

ग्राहकों की अत्यधिक भीड़ से परेशान सेठ को खिन्नता पैदा हो गई। श्रेणिक ने श्रेष्ठि की खिन्नता को देखा और अवसर का लाभ उठाने के लिए वह सेठ का हाथ बँटाने लगा। सेठ ने कुछ राहत महसूस की और उस दिन श्रेणिक की पुण्यवानी से दिन-भर प्रचुर द्रव्य उपार्जन किया। जब दुकान बंद करने का समय आया तो भद्र सेठ ने श्रेणिक से पूछा कि तुम किस पुण्यवान गृहस्थ के अतिथि बनकर आये हो? श्रेणिक कुमार ने कहा–मैं आपका अतिथि बनकर आया हूँ। तब भद्र सेठ ने चिंतन किया कि आज यामा में एक स्वप्न देखा था कि मेरी इकलौती पुत्री नंदा को योग्य वर मिल गया है। लगता है, वह आज साक्षात् आ गया है। ऐसा चिंतन कर श्रेष्ठि ने कहा–मैं तुम्हारे जैसे पुण्य पुरुष का सान्निध्य प्राप्त करके धन्य हो गया हूँ। चलो घर की ओर चलते हैं। यों कहकर श्रेष्ठि श्रेणिक को साथ लेकर घर की दिशा में प्रयाण करता है।

श्रेष्ठि के घर पहुँचने पर श्रेणिक का खूब सत्कार हुआ। उसे आदर सहित स्नानादि करवाया, उत्तम वस्त्र पहनाए और पूर्ण सम्मान के साथ उसे भोजन करवाया गया। उत्तम शयन कक्ष की व्यवस्था करवाई गई और आदर सहित वह श्रेणिक श्रेष्ठि के घर पर रहने लगा। समय व्यतीत होने पर एक दिन श्रेष्ठि ने श्रेणिक से कहा–तुम सुलक्षण, पुण्यवान पुरुष हो। मेरी हार्दिक तमन्ना है कि मैं अपनी पुत्री का हाथ तुम्हें सौंप दूँ।

श्रेणिक ने कहा–आपने अभी तक मेरे कुल को जाना नहीं। अनजान कुल वाले को पुत्री कैसे दे रहे हो?

श्रेष्ठि ने कहा–भद्र पुरुष ! तुम्हारे व्यवहार से ही तुम्हारे कुल का परिचय मिल गया है। तुम्हारे व्यवहार से मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मैं अपनी पुत्री तुम्हें ही दूँगा।

श्रेणिक मौन रहे। मौन को स्वीकृति मानकर श्रेष्ठि ने विवाह का मुहूर्त निकलवाया और बहुत धूमधाम से अपनी पुत्री का विवाह श्रेणिक के साथ सम्पन्न किया।

श्रेणिक का अभिषेक :

श्रेणिक अपनी नवोढ़ा[क] पत्नी नंदा के साथ भोगों में अनुरक्त रहने लगा। श्रेणिक वेणातट में, ससुराल में आनन्द से समययापन कर रहा है और इधर राजा प्रसेनजित को रोग ने घेर लिया। उसे अब लगा कि राज्य तो मुझे श्रेणिक को ही देना है, तब उसने श्रेणिक को खोजने के लिए अनेक सेवकों को चहुँ दिशाओं में भेजा। सेवक घूमते-घूमते वेणातट नगरी पहुँच गए और आखिरकार उन्होंने श्रेणिक को खोज लिया। श्रेणिक ने सेवकों को देखते ही पूछा—तुम यहाँ कैसे आये हो? तब सेवक बोले—आपके पिता प्रसेनजित व्याधि से ग्रस्त हैं। उन्होंने आपको बहुत याद किया है। वे अब आपके बिना एक दिन भी रहने में समर्थ नहीं हैं। तब श्रेणिक ने अपनी सगर्भा पत्नी नंदा को सारी बात समझाई और समझाकर वहाँ से निकला। निकलते समय दीवाल पर लिख दिया, मैं राजगृह नगर का गोपाल हूँ। यह लिखकर श्रेणिक रथ पर सवार होकर शीघ्रातिशीघ्र राजगृह पहुँच गया।

श्रेणिक को देखकर राजा प्रसेनजित अत्यन्त हर्षित हुआ। हर्ष के आँसुओं से आँखें छलछला आईं और अत्यन्त आह्लाद सहित राजा ने सुवर्ण कलशों से श्रेणिक का राज्याभिषेक किया। तत्पश्चात् राजा ने अपना अंतिम समय समीप जानकर नमस्कार मंत्र का स्मरण किया और चार शरण अंगीकार करते हुए मृत्यु को प्राप्त कर देवलोक की ओर प्रस्थान किया।

राजा श्रेणिक ने अपने पिता का विधिवत् अंतिम संस्कार कर दिया और न्याय-नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। इधर श्रेणिक राज्यश्री का उपभोग कर रहा है, उधर नंदा अपने पिता के यहाँ सुखपूर्वक गर्भ का निर्वहन कर रही है। यद्यपि पति अपने राज्य में चले गए, तथापि वह कर्तव्यपालन करती हुई संतान को सुसंस्कारित करने में लगी हुई है। सादगीसम्पन्न भोजन, वस्त्र एवं धार्मिक श्रेष्ठ पुस्तकों का स्वाध्याय करते हुए अपनी भावी संतान को बुद्धिमान बनाने हेतु निरत है। समय निरंतर गतिमान है। एक दिन नंदा को दोहद उत्पन्न होता है कि मैं हस्ती पर सवार होकर प्रचुर सम्पत्ति लुटा कर, अनेक प्राणियों का उपकार करके उन्हें अभयदान, जीवनदान दूँ। इस दोहद को अपने माता-पिता

(क) नवोढा–नवविवाहिता

से निवेदन करने में वह सलज्ज बन गई और दिन प्रति-दिन सूख-सूख काँटा बनने लगी। आखिर एक दिन माँ ने पूछा—क्या बात है? आजकल बड़ी उदास दिखाई देती हो? शरीर भी सूख रहा है। क्या कोई दोहद उत्पन्न हुआ है?

नंदा ने कहा—हाँ।

माँ ने पूछा—क्या दोहद उत्पन्न हुआ है? तब उसने अपना दोहद माँ को बताया। माँ ने भद्र सेठ से कहा। जब भद्र सेठ को पता लगा कि उसकी पुत्री नंदा को दोहद उत्पन्न हुआ है, तब उसने पुत्री के दोहद को पूर्ण करने के लिए राजा से निवेदन किया। राजा ने बड़ी उदारता से नंदा के दोहद को पूर्ण करने के लिए उसे हस्ती पर आरूढ़ करवाया और उसके हाथों मुक्त हस्त दान करवाया। दोहद पूर्ण होने पर नंदा गर्भ का सुन्दर रीति से निर्वहन करने लगी। 9 मास 7½ रात्रि पूर्ण होने पर नंदा ने एक सुन्दर सुकुमार पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम अभयकुमार रखा।

प्रज्ञापुण्ज अभयकुमार :

अभयकुमार मनोहर किलकारियाँ भरता हुआ, एक गोद से दूसरी गोद में जाता हुआ वृद्धिंगत होने लगा। अभयकुमार बालवय में ही अत्यंत बुद्धिशाली था। इसीलिए मात्र 8 वर्ष की आयु में ही वह 72 कलाओं में निष्णात बन गया। एक बार वह समवयस्क बालकों के साथ वार्तालाप कर रहा था। संयोग से एक बालक ने उसका तिरस्कार करते हुए कहा कि तू क्या बोल रहा है? अभी तक तेरे पिता के नाम का भी तुझे पता नहीं है। तब अभयकुमार के दिल को बंहुत बड़ी ठेस लगी। वह अपने घर आया और अपनी माँ से पूछा—मातुश्री, मेरे पिता का क्या नाम है?

नंदा ने कहा—भद्रसेठ।

अभयकुमार बोला—माताजी, भद्रसेठ तो आपके पिता हैं। मेरे पिता का नाम पूछ रहा हूँ।

माता ने कहा—किसी परदेशी ने आकर मुझसे विवाह किया था। मैंने उसका नाम नहीं पूछा। परन्तु हाँ, एक बार जब तू गर्भ में था तो एक ऊँट वाला आया और वह उन्हें ले गया।

अभयकुमार ने कहा—अच्छा, ये बताओ जब ऊँट वाला उन्हें ले गया तब उन्होंने तुम्हें क्या कहा?

नंदा ने कहा—मुझे यह कुछ लिखकर दे गए। अभयकुमार ने उस लिखित पत्र को माँगा। तब नंदा ने वह पत्र दे दिया। अभयकुमार ने उसे पढ़ा और

अत्यन्त खुश हआ। अपनी माँ से कहा–माताजी, मेरे पिता राजगृह नगर के राजा हैं। अपन भी वहाँ चलते हैं।

माँ ने कहा–नानाजी से पूछो, फिर चलेंगे।

अभयकुमार अपने नाना के पास गया और बोला–नानाजी, मैं अपनी माँ को पिता के पास ले जाना चाहता हूँ।

नाना ने पूछा–वत्स, तुम्हारे पिता कहाँ हैं?

अभयकुमार ने कहा–नानाजी, मैंने माँ के पास पिता द्वारा लिखित जो पत्र था उससे जान लिया कि मेरे पिता राजगृह के राजा हैं।

नानाजी ने अभयकुमार की प्रतिभा जानकर उसे जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। तब अभयकुमार अपनी माँ एवं सामग्री लेकर राजगृह की ओर रवाना हो गया। वह शनैः-शनैः चलते हुए राजगृह नगर पहुँचा और वहाँ जाकर उद्यान में अपना डेरा डाल दिया। उधर राजा श्रेणिक राजगृह नगर में श्रेष्ठ मंत्री की खोज में लगा है। वह चिंतन कर रहा है कि कोई विशिष्ट प्रज्ञासम्पन्न, प्रतिभापुञ्ज पुरुष ही इस विशिष्ट पद को सम्हाल सकता है। मेरा राज्य सुविस्तृत है। अतः राज्य की सुव्यवस्था के लिए 499 मंत्री व 1 महामंत्री बना देता हूँ। उसने अपनी योजनानुसार मंत्री पद के लिए 499 व्यक्ति चयनित कर लिए। अब उत्कृष्ट बुद्धिनिधान एक और व्यक्ति की खोज चल रही थी जो महामंत्री पद को सम्हाल सके। राजा श्रेणिक ने एक प्रयोग किया और खाली कुएँ में अपनी मुद्रिका डाल दी। उपस्थित व्यक्तियों से कहा–इस कुएँ में बाहर खड़ा रहकर जो पुरुष इस मुद्रिका को निकाल देगा उसे महामंत्री पद से सुशोभित किया जाएगा।

राजा की यह घोषणा सुनकर उपस्थित जनता कहने लगी–राजन् ! यह कार्य असंभव है।

उसी समय अभयकुमार वहाँ पर मुस्कराता हुआ आया और कहने लगा कि खाली कुएँ में से अंगूठी निकालना क्या मुश्किल काम है? यह श्रवण कर उपस्थित जनता आश्चर्यचकित हो अभयकुमार की ओर निहारने लगी। जनता ने समझ लिया कि यह व्यक्ति अतिशय बुद्धिमान है। तब लोगों ने कहा–आप अपने बुद्धिबल से यदि यह अंगूठी निकाल दें तो महाराजा आपको प्रधानमंत्री का पद दे देंगे।

यह सुनकर अभयकुमार मुस्कराया। उसने गीला गोबर कुएँ में डाला। वह गोबर अंगूठी पर गिरा, तब एक जलता हुआ तृण का पूला डाला, जिससे वह गोबर शीघ्र ही सूख गया। तब अभयकुमार ने उस कुएँ को पानी से भर दिया।

वह गोबर का कंडा तैरकर ऊपर आ गया। अभयकुमार ने उसे हाथ में ले लिया और उसमें से मुद्रिका निकाल ली। जैसे ही अभयकुमार ने मुद्रिका निकाली, वैसे ही राज्य कर्मचारियों ने यह सूचना महाराजा श्रेणिक को दी। राजा सूचना प्राप्त करके तुरन्त अभयकुमार के पास आए और उसका अत्यन्त स्नेह से पुत्रवत् आलिंगन किया। समालिंगन करने पर उसके प्रति राजा के हृदय में अपार हर्ष उमड़ पड़ा। तब राजा निर्निमेष उसका दिव्य दीदार निहारने लगे और पूछा–तुम कहाँ से आए हो?

अभयकुमार ने कहा–मैं वेणातट से आया हूँ।

राजा ने पूछा–उस नगर में सुभद्र नामक विख्यात सेठ और उसकी पुत्री नंदा रहती है। क्या तुम उसे जानते हो?

अभयकुमार ने कहा–हाँ।

राजा ने पूछा–वह नंदा कुछ वर्षों पूर्व सगर्भा थी क्या? तुम्हें पता है उसके क्या हुआ?

अभयकुमार ने कहा–उस नंदा के अभयकुमार नामक लड़का हुआ था।

राजा ने पूछा–वह लड़का कैसा है?

अभयकुमार ने कहा–राजन् ! वह तो आपके सामने खड़ा है। राजा ने बड़े प्रेम से उसे अपनी गोद में बिठाया और पूछा कि तुम्हारी माँ नंदा कहाँ है?

अभयकुमार ने कहा कि मेरी माँ नंदा इस नगर के बाहर उद्यान में है।

यह सुनकर आनन्दनिमग्न होकर राजा श्रेणिक अभयकुमार को पहले उद्यान में भेज देता है और बाद में स्वयं नंदा महारानी को राजमहल में लाने के लिए उद्यान में जाता है। राजा नंदा को देखता है और चिंतन करता है कि विरह में नंदा का शरीर सूखकर कृशकाय हो गया है। मलिन वस्त्र में लिपटी चन्द्रवदना महारानी शिथिल गात्र वाली, दीन मुख वाली दृष्टिगोचर हो रही है। राजा स्वयं उसके पास पहुँचता है और ससम्मान उसे राजमहल में लाता है। अतीव सत्कार-सम्मान सहित वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर नंदा को पटरानी की पदवी देते हैं और शुभमुहूर्त में धूमधाम से अभयकुमार का अपनी बहिन की पुत्री सुसेना के साथ विवाह कर देते हैं। तत्पश्चात् अभयकुमार को प्रधानमंत्री का पद देते हैं। अभयकुमार अपनी विलक्षण प्रज्ञा से अनेक दुःसाध्य राजाओं को जीतता हुआ, राज्यश्री का उपभोग करता हुआ दुःसाध्य समस्याओं का चुटकी में हल निकाल देता है। इस प्रकार अभय की प्रज्ञा से राजगृह नगर की राज्य-व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही है।[125]

प्रणय सुज्येष्ठा का हरण चेलना का :

अनेक परदेशी देश-विदेश की सूचनाएँ लेकर समय-समय पर राजगृह नगर पहुँचते रहते हैं। एक बार एक तापसी वैशाली नगर से क्षुब्ध होकर राजगृह पहुँचती है। तापसी के क्षुब्ध होने का कारण यह बना कि तापसी शौचमूलक धर्म[क] का प्रतिपालन करने वाली थी और इसी धर्म का प्रतिपादन करने के लिए वह वैशाली गई थी। वैशाली उस समय की अत्यन्त समृद्धिशाली प्रसिद्ध नगरी थी, जहाँ का राजा चेटक शत्रु राजाओं को भी सेवक बनाने वाला था। उसकी पृथा नामक महारानी थी। राजा चेटक व पृथा, दोनों जिनधर्म के प्रति दृढ़ निष्ठावान थे। राजा चेटक स्वयं बारह व्रतधारी श्रावक था। महारानी पृथा ने अवसर आने पर क्रमशः सात पुत्रियों को जन्म दिया और उन्हें जिनधर्म के प्रति अत्यन्त गहरे संस्कार देकर उनकी अस्थि-मज्जाओं में धर्मानुराग भर दिया।

यौवन की दहलीज पर कदम रखते ही पाँच पुत्रियों को योग्य वरों के सुपर्द कर दिया। वीतिभय के राजा उदयन को प्रभावती, चम्पा के राजा दधिवाहन को पद्मावती, कौशाम्बी के राजा शतानीक को मृगावती, उज्जयिनी के राजा प्रद्योतन को शिवा और कुंडग्राम के अधिपति नंदीवर्धन, जो प्रभु महावीर के ज्येष्ठ भ्राता थे, उनको ज्येष्ठा को सुपर्द कर दिया।

राजा चेटक की सात पुत्रियों में से दो पुत्रियाँ कुँवारी रह गईं–सुज्येष्ठा व चेलना। इन दोनों भगिनियों में आपसी प्रेम अगाध था। दोनों बहनें पुनर्वसु के दो तारों की तरह निरन्तर साथ-साथ रहती थीं। दोनों की धार्मिक रुचि अत्यन्त सराहनीय थी। दोनों बहनें कन्या अन्तःपुर में निरन्तर स्वाध्याय आदि में लीन रहती थी। वह तापसी वैशाली में आकर एक बार कन्या अन्तःपुर में गई और उसने सोचा कि इन कन्याओं को कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसलिए इनको शौचमूलक धर्म तत्त्व के बारे में ज्ञान देना चाहिए। यही सोचकर उसने वहाँ प्रवचन देना शुरू किया कि शारीरिक शुद्धि ही मात्र धर्म रूप है। बाकी सब अधर्म है। तब सुज्येष्ठा ने कहा कि यह तो आश्रव का द्वार है, कर्मबंध का कारण है। वह धर्म कैसे हो सकता है? सुज्येष्ठा ने अनेक प्रमाण देकर तापसी के उस शौचमूलक धर्म का खण्डन कर दिया और कहा कि शरीरशुद्धि में ही धर्म होता तो फिर मेढ़क व मछली तो दिन-भर पानी में रहते हैं, वे सबसे ज्यादा धर्मात्मा होते ! इस तरह जब तापसी निरुत्तर हो गई तो उसकी दासियाँ तापसी को देख-देखकर हँसने लगीं और उन्होंने उस तापसी को कन्या अन्तःपुर से बाहर निकाल दिया।

(क) शौचमूलक धर्म–वाह्य शुद्धिमूलक धर्म

इससे तापसी क्षुब्ध हो गई और उसे क्रोध आया कि इस सुज्येष्ठा को बहुत अहंकार है, इसलिए इसका विवाह वहाँ करवाना चाहिए जहाँ एक राजा के अनेक पत्नियाँ हों, तो वह स्वयमेव वहाँ दुःखी बन जाएगी।

क्रोधावेश में व्यक्ति दूसरों को दुःख देने की बात सोच लेता है, लेकिन आज तक कौन किसको सुख-दुःख दे पाया है? सुख-दुःख तो कर्माधीन हैं। लेकिन तापसी का सुज्येष्ठा से वैर जागृत हो गया और उसने पिण्डस्थ ध्यान के माध्यम से सुज्येष्ठा का रूप मन में उतार लिया और समय आने पर उसको एक चित्र का रूप दे दिया। चित्र अत्यन्त सजीव बन गया। उसी चित्र को लेकर तापसी राजगृह नगर गई और वहाँ जाकर राजा श्रेणिक को कहा–राजन्! आपके लिए मैं बहुत सुन्दर कन्या का चित्र लाई हूँ जो आपके अन्तःपुर में शोभित हो सकती है। राजा ने कहा–बताओ।

तब तापसी ने वह चित्र बताया। चित्र देखते ही राजा मंत्रमुग्ध हो गया। वह भान भूल गया और बोलने लगा–अहा ! इस बाला का कितना मनोहर रूप है। मयूर का आकर्षक रूप भी इसके आगे फीका नजर आ रहा है। अहा ! इस मनोहर मुख को देखकर मैं मधुकर बन गया हूँ। इतना प्रियकारी, कमनीय व मंत्रमुग्ध करने वाला इसका सुकोमल गात्र मुझे बरबस आकृष्ट कर रहा है। अंग-प्रत्यंगों से फूटने वाला यौवन उषा की भाँति मन में आह्लाद पैदा कर रहा है। इस मृगनयनी के कमनीय कटाक्ष अद्वैत शौर्य के प्रतीक हैं। पर यह बताओ कि यह परमसुन्दरी है कौन? यह चित्र काल्पनिक है या किसी वास्तविक कन्या का है?

इस पर तापसी ने कहा–जैसी अद्वितीय सुन्दरी वह कन्या है, उसका सौवां अंश भी यह चित्र बन नहीं पाया है।

ओह ! इतनी सुन्दरी ! इतना कहते-कहते राजा का मन काम-विह्वल हो गया। कामार्त व्यक्ति भान भूल जाता है।[xxxix] वह जड़ को भी चेतन समझने लगता है। राजा ने भी सुज्येष्ठा के चित्र को सुज्येष्ठा समझ लिया और पूछता है कि सुन्दरी ! तुम कौन हो? जब जवाब नहीं मिलता है तो होश आता है। अरे! यह तो चित्र है। तत्पश्चात् सम्हलकर तापसी से पूछता है कि यह कमलिनी संस्पर्श सहित है या रहित? यह कौन देश को अलंकृत कर रही है?

तापसी बोली–राजन् ! यह वैशाली के अधिपति हैहयवंश में उत्पन्न राजा चेटक की पुत्री सुज्येष्ठा है।[126] यह सब कन्याओं में निपुण है व आप द्वारा वरण करने योग्य है।

राजा श्रेणिक ने यह सब सुनकर उस तापसी को बहुत धन्यवाद दिया व

ससम्मान विदा किया व खुद इसी चिंतन में डूब गया कि मुझे सुज्येष्ठा से विवाह करना है। दूसरे दिन राजगृह के अधिपति श्रेणिक ने एक दूत वैशाली के लिए भेजा। वह दूत वैशाली गया व राजा चेटक से कहा–राजन् ! मैं मगध से आया हूँ। आपकी सुयोग्य कन्या सुज्येष्ठा से राजा श्रेणिक विवाह करना चाहते हैं।

राजा चेटक ने कहा–क्या तुम्हारा स्वामी अनजान है? वह स्वयं वाही कुल में उत्पन्न है और हैहयवंश में उत्पन्न कन्या की इच्छा रखता है ! समान कुल की कन्या के साथ विवाह करना चाहिए।[127] इसलिए मैं श्रेणिक को अपनी पुत्री नहीं दे सकता हूँ। यह सुनकर दूत वहाँ से चला गया। राजगृह जाकर उसने सारी वार्ता राजा से यथावत् कह डाली। वार्ता सुनकर राजा को अत्यन्त विह्वलता की अनुभूति हुई। विरह में उसका वदन म्लान होने लगा। संयोग से उसी समय अभयकुमार वहाँ पर पहुँचा और उसने पिताश्री को पूछा कि आप शोकाकुल क्यों हैं? श्रेणिक ने कहा–वत्स ! मैंने वैशाली की राजकुमारी सुज्येष्ठा का चित्रपट देखा जिसे देख मेरा मन उसे पाने हेतु लालायित बन गया। मैंने चेटक राजा से मंगनी की, लेकिन उसने अपनी कन्या देने से इनकार कर दिया। अतः मैं कामविह्वल हूँ।

अभयकुमार ने कहा–मैं आपकी इच्छा पूर्ण करने का प्रयास करूँगा।

तब राजा आश्वस्त हो गया। तत्पश्चात् अभयकुमार पिताश्री की कामनापूर्ति के लिए मगध सम्राट् श्रेणिक का चित्रपट बनाता है और इस चित्रपट को लेकर वैशाली जाता है। वहाँ जाकर कन्या अन्तःपुर के पास एक दुकान किराए पर ले लेता है और उसमें पिता का चित्र लगाता है। दुकान में अन्तःपुर की दासियों की जरूरत का सामान रख लेता है। नवीन वस्तुओं के प्रति नारियों का सहज आकर्षण होता है। जब दासियाँ सामान खरीदने आती हैं तो अभय उन्हें कम मूल्य में सामान दे देता है। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती जाती है। एक दिन अभयकुमार दासियों को आते हुए देखकर अपने पिता के चित्र को प्रणाम करता है। तब दासियों ने पूछ ही लिया कि जिनको तुम प्रणाम करते हो वो आखिर हैं कौन? तब अभय ने कहा–ये राजा श्रेणिक हैं जो मेरे लिए देवतुल्य हैं। अभयकुमार के ऐसा कहने पर दासियों ने उस चित्र को गौर से देखा और अन्तःपुर में जाकर सुज्येष्ठा को बतलाया कि एक नई दुकान में एक राजा का बहुत सुन्दर चित्र लगा है। वह तो तुम्हारे पति बनने योग्य हैं। यह सुनकर सुज्येष्ठा कामविह्वल हो गई। आँखों में ख्वाबों की तरह उस चित्र को देखने की तमन्ना तैरने लगी और वह अंतरंग दासी से बोली–सखी ! तुम्हें वह चित्र यहाँ लाकर मुझे दिखलाना ही होगा।

दासी ने कहा–स्वामिनी ! अभी जाती हूँ। यों कहकर वह अभयकुमार की

दुकान पर गई और निवेदन किया—कुमार ! आज मैं तुमसे कुछ याचना करने आई हूँ।

अभयकुमार बोला—कहो, क्या कहना चाहती हो?

दासी (अत्यन्त मधुर स्वर में)—वह चित्रपट, जो मन को मंत्रमुग्ध बना रहा है।

कुमार ने पूछा—किसको दिखाना चाहती हो?

दासी—राजकुमारी सुज्येष्ठा को।

कुमार बोला—अच्छा ले जाओ, लेकिन वापस सुरक्षित ले आना। दासी—हाँ, कुमार ऐसा ही होगा। यों कहकर दासी ने अत्यन्त गोपनीयता से चित्रपट लाकर सुज्येष्ठा को दे दिया। सुज्येष्ठा उस चित्र को देखते ही उसमें निमज्जित हो डुबकियाँ लगाने लगी। होश सम्हाल कर अपनी सखी से बोली कि यह पुरुष मेरे हृदय का सम्राट् बन गया है। इसको मैं अपना सर्वस्व अर्पण करना चाहती हूँ। अतः तुम ऐसा उपाय करो जिससे कि मैं इस युवक को अपना स्वामी बना सकूँ। सखी ! तुझे वणिक् को प्रसन्न करके मेरा यह कार्य करना ही होगा।

दासी ने कहा—धैर्य धरो स्वामिनी। अभी जाती हूँ।

यों कहकर दासी चित्र लेकर पुनः दुकान पर गई और कुमार से बोली—कुमार! मेरी सखी सुज्येष्ठा अपने दिल में सम्राट् श्रेणिक को सर्वस्व मान चुकी है। वह श्रेणिक के बिना पल-पल विरहाग्नि में जल रही है। उसे अपना जीवनसाथी श्रेणिक कैसे मिले, उसका यह मनोरथ आपको पूर्ण करना होगा।

अभयकुमार बोला—मैं थोड़े समय बाद तुम्हारी सखी का मनोरथ पूर्ण करने का प्रयास करूँगा।

दासी बोली—थोड़े समय बाद........... इतने में तो वह विरहिणी सूखकर काँटा हो जाएगी। अरे तुम जल्दी करो।

अभयकुमार ने कहा—मैं यहाँ से श्रेणिक के महल तक की सुरंग खुदवाता हूँ और यह कार्य शीघ्र पूर्ण करने का प्रयास करता हूँ।

दासी ने कहा—ठीक है।

यों कहकर दासी चली जाती है और सारी बात सुज्येष्ठा से जाकर कहती है। सुज्येष्ठा दासी से कहती है—तुम उस युवक से कहो, बहुत जल्दी करना। मैं परिपूर्ण तैयार हूँ। दासी अभयकुमार के पास जाती है और कहती है कि कुमार ! जल्दी करना, क्योंकि विरह का एक पल भी बड़ा असह्य होता है। कुमार बतला देता है कि अमुक दिन श्रेणिक सुरंग में रथ लेकर आएंगे। तब तुम्हारी स्वामिनी से कहना, तैयार रहना।

दासी ने कहा—ठीक है। सारी बात पक्की हो जाती है।

इधर अभयकुमार सुरंग खुदवाने का कार्य शुरू कर देते हैं। सुज्येष्ठा निरन्तर इंतजार करती है। पल-पल निकलना भारी है। दिन तो जैसे-तैसे निकल जाता है, पर रात्रि.......... वह करवटें बदल-बदल कर थक जाती है, लेकिन विरह........... वह तो विरह ही है। आखिर इंतजार करते-करते वह दिन भी आ जाता है जब मगध[XL] सम्राट श्रेणिक रथ लेकर सुरंग मार्ग से सुलसा के बत्तीस पुत्रों के साथ उपस्थित हो जाता है। जब सुरंग के दूसरे द्वार पर श्रेणिक आया तो उसने सुज्येष्ठा को सुरंग द्वार पर खड़े-खड़े ही देख लिया व हर्षित हुआ कि अहो ! जिसे मैंने पहले चित्र में देखा था आज साक्षात् अप्सरा मेरे सामने खड़ी है। इधर सुज्येष्ठा ने भी देखा.......... श्रेणिक आ गए हैं, वह सम्मिलन को उद्यत हुई।

मन मृग की भाँति कुलांचें भर रहा है। कदमों में नवस्फूर्ति का संचार हो रहा है। नयनों में अभिनव मूरत समाहित हो रही है। लेकिन जाने से पहले चिंतन आता है। हाय ! इतने दिन मैंने चेलना से कुछ नहीं कहा। वह मेरी कनिष्ठ भगिनी धूप-छाँव की तरह सदैव मेरे साथ रहने वाली है। उसको तो बताऊँ........... जल्दी से चेलना के पास जाती है और कहती है– बहिन ! मैं जा रही हूँ।

चेलना—(आश्चर्यचकित-सी) कहाँ?

सुज्येष्ठा—राजा श्रेणिक के साथ।

चेलना—श्रेणिक?

सुज्येष्ठा—हाँ, राजगृह के सम्राट् श्रेणिक को मैं हृदय-सम्राट् के रूप में वरण कर चुकी हूँ।

चेलना—श्रेणिक कहाँ है?

सुज्येष्ठा—सुरंग द्वार पर खड़े मेरा इंतजार कर रहे हैं।

चेलना—सुरंग द्वार पर? क्या तुमने जाने की पूर्ण तैयारी कर ली?

सुज्येष्ठा—हाँ, अब तुम्हें क्या करना है, जल्दी बोलो।

चेलना—मैं तुम्हारे बिना कैसे रह पाऊँगी....... मैं भी चलती हूँ साथ में।

सुज्येष्ठा—जल्दी कर, तू रथ में बैठ, मैं रत्नों का पिटारा लेकर आती हूँ।

चेलना रथ में बैठ गयी। सुज्येष्ठा गहनों का डिब्बा लेने गयी।

तभी सुलसा के बत्तीस पुत्र, जो श्रेणिक के अंगरक्षक थे वे आये और बोले—महाराज, जल्दी करो, शत्रु सेना हमला बोल सकती है।

चोर के पाँव कच्चे होते हैं, इसलिए श्रेणिक चेलना को लिए रथ रवाना कर देता है।[128]

सुज्येष्ठा रत्नों का डिब्बा लेकर सुरंग-द्वार तक पहुँचती है, लेकिन रथ जा चुका था.......... मनोरथ मिट्टी में मिल गया.......... बहिन चली गयी .... वह एकाकी रह गयी..........

जोर-जोर से रोने लगी। अन्तःपुर में हलचल मच गयी। राजा चेटक को पता चला कि उसकी पुत्री रुदन मचा रही है। वह वहाँ आया और पूछा—क्या बात है, बेटी?

सुज्येष्ठा ने बतलाया कि राजगृह के सम्राट् श्रेणिक ने चेलना का हरण कर लिया।

चेटक—हरण? कैसे किया?

सुज्येष्ठा—सुरंग-द्वार से।

चेटक—अभी जाता हूँ युद्ध करने। चेटक सुरंग-द्वार से जाने लगा जितने में उसको वीरांगक नामक वीर सैनिक मिला। उसने चेटक से पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं?

चेटक—युद्ध करने।

वीरांगक—युद्ध करने? किससे युद्ध करने?

चेटक—श्रेणिक से, जो सुरंग-द्वार से चेलना का हरण कर ले जा रहा है।

वीरांगक—इसके लिए मैं स्वयं जाता हूँ। आप निश्चिंत रहिए।

वीरांगक तुरन्त सुरंग द्वार से युद्ध करने जा रहा है। तीव्र गति से रथ चल रहा है। घोड़ों की टापों से वातावरण में धूलि[XLI] व्याप्त हो रही है। पवन वेग से घोड़े निरन्तर दौड़ रहे हैं। दौड़ते-दौड़ते रथ, सुलसा के बत्तीस पुत्र जो अंगरक्षक थे, वहाँ पहुँचा। शत्रु अंगरक्षकों को देखते ही वीरांगक का खून खौलने लगा। एक तीर निकाला कमान से और ऐसी वीरता से उसे छोड़ा कि एक ही तीर से बत्तीस अंगरक्षकों को धराशाही कर दिया। धरती लाशों से पट गयी। रथ निकलने का स्थान तक नहीं रहा। वीरांगक ने उन शवों को एक तरफ किया और रथ निकालने की जगह बनाई। इतने में श्रेणिक वहाँ से भाग गया, सुरंग पार कर ली।

वीरांगक ने रथ लौटा लिया और पूरा वृत्तान्त राजा चेटक को सुनाया। चेटक को गलती का प्रतिकार होने से तोष और पुत्री-हरण पर रोष था। लेकिन

चिंतन किया कि होनहार बलवान है। अब तो चेलना ने श्रेणिक का वरण कर ही लिया तो रोष करने से क्या लाभ? चेटक संतोष धर लेता है।

लेकिन सुज्येष्ठा ! वह सब वृत्तान्त श्रवण कर रही थी। श्रवण करते-करते विकारी मन वैरागी बन गया। सोचने लगी–ओह ! मैंने कितना कपट जाल रचा। स्वयं मैंने श्रेणिक को आमंत्रण भिजवाया और उसको एक पल निहारने के लिए कितने-कितने अरमान सँजोए। सुरंग-द्वार से मेरे ही लिए श्रेणिक आया. .... मात्र मेरे लिए........... परन्तु मैंने चेलना को भेज दिया और मैं रत्नों में, आभूषणों में उलझी रही........... श्रेणिक ने आत्मरक्षा के लिए चेलना के बैठने पर रथ मोड़ लिया। मैं श्रेणिक को प्राप्त नहीं कर सकी........... तो मैंने........... उलटी चाल चली। हाय ! श्रेणिक को बदनाम करने का प्रयास किया........... मेरे कारण बत्तीस वीर अंगरक्षक मारे गये........... अरे ! मेरी वासना की आग ने कितने जीवों की हत्या कर डाली। वासना........... अंधी होती है। वासना........... विवेक-विकल होती है। वासना .... चेतना को आवरित कर देती है। वासना........... अपने जाल में फँसाकर जीवन के समस्त सद्‌गुणों को धो डालती है।

इसी वासना-कामना के पाश में जकड़कर मैंने कितना जघन्य अपराध कर लिया। श्रेणिक भी नहीं मिला और युद्ध का कारण मैं बनी। माँ की गोद से लालों का हरण कर लिया। स्त्रियों की माँग का सिन्दूर पोंछ दिया। घर में दुःख की ज्वाला प्रज्वलित कर दी। अब मेरा क्या होगा........... इतने पापों का पिटारा मैंने बाँध लिया है। धिक्कार है मुझे ! मेरी वासना को बारम्बार धिक्कार है। अब संसार नहीं, संयम चाहिए। राग नहीं, विराग में जीना है। सुज्येष्ठा का कामासक्त मन वैराग्य में परिवर्तित हो गया और वह अपने पिता चेटक से बोली–पिताश्री ! मेरा मन संसार से विरक्त बन गया है। मैं भगवान् महावीर की सन्निधि में संयम लेकर अपना जीवन सफल करना चाहती हूँ।

पिता ने सुज्येष्ठा के वैराग्य को दृष्टिगत कर उसे संयम लेने की आज्ञा प्रदान कर दी। सुज्येष्ठा भगवान् महावीर के चरणों में पहुँची और उसने भगवान् की धर्मदेशना श्रवण कर प्रभु के मुखारविन्द से संयम अंगीकार कर लिया। संयम ग्रहण करके आर्या चन्दनबालाजी की सन्निधि में संयम-तप से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगी।

सुज्येष्ठा तो साध्वी बन गई।[129] इधर चेलना रथ में श्रेणिक के साथ एकाकी बैठी लज्जा का अनुभव कर रही थी। इतने दिन तक कन्या अन्तःपुर में उसने किसी अनजान पुरुष से बातचीत भी नहीं की और आज भगिनी के प्रेम से रथ में बैठ गयी। क्या विधि की विडम्बना हैं? जिस बहन ने श्रेणिक को हृदय-सम्राट्

मिलती। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि श्रेणिक के बौद्ध होने की अनुश्रुति हेमचन्द्राचार्य के बाद की अर्थात् बारहवीं शताब्दी के बाद की है।

इतिहास लेखकों का यह अभिमत है कि श्रेणिक वस्तुतः जन्मजात जैन था, किन्तु बीच के काल में उसका जैन मुनियों से सम्पर्क रह नहीं पाया।[147] कालान्तर में मण्डिकुक्षि उद्यान में उसका अनाथी मुनि से सम्पर्क हुआ। इसी सम्पर्क से वह श्रमण-धर्म के प्रति अनुरक्त हो गया।

श्रमण-धर्म में श्रेणिक की अनुरक्ति होने पर वह चेलना आदि महारानियों से इस सम्बन्ध में चर्चा करता रहता था। उसके मन में ललक भी पैदा होती थी कि राजगृह में कोई श्रमण भगवान् आये तो मैं उनकी उपासना करूँ। जब उसे राजगृह के आस-पास भगवान् महावीर के विचरण का पता चला तब से उसके मन में भगवान् महावीर के दर्शनों की ललक पैदा हो गयी। अपनी इसी अभिलाषा को दिल में संजोये एक दिन स्नानादि करके, वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर कोरण्ट पुष्पों की माला युक्त छत्र धारण करके सभा स्थान में पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठा और अपने प्रमुख अधिकारियों को बुलाकर आदेश दिया–देवानुप्रियों ! राजगृह के बाहर जहाँ लतागृह, उद्यान, शिल्पशालाएँ और दर्भ के कारखाने हैं, वहाँ जो अधिकारी वर्ग है उन्हें कहो–हे देवानुप्रियों ! श्रेणिक राजा भंभसार ने यह आज्ञा दी है कि पंचयाम धर्म के प्रवर्तक, चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए यहाँ पधारें तब तुम उन्हें उपयुक्त स्थान पर ठहरने की आज्ञा देना और यह प्रिय संवाद मुझ तक पहुँचाना।

इस संवाद से अनुमान लगता है कि इससे पहले राजा श्रेणिक का अनाथी मुनि से सम्पर्क हो गया था इसलिए उसकी श्रद्धा मजबूत बन गयी।

राज्याधिकारी पुरुष श्रेणिक राजा का कथन श्रवण कर हर्षित हुए संतुष्टित होते हैं। वे अत्यन्त सौम्य भाव व हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हृदय से हाथ जोड़कर विनयपूर्वक राजाज्ञा को स्वीकार करते हैं।

तत्पश्चात् वे राजप्रासाद से निकलकर बगीचे आदि में पहुँचकर वहाँ के अधिकारियों को राजा श्रेणिक का आदेश सुनाते हैं और पुनः अपने-अपने स्थान पर लौट कर राजा से सब बात निवेदन करते हैं। राजा श्रेणिक भगवान् के आगमन का इतंजार कर रहा है। वह पलक-पाँवड़े बिछाकर प्रभु की बाट देख रहा है, तब कुछ समय पश्चात् पंचयाम[क] धर्म के प्रवर्तक भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गुणशील उद्यान में पधारते हैं। तब राजगृह नगर के तिराहों,

(क) पंचयाम–पाँच महाव्रत–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह

चौराहों और राजमार्गों में कोलाहल होने लगा कि भगवान् महावीर गुणशील चैत्य[LXII] (उद्यान) में पधार गये हैं और लोगों के समूह के समूह भगवान् की पर्युपासना करने के लिए जाने लगे। उस कोलाहल से राजा श्रेणिक के अधिकारियों को इस वार्ता का पता लगा, तब वे श्रमण भगवान् महावीर के पास पहुँचे, उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार वंदन-नमस्कार किया और उनका नाम, गोत्र पूछा, स्मृति में धारण किया। तत्पश्चात् सभी एकत्रित होकर एकांत स्थान में गये और वहाँ आपस में बातचीत करने लगे कि–

"हे देवानुप्रियों ! श्रेणिक राजा भंभसार जिनके दर्शन के लिए पलक-पाँवड़े बिछाये हैं, जिनका नाम-गोत्र श्रवण करने मात्र से श्रेणिक राजा हर्षित हृदय वाला हो जाता है, वे भगवान् महावीर गुणशील उद्यान में विराज रहे हैं। अतः राजा को जाकर ये समाचार कहने चाहिए।" सभी इस बात पर सहमत हो गये।

तब वे राजा श्रेणिक के राजमहल में आये और हाथ जोड़कर, विनयपूर्वक कहने लगे–महाराज की जय हो ! हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शनों के लिये लालायित रहते हैं वे भगवान् महावीर गुणशील उद्यान में विराज रहे हैं।

जैसे ही राजा श्रेणिक ने यह संवाद सुना, वह अत्यन्त हर्षित होकर, अपने सिंहासन से उठा और वहीं से भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। तब उन अधिकारी पुरुषों का सत्कार-सम्मान कर उन्हें जीविका योग्य विपुल दान देकर विदा किया। तत्पश्चात् नगर रक्षक को बुलाकर कहा–देवानुप्रिय ! राजगृह नगर को अन्दर और बाहर से स्वच्छ और परिमार्जित करो। उसके बाद सेनापति को बुलाकर कहा कि हाथी, घोड़े, रथ और पदाति[क] योद्धागण–इन चार प्रकार की सेना को सुसज्जित करो।

तत्पश्चात् यानशाला के अधिकारी को बुलाकर कहा कि देवानुप्रिय ! श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार करके उसे यहाँ उपस्थित करो।

राजाज्ञा को प्राप्त कर सब अपने-अपने कार्य में लग गये। यानशाला का प्रबंधक यानशाला में आया। उसने रथ को नीचे उतारा, उस पर ढके वस्त्र को दूर किया, झाड़-पोंछ कर रथ को स्वच्छ बनाया और सुसज्जित किया। फिर वाहनशाला में आकर उत्तम बैलों का प्रमार्जन कर उनकी पीठ पर बार-बार हाथ फेरकर उनके स्कन्ध पर ढके हुए वस्त्रों को दूर कर अलंकृत किया और आभूषणों से उनके शरीर को सजाया। फिर उन बैलों को रथ में जोड़कर चाबुक हाथ में लिए सारथि के साथ रथ में बैठकर श्रेणिक राजा के पास रथ को उपस्थित किया और निवेदन किया–स्वामिन् ! आपके लिए धार्मिक रथ तैयार है, आप इस पर बैठें।

(क) पदाति–पैदल

कर्णप्रिय मनभावन शब्द श्रवण कर श्रेणिक राजा हर्षित एवं संतुष्टित होता हुआ स्नान कर, बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत एवं सुशोभित होकर चेलना महारानी के समीप आकर उसे कहता है–देवानुप्रिये ! पंचयाम धर्म के प्रवर्तक श्रमण भगवान् महावीर तप, संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए गुणशील[LXIII] चैत्य में विराज रहे हैं। ऐसे महान् पुरुषों का नाम-गोत्र श्रवण करने से महान् फल की समुपलब्धि होती है, तब उनके दर्शन, वंदन, पर्युपासना, धर्म-श्रवण और विपुल अर्थ ग्रहण करने से तो निश्चय ही महान् फल होता ही है। अतएव अपन भी गुणशील चैत्य में चलकर प्रभु को वंदन, नमन, सत्कार-सम्मान करते हुए पर्युपासना करें, जो इस भव और परभव में हितकर, सुखकर, क्षेमकर, मोक्षप्रद और भव-भवान्तर में पथ-दर्शक होगी।

महारानी चेलना अत्यन्त हर्षित, प्रमुदित और विनय भाव से नरेश के वचनों को स्वीकार कर वस्त्रालंकार से सुशोभित होकर बाह्य सभा स्थान में महाराजा श्रेणिक के समीप अतिशीघ्र पहुँच गयी।

तब चेलना एवं श्रेणिक श्रेष्ठ, धार्मिक एक ही रथ में बैठकर गुणशील उद्यान में पहुँचे और समवसरण में विराजमान प्रभु की पर्युपासना करने लगे।

वैराग्य से विकार की ओर :

चेलना एवं श्रेणिक की सौन्दर्य छटा का दिग्दर्शन कर श्रमण निर्ग्रन्थों एवं निर्ग्रन्थिनों का वैरागी मन भी विकारी बन गया। वे भगवान् महावीर के धर्ममार्ग को विस्मृत-सा करते हुए श्रेणिक और चेलना के शारीरिक सौन्दर्य से समाकृष्ट बने हुए भोगाभिलाषी बन गये। उस समय निर्ग्रन्थों के मन में इस प्रकार के भाव पैदा होने लगे –

अहो ! श्रेणिक राजर्षि विशाल ऋद्धि के स्वामी हैं। सम्पूर्ण राजगृह नगर उनकी एक आवाज पर सर्वस्व समर्पण करने को तैयार है। उनका राजसी सुख वर्णनातीत है। अंतःपुर में एक से एक रूप और सौन्दर्य की साक्षात् देवियाँ, उनकी महारानियाँ, अप्सराओं जैसी प्रतीत होती हैं। यह महारानी चेलना के साथ में सर्वालंकारों से विभूषित ऐसे लगते हैं मानो साक्षात् ऋद्धिशाली देव और देवी ही भूमि पर अवतरित हुए हैं। अतएव हमारे चारित्र, तप, नियम, ब्रह्मचर्यपालन और त्रिगुप्ति की सम्यक् आराधना का विशिष्ट फल हो तो हम भी भविष्य में श्रेणिक की तरह अभिलषित भोग भोगें।

निर्ग्रन्थिनें भी चिंतन करने लगी – अहो चेलना महारानी ! महान् ऋद्धिवाली,

महापुण्यवान नारी रत्न है, जिसको महाराजा श्रेणिक का सहवास मिला, वस्त्रालंकारों से सुसज्जित साक्षात् देवी के समान यह राजा श्रेणिक के साथ उत्तम मानुषिक भोगों को भोग रही है। यदि हमारे चारित्र, तप, नियम और ब्रह्मचर्य पालना का कुछ विशिष्ट फल हो तो हम भी भविष्य में चेलना की तरह मानुषिक भोग भोगें तो श्रेष्ठ होगा।

इस प्रकार भगवान् की सन्निधि में समवसरण में बैठे हुए ही कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनें मन में संकल्प (निदान) कर रहे हैं। महाराजा श्रेणिक और महारानी चेलना अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं।[148] अभयकुमार भी वहाँ धर्म-श्रवण को उपस्थित हो जाता है और मेघकुमार महल के झरोखे में बैठा देख रहा है कि लोग झुण्ड के झुण्ड बनाकर एक ही दिशा में गमन कर रहे हैं। उसने चिंतन किया कि आज क्यों इतने व्यक्ति एक ही दिशा में जा रहे हैं? उसे स्वयं समाधान नहीं मिला तब उसने कंचुकी पुरुष को बुलाया और उससे पूछा—देवानुप्रिय ! क्या आज राजगृह नगर में इन्द्र-महोत्सव[LXIV], स्कन्द महोत्सव[LXV], रुद्र, शिव, वैश्रमण (कुबेर), नाग, यक्ष, भूत, नदी, तडाग, वृक्ष, चैत्य, पर्वत, उद्यान या गिरि की यात्रा है[149], जिससे बहुत-से उग्र या भोग कुल के लोग एक ही दिशा में गमन कर रहे हैं?

कंचुकी[क] पुरुष—देवानुप्रिय ! आज राजगृह नगर में इन्द्र महोत्सव यावत् गिरियात्रा नहीं है, लेकिन धर्मतीर्थ के संस्थापक भगवान् महावीर समवसृत हुए हैं। वे गुणशील चैत्य में विराज रहे हैं, इसलिए उग्रवंशी[ख], भोगवंशी[ग] बहुत-से लोग उधर जा रहे हैं।

मेघकुमार यह संवाद श्रवणकर अत्यन्त हर्षित एवं प्रमुदित होता है। वह कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर चार घंटा वाले अश्व रथ को तैयार करवाता है। तत्पश्चात् स्नानादि करके सर्वालंकारों से विभूषित कोरंट की माला युक्त छत्र धारण कर, विपुल सुभट समुदाय सहित गुणशील चैत्य के पास आता है। वहाँ भगवान् के छत्रादि अतिशय देखकर तथा [150]जंभृक[LXVI] एवं [151]विद्याधरों[घ][LXVII] को नीचे उतरते, ऊपर चढ़ते देखकर रथ से नीचे उतरता है। समवसरण में पाँच अभिगम सहित प्रवेश करके प्रभु की पर्युपासना करने लगता है।

(क) कंचुकी-अंतःपुर का रक्षक, दरवान

(ख) उग्रवंशी-जिस कुल को ऋषभदेव स्वामी ने रक्षक रूप में स्थापित किया वह उग्रकुल और उसमें उत्पन्न उग्रवंशी।

(ग) भोगवंशी-जिस कुल की स्थापना भगवान् ऋषभदेव ने पूज्य के स्थान पर की वह भोगकुल और उनके वंशज भोगवंशी।

(घ) विद्याधर-विद्या के बल से आकाश में उड़ने वाला तथा अनेक चमत्कार करने वाला, वैताढ्य पर्वत की विद्याधर श्रेणी में रहने वाला मनुष्य

महाराजा श्रेणिक, महारानी चेलना, अभयकुमार, मेघकुमार आदि राजकुमारों को एवं समस्त उपस्थित परिषद को भगवान् धर्मोपदेश फरमाने लगते हैं। सभी बहुत ही हर्षित होकर, एकाग्रचित्त होकर प्रभु की पीयूषवाणी का पान करने लगे हैं। राजा श्रेणिक तो आज प्रभु के प्रथम बार दर्शन कर धन्य-धन्य हो गया है।

वह मन में चिंतन कर रहा है कि आज का दिन मेरे लिए अत्यन्त मंगलमय है कि मुझे भगवान् के सुन्दर सान्निध्य का सुअवसर मिला और इस विशाल जनमेदिनी के मध्य धर्म-श्रवण का यह अचिन्त्य लाभ भी। वह तो अत्यन्त संवेग भावों से श्रद्धाभिभूत होकर प्रभु को निर्निमेष निहार रहा है और उनकी अमृत देशना का मधुपान भी। इस तल्लीनता में न जाने कितना समय व्यतीत हो गया, पता ही नहीं चल पाया। भगवान् की देशना पूर्ण हुई और राजा श्रेणिक भगवान् से बोलते हैं–भंते ! आपकी देशना यथार्थ है, रुचिकर है, अभिलाषणीय है, सत्य और परिपूर्ण है। यही मुझे इष्ट है, अभीष्ट है। इत्यादि वचनों से श्रेणिक अपनी जिन-प्रवचन पर दृढ़ आस्था प्रकट करता है। उसके इन शुभ भावों से, शुभ लेश्या से मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियाँ, दर्शनत्रिक एवं अनन्तानुबंधी चतुष्क का क्षय हो जाता है और वह क्षायिक समकित प्राप्त कर लेता है।[152] अभयकुमार प्रभु की देशना से प्रभावित होकर श्रावक व्रतों को ग्रहण कर लेता है और मेघकुमार दीक्षित होने का संकल्प ग्रहण कर प्रभु से निवेदन करता है–भगवन्! आपश्रीजी की दिव्य देशना श्रवण कर, मैं माता-पिता से अनुमति लेकर श्रीचरणों में प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

तब भगवान् ने फरमाया–हे देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य में विलम्ब न करो।

इस प्रकार अनेक व्यक्तियों ने अनेक त्याग-प्रत्याख्यान किये एवं त्याग प्रत्याख्यान कर श्रद्धाभिभूत राजा, महारानी और परिषद पुनः लौट गयी।

सम्बोधन श्रमण वर्ग को :

समवसरण में विराजमान भगवान् महावीर अपने केवलालोक से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनों के मन में आने वाली वैकारिक भावनाओं को जान रहे थे, अतएव परिषदादि सभी के लौट जाने पर निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थिनों को आमंत्रित करके फरमाने लगे –

आर्यों ! श्रेणिक राजा एवं चेलनादेवी को देखकर तुम्हारे मन में उनकी तरह मानुषिक भोग भोगने का संकल्प पैदा हुआ। क्या यह कथन सत्य है?

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनें–हाँ, भगवन यथार्थ है।

भगवान्–हे आयुष्मन् श्रमणों ! मैंने जिस धर्म का निरुपण किया है, वही

निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, श्रेष्ठ, प्रतिपूर्ण, अद्वितीय, शुद्ध, न्यायसंगत, शल्यों[क] का संहार करने वाला, सिद्धि, मुक्ति, नियाण[ख] एवं निर्वाण[ग] का मार्ग है, यथार्थ, शाश्वत, दुःखों से मुक्ति का मार्ग है।

इस सर्वज्ञ प्रणीत धर्म के आराधक सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं, सब दुःखों का अंत करते हैं। लेकिन निदान करने वाले नहीं। अतएव मैं तुम्हें निदान[LXVIII] का दुष्फल बतलाता हूँ। यों कहकर प्रभु निदान[153] के बारे में फरमाते हैं।

1. श्रमण का मानवीय भोग सम्बन्धी निदान :

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन की आराधना के लिए अनेक भव्य जीव उपस्थित होकर निर्ग्रन्थ श्रमण एवं श्रमणी जीवन को अंगीकार करते हैं। संयम जीवन अंगीकार करके कदाचित् कोई निर्ग्रन्थ भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि परीषहों और उपसर्गों से पीड़ित होकर कामवासना के प्रबल उदय से ग्रसित हो जाये और उस समय कदाचित् वह विशुद्ध मातृ-पक्ष[घ], पितृ-पक्ष[ङ] वाले राजकुमार को देखे कि जब वह राजकुमार राजमहल से निकलता है तो उस समय छत्र, झारी, आदि ग्रहण किये हुए अनेक दास, दासी और कई कर्मकार पुरुष उसके आगे-आगे चलते हैं। उसके पीछे-पीछे उत्तम अश्व चलते हैं और दोनों ओर श्रेष्ठ हाथी और उनके पीछे-पीछे श्रेष्ठ सुसज्जित रथ चलते हैं। अनेक पैदल चलने वाले लोग छत्र, झारी, ताड़पत्र का पंखा, श्वेत चामर डुलाते हुए उनका अनुगमन करते हैं।

उस राजकुमार का गमनागमन महान् ऋद्धि के साथ होता है। अनेक लोग उसकी अत्यन्त भक्ति, सत्कार और सम्मान करते हैं। इसी सत्कार-सम्मान से वह सम्पूर्ण दिन व्यतीत करता है और रात्रि में भी जब शयन-कक्ष में जाता है, तब उन्नत, गम्भीर, सुकोमल, दोनों ओर तकिये लगी शय्या सुगंधित पदार्थों की सुगंध से सुरभित रहती है। विविध प्रकार के मणि-रत्नों की छटा से वह शयन-कक्ष दिन की प्रभा को भी निरस्त करता हुआ ज्योतिपुंज बना रहता है। उस शयन-कक्ष में राजकुमार रूप और शील की साक्षात् देवियों के समकक्ष अपनी प्राण-प्रियाओं के साथ घिरा, हुआ कुशल नर्तकों का नृत्य देखता हुआ, मधुर गीतों के कर्णप्रिय शब्दों को श्रवण करता हुआ, अनेक प्रकार के वाद्यों की झंकार से मन को झकझोरित करता हुआ एवं उत्तम मानुषिक भोगों को भोगता

(क) शल्य-कांटा (माया, निदान, मिथ्यादर्शन शल्य)
(ख) नियाण-कर्म से छूटने का मार्ग (ग) निर्वाण-मोक्ष, मुक्ति
(घ) मातृ पक्ष-ननिहाल पक्ष (माता का परिवार) (ङ) पितृ पक्ष-ददिहाल पक्ष (पिता का परिवार)

हुआ विचरण करता है। जब वह कार्य के लिए एक सेवक को बुलाता है तो उसके चार-पाँच सेवक उसके शब्दों को श्रवण कर बिना बुलाये ही उपस्थित हो जाते हैं और वे उस राजकुमार से पूछते हैं –

"हे देवानुप्रिय ! कहो हम क्या करें? क्या लायें? क्या अर्पण करें? और क्या आचरण करें? आपकी हार्दिक अभिलाषा क्या है? आपके मुख को कौन-कौन से पदार्थ स्वादिष्ट लगते हैं?"

इस प्रकार उस राजकुमार के निराले ठाठ-बाट रहते हैं, जिन्हें दृष्टिगत कर वह परीषह पीड़ित निर्ग्रन्थ निदान करता है, मेरे तप, नियम और ब्रह्मचर्य पालन का विशिष्ट कल्याणकारी फल हो तो मैं भी आगामी काल में उत्तम मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगते हुए विचरण करूँ, यह मेरे लिए अच्छा होगा।

हे आयुष्मन् श्रमणों ! इस प्रकार वह निर्ग्रन्थ निदान करके, संकल्पों की आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना अंतिम समय में देह त्यागकर महाऋद्धि, महाद्युति, महाबल, महायश, महासुख, महाप्रभा वाले दीर्घ, स्थिति वाले किसी देवलोक में देव रूप में उत्पन्न होता है। वहाँ देवलोक में दिव्य सुख भोगता हुआ अपनी आयु के क्षीण होने पर शुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाले उग्रकुल या भोगकुल में राजकुमार रूप में उत्पन्न होता है।

वह शिशु सुकुमाल हाथ-पैर वाला, सुन्दर व्यंजन[क] एवं लक्षणों[ख] वाला चन्द्र-सम सौम्य कांतिवाला, सुरूप होता है। बाल्यावस्था व्यतीत होने पर वह बालक युवावस्था को प्राप्त करने पर अपने सद्गुणों से पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है। उसके बाहर गमनागमन करते समय आगे छत्र, झारी आदि लेकर अनेक नौकर-दासादि चलते हैं और वह अपने निदानानुसार राजसी ठाठ-बाट से अपना जीवन व्यतीत करता है।

उस समय उस राजकुमार को कोई श्रमण महान केवली प्ररूपित धर्म कहते हैं, तब भी वह उसे नहीं सुनता क्योंकि पूर्वकृत निदान के पापकारी परिणाम के कारण वह धर्म-श्रवण के योग्य नहीं रहता। अतएव महान् इच्छावाला वह राजकुमार मृत्यु आने पर काल करके दक्षिण दिशावर्ती[ग] नरक में कृष्णपाक्षिक[घ] नैरयिक रूप में उत्पन्न होता है तथा भविष्य में उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति दुर्लभ होती है।

(क) व्यंजन–शरीर के शुभाशुभ चिह्न–मस, तिल आदि।
(ख) लक्षण–स्वस्तिकादि शरीर के शुभाशुभ लक्षण
(ग) दक्षिण दिशावर्ती–भारी कर्मा जीव नारकी में दक्षिण दिशा में उत्पन्न होता है।
(घ) कृष्णपाक्षिक–अनन्त संसारी

अतएव हे श्रमणों ! सांसारिक भोगों की अभिलाषा पापकारी है। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है और इसी से दुःख-परम्परा का अंत होता है।

2. श्रमणी का राजसी भोग हेतु निदान :

हे भव्यों ! अनेक कन्याएँ, अनेक स्त्रियाँ निर्ग्रन्थी जीवन को अंगीकार करती हैं और वे कदाचित् भूख और प्यासादि परीषह से पीड़ित होकर प्रबल कामवासना के उदय से कदाचित् ऐसी स्त्री को देखती हैं जो अपने भर्ता को इष्ट, कांत लगती है। वस्त्राभूषणों से अलंकृत रत्नों की पेटी की तरह स्वामी द्वारा संरक्षित होती है।

प्रासाद में गमनागमन करने पर उसके आगे-आगे छत्र, झारी आदि लेकर अनेक दास, भृत्यादि गमनागमन करते हैं यावत् एक को बुलाने पर चार-पाँच नौकर उपस्थित हो जाते हैं। उसके उस ठाठ-बाट को देखकर वह परीषह पीड़ित निर्ग्रन्थिन निदान करती है कि मेरे तप, नियम और ब्रह्मचर्य का विशिष्ट फल हो तो मैं भी आगामी काल में इसी स्त्री की तरह मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगते हुए विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।

हे आयुष्मन् श्रमणों ! वह निर्ग्रन्थिन निदान करके उस निदान की आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना देह त्याग कर देवलोक में देव रूप में उत्पन्न होती है। वहाँ दिव्य देवऋद्धि का उपभोग करके वह उग्रवंशीय या भोगवंशीय बालिका रूप में उत्पन्न होती है।

उस अत्यन्त सुकुमार देह वाली बालिका को युवावय प्राप्त होने पर उसके माता-पिता अनुरूप पति से उसका पाणिग्रहण कर देते हैं। अपने उस पति को वह स्त्री इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, अतीव मनोहर, धैर्यसम्पन्न, विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत और रत्न के पिटारे के समान संरक्षण योग्य लगती है। उस स्त्री के गमनागमन करते समय उसके आगे छत्र, झारी आदि लेकर अनेक दास-दासी, नौकर आदि चलते हैं यावत् एक को बुलाने पर बिना बुलाये ही चार-पाँच सेवक सेवा में उपस्थित हो जाते हैं और अत्यन्त विनय से पूछते हैं—हे देवानुप्रिय ! हम क्या करें? आपके लिए क्या लायें?

इस प्रकार वह स्त्री मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगती है, तब उसे कोई तप-संयम के मूर्तरूप श्रमण महान केवली प्ररूपित धर्म कहते हैं तो वह पापकारी निदानशल्य के कारण केवली प्ररूपित धर्म को श्रवण नहीं करती और वह उत्कृष्ट अभिलाषाओं के कारण मृत्यु प्राप्त होने पर दक्षिण दिशावर्ती नरक में कृष्णपाक्षिक नैरयिक के रूप में उत्पन्न होती है।

3. श्रमण का स्त्री बनने हेतु निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणों ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य यावत् समस्त दुःखों का

अंत करने वाला है। हे श्रमणों ! कोई निर्ग्रन्थ केवली प्ररूपित धर्म की आराधना करते हुए परीषह से पीड़ित प्रबल मोहकर्म के उदय से एक उत्तम भोग भोगने वाली पति की प्राणप्रिया प्रेयसी को देखकर निदान करता है–

पुरुष का जीवन दुःखमय है क्योंकि क्षत्रिय पुरुष युद्ध में जाते हुए अनेक प्रकार के शस्त्रों के प्रहार से पीड़ित होते हैं, लेकिन स्त्रियों का जीवन कितना सुखमय होता है। अतएव यदि मेरे सम्यक् आचरित तप, नियम और संयम का फल मिले तो मैं भी भविष्य में स्त्री सम्बन्धी उत्तम भोगों को भोगता हुआ विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।

हे आयुष्मन् श्रमणों ! वह निर्ग्रन्थ उस निदान की आलोचना किये बिना काल करके देवलोक में पैदा होता है। तत्पश्चात् निदानानुसार स्त्री बनता है, फिर स्त्री पर्याय भोगकर कृष्णपाक्षिक दक्षिण दिशावर्ती नैरयिक बनता है और आगामी भवों में उसे सम्यक्त्व प्राप्त करना दुर्लभ होता है। यह उस निदान का पापकारी फल है।

4. श्रमणी का पुरुष बनने के लिए निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणों ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य और सभी दुःखों का अंत करने वाला है।

केवली प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए कोई निर्ग्रन्थिन श्रमणी धर्म स्वीकार कर परीषह से बाधित होकर विशुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाले उग्रवंशी या भोगवंशी पुरुष को देखती है यावत् उसे देखकर वह निदान करती है–

स्त्री जीवन दुःखमय है, वह परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा है। वह तो एकाकी किसी भी गाँवादि में नहीं जा सकती। जैसे आम, बिजौरा, इक्षु खण्ड आदि अनेक मनुष्यों के आस्वादन योग्य, इच्छित और अभिलाषणीय होते हैं, वैसे ही स्त्री भी अनेक मनुष्यों के आस्वादन योग्य, इच्छित और अभिलाषणीय होती है। अतः स्त्री की अपेक्षा पुरुष का जीवन सुखमय होता है।

यदि सम्यक् रूप से आचरित मेरे तप, नियम और ब्रह्मचर्यादि का विशिष्ट फल हो तो मैं भी आगामी काल में उत्तम पुरुष सम्बन्धी काम-भोगों को भोगते हुए विचरण करूँ, यही श्रेष्ठ होगा।

इस प्रकार वह श्रमणी निदान करके आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना देवलोक में पैदा होती है, पुनः निदानानुसार पुरुष बन जाती है और भोगों को भोग कर दक्षिण पथगामी कृष्णपाक्षिक नैरयिक के रूप में पैदा होती है, उसे भव-भवान्तर में सम्यक्त्व की प्राप्ति दुर्लभ होती है।

5. श्रमण-श्रमणी द्वारा परदेवी परिचारण निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणों ! केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य है यावत् सब दुःखों का अंत करने वाला है। ऐसे केवली प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उपस्थित होकर कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिन मानुषिक भोगों से विरक्त हो जाये और वह यह सोचे ''मानवीय कामभोग अध्रुव, अशाश्वत और नश्वर हैं। मल-मूत्र-श्लेष्म-वात-पित्त-कफ-शुक्र एवं शोणितजन्य हैं, दुर्गन्धित श्वासोच्छ्वास तथा मल-मूत्र से परिपूर्ण हैं। वात-पित्त-कफ के आगमन द्वार रूप हैं, ये अवश्यमेव पहले अथवा पीछे त्यागने योग्य हैं, लेकिन जो ऊपरी देवलोकों में देव रहते हैं वे अन्य देवों की देवियों को अधीनस्थ करके उनके साथ, अपनी देवियों के साथ एवं विकुर्वित देवियों के साथ विषय सेवन करते हैं।''

अतएव मेरे सम्यक् आचरित तप, नियम और ब्रह्मचर्य का विशिष्ट फल हो तो मैं भी भविष्य में ऐसे दिव्य भोगों को भोगता हुआ/भोगती हुई विचरण करूँ, यह श्रेयस्कर होगा।

ऐसा निदान करके वह निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिन देव रूप में उत्पन्न होता/होती है। वहाँ वह अन्य की देवियों के साथ, अपनी देवियों के साथ, स्वविकुर्वित देवियों के साथ भोग भोगते हुए आयु समाप्त होने पर उग्रवंशी भोगवंशी कुमार के रूप में पैदा होता/होती है, जहाँ अनेक नौकर, दास आदि उसकी सेवा में संलग्न रहते हैं। उस समय उसे कोई तपस्वी श्रमण-माहन केवली प्ररूपित धर्म सुनाता है तो वह श्रवण करता/करती है, लेकिन श्रद्धा नहीं कर सकता/सकती, यह निदान का पापकारी परिणाम है। वह वहाँ से मरकर दक्षिण दिशावर्ती कृष्णपाक्षिक नैरयिक के रूप में पैदा होता/होती है और भविष्य में उसे समकित की प्राप्ति दुर्लभ होती है।

6. श्रमण-श्रमणी द्वारा स्वदेवी परिचारण का निदान :

हे आयुष्मान श्रमणों ! यह केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य यावत् सब दुःखों का अंत करने वाला है।

कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिन केवली प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उपस्थित होकर, परीषह से पीड़ित होकर मानवीय कामभोगों से विरक्त होकर ऐसा चिंतन करे-

मनुष्य सम्बन्धी कामभोग अनित्य, अशाश्वत हैं, ये शुक्र-शोणित- मल-मूत्रादि से जनित एवं अवश्य त्याज्य हैं, अतएव जो ऊपर देवलोक में देव रहते हैं, वे अपनी विकुर्वित देवियों के साथ एवं अपनी देवियों के साथ विषय सेवन करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। यदि मेरे तप, संयम एवं ब्रह्मचर्य का विशिष्ट फल हो तो मैं भी ऐसा

महान् ऋद्धि वाला/वाली देव बनकर, दिव्य भोगों को भोगूं तो श्रेष्ठ होगा। ऐसा निदान करके वह साधु/साध्वी मरकर देव बनकर पूर्व संकल्पानुसार अपनी विकुर्वित देवियों/देवों के साथ या स्वयं की देवियों/देवों के साथ दिव्य भोग भोगता है। वह आयु क्षय होने पर ऋद्धिशाली पुरुष बनता है। अनेक दास-दासी उसकी सेवा में रहते हैं और समय आने पर श्रमण माहन से वह केवली प्ररूपित धर्म भी श्रवण करता है, लेकिन उस पर श्रद्धा नहीं करता। वह अन्य दर्शन को स्वीकार कर उसका आचरण करता है और पर्णकुटी में रहने वाला तापस, गाँव के समीप वाटिका में रहने वाला तापस, अदृष्ट होकर रहने वाला तांत्रिक बनता है। वह प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की हिंसा से विरत नहीं बनता और इस प्रकार की मिश्र भाषा का प्रयोग करता है –

मुझे मत मारो, दूसरों को मारो।

मुझे मत आदेश करो, दूसरों को आदेश करो।

मुझे मत पीड़ित करो, दूसरों को पीड़ित करो।

मुझे मत पकड़ो, दूसरों को पकड़ो।

मुझे मत भयभीत करो, दूसरों को भयभीत करो।

इस प्रकार वह मानवी सम्बन्धी कामभोगों में गृद्ध होकर अंतिम समय में देह त्याग कर किल्विषिक[क] में पैदा होता है। वहाँ से च्यवकर पुनः भेड़-बकरे के रूप में पैदा होता है।

हे आयुष्मन् श्रमणों ! यह निदान का पापकारी परिणाम है कि वह केवली प्ररूपित धर्म पर रुचि नहीं रखता।

7. श्रमणी-श्रमण का देव सम्बन्धी भोग हेतु निदान :

हे श्रमणों ! कोई साधु या साध्वी यावत् मानवीय काम-भोगों से विरक्त होकर यह सोचे–

मनुष्य सम्बन्धी कामभोग तो अध्रुव यावत् त्याज्य हैं, लेकिन जो ऊपरी देवलोक में देव हैं, वे अन्य देवों की देवियों के साथ एवं स्वयं विकुर्वित देवियों के साथ विषय-सेवन नहीं करते, किन्तु अपनी देवियों के साथ रतिक्रीड़ा करते हैं। यदि मेरे भी सम्यक् आचरित तप, नियम और ब्रह्मचर्य का कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो आगामी काल में मैं भी इस प्रकार के दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरण करूँ, तो श्रेष्ठ होगा।

ऐसा निदान करके कोई निर्ग्रन्थ/निर्ग्रन्थिन देव बनकर मात्र अपनी ही देवियों

(क) किल्विषिक-अन्त्यज देव

के साथ दिव्य भोग भोगता है, आयु के क्षय होने पर ऋद्धि-सम्पन्न पुरुष बनता है। वह केवली प्ररूपित धर्म श्रवण कर उस पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि रखता है, वह मरकर किसी देवलोक में पैदा होता है, लेकिन वह किसी भी प्रकार का प्रत्याख्यान स्वीकार नहीं कर सकता, यह उसके निदान का पापकारी परिणाम है।

8. श्रमण का श्रावक बनने के हेतु निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणों ! केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य यावत् सभी दुःखों का अंत करने वाला है। इस धर्म का आचरण करने वाला कोई निर्ग्रन्थ/ निर्ग्रन्थिन यावत् मानव को अशाश्वत जानकर, उनसे विरक्त बनकर यह सोचे कि मेरे सम्यक् आचरित इस तप, नियम और ब्रह्मचर्य का विशिष्ट फल हो तो मैं भविष्य में विशुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाला उग्रवंशी, भोगवंशी पुरुष बनकर श्रमणोपासक बनूँ। जीवाजीव का ज्ञाता बनकर आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।

ऐसा विचार करके वह मृत्यु को प्राप्त होकर देव बनता है। वह दिव्य ऋद्धि का उपभोग करके आयु क्षय होने पर ऋद्धिशाली पुरुष बनता है, जिसकी सेवा में बहुत-से नौकर, दासादि रहते हैं।

उसको कोई साधु केवली प्ररूपित धर्म सुनाता है तो वह सुनता है, उस पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि करता है। श्रावक के ग्रहण योग्य व्रतों को ग्रहण करता है, लेकिन पूर्वकृत निदान के कारण साधु नहीं बनता। यह निदान का पापकारी परिणाम है। वह श्रावक वर्षों तक श्रावक पर्याय का पालन करता है। अंत में संलेखना संथारा करके देवलोक में देव बनता है।

9. निर्ग्रन्थ का श्रमण बनने हेतु निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणों ! केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य रूप है, यावत् समस्त दुःखों का अंत करने वाला है। उस धर्म में यत्न करता हुआ कोई साधु यावत् मानवीय भोगों से विरक्त बनकर सोचे कि मानुषिक भोग अध्रुव यावत् त्याज्य हैं। देव सम्बन्धी भोग भी भव परम्परा बढ़ाने वाले हैं, अतएव अवश्यमेव त्याज्य हैं।

अतएव मेरे द्वारा सम्यक् आचरित तप, संयम और ब्रह्मचर्य का फल हो तो मैं भविष्य में अन्तकुल, प्रान्तकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, कृपणकुल या भिक्षु कुल में पुरुष बनूँ जिससे मैं प्रव्रजित होने के लिए सुविधापूर्वक गृहवास का परित्याग कर सकूँ तो श्रेष्ठ होगा।

ऐसा निदान कर वह निर्ग्रन्थ/निर्ग्रन्थिन देव रूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ पर दिव्य देव सम्बन्धी भोगों का उपभोग कर वह निदानानुसार पुरुष रूप में

उत्पन्न होता है और अनेक नौकरादि सदैव उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं। वह ऋद्धिसम्पन्न पुरुष किसी निर्ग्रन्थ के द्वारा केवली प्ररूपित धर्म को श्रवण करता है, उस पर रुचि रखता है, गृहत्यागी साधु बनता है, लेकिन उसी भव में सिद्ध नहीं बनता। वह संयम पर्याय का पालन कर संलेखणा संथारा करके देव रूप में पैदा होता है। उस निदान के पापकारी परिणाम के कारण वह उसी भव में सिद्ध नहीं बनता।

10. अनिदान से मुक्ति :

हे आयुष्मन् श्रमणों ! जो निर्ग्रन्थ प्रवचन की आराधना के लिए उपस्थित होकर तप-संयम में पराक्रम करता हुआ काम-रागादि से सर्वथा रहित सम्पूर्ण चारित्र की आराधना करता है, वह उसी भव में अरिहंत, केवली, सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन जाता है। वह सम्पूर्ण लोक में सब जीवों के सर्वकालीन भावों को जानता-देखता है।

वह अंतिम समय में सम्पूर्ण कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह निदान रहित साधना का कल्याणमय परिणाम है जिससे वह उसी भव में सिद्ध हो जाता है यावत् सभी दुःखों का अंत कर देता है।

इस प्रकार उपस्थित श्रमण-श्रमणियों ने भगवान् के मुख से निदान एवं अनिदान का वर्णन श्रवण कर भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके पूर्वकृत निदानशल्यों की आलोचना, प्रतिक्रमण करके यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप स्वीकार किया।[154]

इस प्रकार प्रभु ने निदान के बारे में विस्तृत निरूपण किया। निदान को आवश्यक सूत्रकार ने आभ्यन्तर शल्य–आत्मा का काँटा कहा है। जैसे काँटा जब तक लगा रहता है, वह तन की समाधि भंग करता है। इसी प्रकार निदान रूपी काँटा भी जब तक लगा रहता है वह चारित्र और मुक्ति में बाधक बनकर खटकता रहता है इसलिए आत्माभिमुखी साधु को निदान नहीं करना चाहिए। यहाँ भगवान् ने नौ प्रकार के निदान बताये हैं, लेकिन निदान की कोई संख्या निश्चित नहीं है। समवायांग सूत्र में कहा है–वासुदेव, प्रतिवासुदेव नियमा निदानकृत होते हैं। चक्रवर्ती निदानकृत भी होते हैं और निदान रहित भी।[155]

अन्य कोई भी कोणिक आदि की तरह निदान कर सकता है। तप, संयम एवं ब्रह्मचर्यादि का पालन करने वाला ही निदान करता है और वह अपनी लालसा के कारण तप, संयम को दाँव पर लगा देता है। अस्तु, निदान[LXIX] करने वाला दुःख-परम्परा का अंत नहीं कर सकता। इसलिए भगवान् ने अनिदान की प्रेरणा दी है, जो प्रत्येक श्रमण-श्रमणी एवं सद्गृहस्थ के लिए अनुकरणीय है।

मेघ का निर्वेद :

इधर मेघकुमार भगवान् की दिव्य देशना से विरक्त बना रथ पर आरूढ़ होता है। वह सम्पूर्ण मार्ग में वैराग्यमय भावों से ओत-प्रोत बनकर संसार-त्याग का दृढ़ीभूत संकल्प कर लेता है और मार्ग की परिसमाप्ति होने पर रथ से उतरकर अपने माता-पिता के पास पहुँच जाता है।

वहाँ पर पहुँचते ही माता-पिता से बोला--माँ, पिताजी ! मुझे प्रभु का उपदेश रुचिकर लगा है, अतः आपकी आज्ञा मिलने पर मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ। मेघकुमार के वचनों को श्रवण करते ही माँ मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ती है। तब उसे पंखे आदि से हवा करके सचेतन करते हैं। होश में आने पर माता कहती है--बेटा ! तू मेरा इकलौता पुत्र है। तेरे बिना एक पल भी रहना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है। बेटा ! मैं तेरा क्षण-भर भी वियोग सहन नहीं कर सकती, इसलिए जब हम कालगत हो जायें, तब तुम संयम अंगीकार कर लेना।

मेघ--माताश्री कौन जानता है, कौन पहले जायेगा और कौन बाद में जायेगा? इसलिए आप मुझे आज्ञा प्रदान कर दीजिए।

माता-पिता--बेटा ! अभी तो तू युवावस्था प्राप्त है। इस यौवन में पहले मनुष्य सम्बन्धी कामभोग का भोग करले, उसके पश्चात् संयम अंगीकार कर लेना।

मेघ--माता-पिता ! भोग तो नश्वर हैं। वे अवश्यमेव त्याग करने योग्य हैं। वे कर्मबंध के स्थान हैं। अतः अब भोग भोगने में मेरी अभीप्सा नहीं है।

माता-पिता--मेघ ! संयम तलवार की धार पर चलने के समान सुदुष्कर है। नंगे पैर चलना, केश लुंचन करना, घर-घर से माँग कर लाना, लूखा-सूखा आहार ग्रहण करना और सरदी-गरमी सहन करना अत्यन्त कठिन है। तू बड़ा सुकुमाल शरीर वाला है। अतएव तू संयम का पालन नहीं कर पायेगा।

मेघ--माता-पिता ! संयम कायरों के लिए दुष्कर है। शूरवीर तो संयम में आने वाले परीषहों को समभावपूर्वक सहन करते हैं, उनके लिए संयम दुष्कर नहीं है।

बहुत समझाने के पश्चात् भी जब मेघ का वैराग्य अडिग रहता है, तब माता-पिता अंत में मेघकुमार से कहते हैं कि मात्र एक दिन का राज्य ग्रहण करके फिर संयम लेना। तब मेघकुमार मौन रहते हैं और उनका राज्याभिषेक करते हैं। तत्पश्चात् उन्हें पूछते हैं--आपकी क्या आज्ञा है?

मेघकुमार कहता है--राज्यकोष में से एक लाख स्वर्णमुद्राएँ निकालकर नाई को केशकर्तन हेतु देओ, दो लाख स्वर्ण मुद्राओं से पातरे और रजोहरण मंगवाओ।

उनकी आज्ञानुसार एक लाख स्वर्णमुद्राएँ देकर नाई से चार अंगुल केश

छोड़कर केश कर्तन करवाये और दो लाख स्वर्णमुद्राएं से पातरे एवं रजोहरण कुत्रिकापण[क] से मंगवाया।

नापित द्वारा काटे गये केशों को माँ धारिणी ने श्वेत वस्त्र में रखा कि जब-जब घर में उत्सवादि होंगे तो मेघकुमार के इन केशों को देखकर उनका स्मरण कर सकूँगी।

तत्पश्चात् एक हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका तैयार करवाई और मेघकुमार को वस्त्रालंकारों से विभूषित कर पालकी में बिठाया। एक हजार पुरुष उस शिविका का वहन करने लगे। उस शिविका के आगे आठ मंगल[LXX] चले–1. स्वस्तिक, 2. श्रीवत्स, 3. नंदावर्त, 4. वर्धमान, 5. भद्रासन, 6. कलश, 7. मत्स्य और 8. दर्पण। इस पर जय-घोषों के नारों से मही गुंजित करते हुए मेघकुमार की पालकी गुणशील चैत्य तक पहुँची।

वहाँ पालकी से नीचे उतर कर मेघकुमार, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया। तब उसके माता-पिता भगवान् महावीर से कहते हैं–भगवन् ! हमारा यह इकलौता पुत्र हमें अत्यन्त प्रिय है। हम इसके नाम-श्रवण के लिए लालायित रहते हैं। यह हमारे हृदय को आनन्द देने वाला है। यह जन्म-मरण के भय से उद्विग्न होकर आपश्री के चरणों में प्रव्रजित होना चाहता है। हम इसे शिष्य-भिक्षा के रूप में श्रीचरणों में समर्पित कर रहे हैं। आप इस शिष्य को अंगीकार कीजिए।

प्रभु महावीर ने माता-पिता की इस बात को सम्यक्तया स्वीकार किया। तत्पश्चात् मेघकुमार ईशान कोण में गया और वहाँ जाकर उसने आभूषण, माला, अलंकार आदि उतारे। माँ ने धवल वस्त्र में आभूषणादि ग्रहण किये, तदनन्तर विलाप करती हुई, करुण क्रन्दन करती हुई, अश्रु टपकाती हुई मेघकुमार से कहती है–चारित्र का उत्तम भावों से पालन करना। संयम-साधना में आलस्य मत करना, भविष्य में हमारे लिए भी संयम प्राप्त करने का सुयोग होवे, ऐसा सहयोग देना। इस प्रकार शिक्षा देकर माता-पिता लौट जाते हैं। मेघकुमार ने पंचमुष्टि लोच किया, तत्पश्चात् प्रभु महावीर के समीप आया, उन्हें विधिवत् वंदन-नमस्कार किया और प्रभु से निवेदन किया–भंते ! मुझे संसार की आग से निकालकर संयम के उपवन का मार्ग बतायें। मुझे आप प्रव्रजित करें।[156]

भगवान् ने मेघकुमार को प्रव्रजित कर संयम मार्ग[LXXI] पर समारूढ़ किया। दिन संयम-साधना में विनय पूर्वक[157] व्यतीत हुआ। व्यतीत हो रात्रि में शयन का समय आया और क्रमशः सबके संस्तारक बिछने लगे। दीक्षा पर्याय के क्रमानुसार मेघकुमार का संस्तारक (बिछौना) द्वार के पास लगाया गया।

(क) कुत्रिकापण–ऐसी देवाधिष्ठित दुकान जहाँ स्वर्ग, मृत्यलोक एवं पाताल में रहने वाली वस्तु मिल सके।

चक्खुप्रदाता भगवान् महावीर :

मेघ मुनि ने अपने संस्तारक[क] पर शयन करना प्रारम्भ किया, लेकिन रात्रि के प्रथम प्रहर में अनेक साधु वाचना लेने के लिए, प्रश्न पूछने के लिए, धर्मकथा के लिए उस दरवाजे से कोई आता है, कोई जाता है, इसके पश्चात् कोई परठना करने के लिए आ रहा है, कोई जा रहा है। अन्तिम प्रहर में भी वाचनादि के लिए कोई आ रहा है, कोई जा रहा है। इस प्रकार उस द्वार से रात्रि-भर साधुओं का निर्गमन[ख] एवं प्रवेश होता रहा। तब जाता-आता कोई साधु मेघ मुनि का संघट्टा करता है, कोई उल्लंघन करता है। कोई पैर पर टक्कर लगाता है, कोई हाथ पर, कोई मस्तक पर, उसके शरीर पर पैरों की धूलि से रजकण ही रजकण हो गये। रात्रि में वह क्षण-भर भी सो न सका। अब मेघ मुनि का मन ग्लानि से भर गया। चिंतन किया–ओह ! जब मैं गृहवास में था तब सभी मुनि मेरा आदर-सत्कार करते थे, लेकिन आज रात्रि में.......... अहह ! मुनियों ने मेरा घोर अपमान किया है। एक क्षण भी मुझे सोने नहीं दिया। मैं इस तरह साधु जीवन का पालन नहीं कर सकता। प्रातःकाल होने पर मुझे पुनः गृहवास में जाना उचित है। इस प्रकार आर्त भावों से रात्रि व्यतीत होने पर सूर्योदय के पश्चात् मेघ मुनि भगवान् को वंदन-नमस्कार करके पर्युपासना करने लगे।

प्रभु बोले–मेघ ! तुम्हारे मन में मुनियों के कारण ऐसे विचार उत्पन्न हुए हैं कि मैं प्रातःकाल होने पर घर चला जाऊँगा। क्या यह सत्य है?

मेघ–हाँ भंते।

भगवान्–मेघ इससे पहले अतीत के तीसरे भव का तुम स्मरण करो। जब तुम वैताढ्य पर्वत की तलहटी पर सुमेरुप्रभ नामक हस्ति थे। सुडौल, सुगठित, बलशाली शरीर वाले एक हजार हाथियों के स्वामी तथा अनेक हस्ति कलभों[ग] पर आधिपत्य करते हुए उनका रक्षण करते हुए, स्वामित्व और नेतृत्व कर रहे थे।

तुम अनेक हथिनियों और उनके बच्चों के साथ विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुए वैताढ्य पर्वत की तलहटी में घूमते हुए आनन्द का अनुभव करते थे। एक बार ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास में भीषण गरमी में पत्तों की रगड़ से भयंकर दावाग्नि[घ] लग गयी। तब अनेक पशु-पक्षी भयभीत होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। उस समय तुम भी भयंकर गर्जना करते हुए हथिनियों एवं हस्ति कलभों के साथ दौड़ने लगे। दौड़ते-दौडते तुम सबसे विछुड़ गये। प्यास के मारे तुम्हारे

(क) संस्तारक–ढाई हाथ प्रमाण शय्या, बिछौना, दर्भ या कम्बल का बिछौना
(ख) निर्गमन–निकलना
(ग) हस्ति कलभ–हाथी का बच्चा
(घ) दावाग्नि–जंगल में लगने वाली आग

कंठ शुष्क बन रहे थे। तब तुम बिना घाट के ही कीचड की अधिकता वाले सरोवर में पानी पीने उतर गये। वहाँ तुमने पानी पीने के लिए सूँड फैलाई, लेकिन तुम्हारी सूँड पानी न पी सकी। तुमने कीचड़ से निकलने का प्रयास किया, परन्तु बाहर निकलने के बजाय तुम कीचड़ में धँसते ही चले गये।

उस समय एक नौजवान हाथी वहाँ पर आया, जिसको तुमने पहले कभी मार कर अपने झुण्ड से बाहर निकाल दिया था। उस हाथी ने तुम्हें कीचड़ में फँसा देखा, देखते ही उसे पूर्ववैर का स्मरण हो आया और उसने अपने तीक्ष्ण दाँतों से तुम्हारी पीठ बींध डाली। वैर का बदला लेकर वह हाथी पानी पीकर लौट गया।

उस दंत प्रहार से तुम्हारे शरीर में भीषण वेदना पैदा हुई जिसको तुमने सात दिन-रात तक भोगा। तब तुम 120 वर्ष की आयु पूर्ण करके कालमास में काल करके जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध भरत में गंगा महानदी के किनारे विंध्याचल पर्वत पर एक हथिनी के गर्भ में पैदा हुए। नौ मास पूर्ण होने पर बसन्त ऋतु में तुम्हारा जन्म हुआ।

तुम बाल्यावस्था से ही चंचल स्वभाव के थे। युवावस्था प्राप्त होने पर उस यूथ[क] का यूथपति[ख] हाथी मर गया। तुम यूथ के मालिक बने। हस्ति समूह का वहन करने लगे। तुम्हारा नाम मेरुप्रभ था। तुम युवा हथिनियों के पेट में सूँड डालते हुए एवं उनके साथ विविध क्रीड़ाएँ करते हुए विचरण करने लगे। तब एक बार ग्रीष्मकाल में ज्येष्ठ की गर्मी से दावानल की ज्वालाओं से वन-प्रदेश जलने लगे। तब तुम भयभीत होकर हथिनियों और हस्ति-शिशुओं सहित इधर-उधर दौड़ने लगे। उस समय तुमने सोचा कि ऐसा दावानल मैंने पहले कहीं देखा है। निरन्तर सोचते-सोचते तुम्हें जातिस्मरण[ग] ज्ञान हो गया। तुम अपना पूर्वभव, सुमेरुप्रभ हाथी का, जानने लगे और अब दावानल से बचने के लिए तुम सोचने लगे कि विंध्याचल की तलहटी में एक बड़ा मण्डप बनाऊँ।

तब तुमने वर्षाकाल में खूब वर्षा होने पर गंगा महानदी के किनारे 700 हाथियों के साथ मिलकर एक योजन का विशाल मण्डप बनाया। वहाँ घास, पत्ते, वृक्षादि को उखाड़ कर फेंक दिया और सुखपूर्वक विचरण करने लगा। एकदा ग्रीष्मकाल आने पर उस जंगल में भयंकर दावानल लगा। तुम स्वनिर्मित मण्डप की ओर गये। मण्डप शेर, चीते आदि जंगली जानवरों से परिपूर्ण भरा

(क) यूथ–समूह
(ख) यूथपति–समूह का स्वामी
(ग) जातिस्मरण –पूर्व जन्म का स्मृति सूचक ज्ञान (मति ज्ञान का एक भेद)

था। तुम वहाँ गये और वहाँ खड़े हो गये। उस समय तुम्हारे शरीर में खुजली चली। तुमने खुजली करने के लिए एक पैर ऊँचा उठा लिया। तब जगह की संकीर्णता से एक खरगोश वहाँ पर आ गया। उस खरगोश पर दया करके तुमने पैर ऊपर उठाकर रखा। 2½ दिन तक पैर ऊँचा रखने से अनुकम्पा के कारण तुम्हारा संसारपरित्त[क] हुआ और मनुष्यायु का बंध किया।[158] दावानल शांत होने पर पैर नीचा रखने का प्रयास किया, लेकिन पैर नीचे रखा नहीं गया। तुम धड़ाम से धरती पर गिर पड़े। तीन रात-दिन वेदना सहन कर तुम मेघकुमार के रूप में उत्पन्न हुए।

तुम क्रमशः युवा हुए और संयम अंगीकार किया। मेघ ! जरा चिंतन करो, जब तुम हाथी थे, तुम्हें सम्यक्त्व भी नहीं था, तब भी प्राणियों की अनुकम्पा से, जीव मात्र की अनुकम्पा से पैर अधर रखा, नीचे नहीं टिकाया। तुम सहनशील बने रहे तो इस भव में तो तुमने अपने उत्थान[ख], बल[ग], वीर्य[घ], पुरुषाकार[ङ], पराक्रम[च] से संयम लिया है। तुम्हें रात्रि में श्रमणों के हाथ का स्पर्श हुआ, पैर का स्पर्श हुआ यावत् तुम्हारा शरीर धूलि-धूसरित हो गया। तुम उसे सम्यक् प्रकार सहन न कर सके। बिना क्षुब्ध हुए सहन न कर सके। अदीन भाव से सहन न कर सके। शरीर को निश्चल रखकर सहन न कर सके।

भगवान् के वचनों को श्रवण कर शुभ परिणामों से मेघ मुनि को जाति-स्मरणज्ञान हुआ। वे अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सम्यक्रूपेण जानने लगे। हर्षान्वित होकर उन्होंने भगवान् को वंदन किया और निवेदन किया—भंते ! आप मुझे दूसरी बार प्रव्रजित करने की कृपा करावें।

तब प्रभु ने उन्हें पुनः प्रव्रजित किया और वे सम्यक्तया तप संयम में लीन रह ग्यारह अंगों का अध्ययन करने लगे।[159]

पहहस्ती : सेचनक :

मेघ मुनि की दीक्षा के पश्चात् राजा श्रेणिक के पुत्र नन्दीषेण की दीक्षा प्रभु के मुखारविन्द से हुई, ऐसा इतिहास में उल्लेख मिलता है। नन्दीषेण का जीव किस प्रकार राजघराने में जन्मा, उसके जीवन का रोचक वृत्तान्त उपलब्ध होता है, वह इस प्रकार है –

पूर्वकाल में एक यज्ञकर्ता ब्राह्मण था। उसने एक दास को नौकर रूप में रखा और उस दास से पूछा कि तू क्या लेगा? तब उसने कहा—ब्राह्मणों को

(क) संसारपरित्त-संसार कम करना (अर्थात् अर्द्धपुद्गल परावर्त संसार परिभ्रमण शेष रहना)
(ख) उत्थान-विशिष्ट शारीरिक चेष्टा (ग) बल-शारीरिक शक्ति
(घ) वीर्य-आत्म बल (ङ) पुरूषाकार-पुरुषार्थ
(च) पराक्रम-पौरुषशक्ति

जिमाने के बाद जो रसोई बचे, बस, मुझे तो वह रसोई चाहिए और कुछ नहीं। ब्राह्मण ने दास की इस बात को स्वीकार कर लिया। वह ब्राह्मणों के जीमने के बाद जो भी बचता उसे अपने पास रखता और साधु-मुनिराज का योग मिलने पर सुपात्र दान देता। उसके पश्चात् खुद भोजन करता। इस प्रकार सुपात्र दान की भावना से उसने देवायु का बंध कर लिया और मृत्यु को प्राप्त होकर देवलोक में देव बन गया।

देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर वह देव श्रेणिक राजा के पुत्र नन्दीषेण के रूप में उत्पन्न हुआ। वह यज्ञकर्ता ब्राह्मण का जीव अनेक योनियों में परिभ्रमण करने लगा। इधर एक जंगल में हाथियों के यूथ में एक यूथपति हाथी दिग्गजकुमार जैसा था। वह सोचता था कि इन हाथियों का स्वामी अन्य कोई हाथी न बन जाये, इसलिए जो भी हस्ती कलभ पैदा होता तो वह जन्मते ही उसको मार डालता। एक बार यूथ में रही हुई हथिनी गर्भिणी हो गयी। यज्ञकर्ता ब्राह्मण का जीव उस हथिनी के गर्भ में आया। तब उस सगर्भा हथिनी ने विचार किया कि यह पापी यूथपति, जो भी शिशु जन्मता है, उसे मार डालता है। मैं भी जिस शिशु का प्रसव करूँगी उसे यह मार डालेगा। इसलिए मुझे अपने गर्भस्थ शिशु के संरक्षण के लिए कोई उपाय करना चाहिए। उस हथिनी का मातृ वात्सल्य हिलोरें लेने लगा। उस वात्सल्य के रस से अभिभूत होकर वह मायाजाल से पैर लंगड़ाती चलने लगी। बहुत दिनों से हाथी से मिलने लगी। हाथी ने सोचा—इस हथिनी का स्वास्थ्य ठीक नहीं, इसे विश्राम की अपेक्षा है, अतः हाथी भी निश्चिन्त-सा बन गया।

एक बार वह यूथपति हस्ती दूर चला गया और हथिनी अपने मस्तक पर तृण का पूला लेकर तपस्वियों के आश्रम में आयी। उसे स्खलित पैर से चलते हुए देखकर तपस्वियों के मन में करुणा का संचार हुआ और वे तपस्वी उसकी परिचर्या करने लगे। समय आने पर उसने एक सुन्दर हस्ती शिशु को जन्म दिया।

हथिनी अपने बच्चे की रक्षा के लिए उसे आश्रम में छोड़कर अपने यूथ में चली गयी और स्वस्थता का अनुभव करने लगी। अवसर देखकर गुप्त रीति से आश्रम में अपने शिशु को दुग्धपान कराने, उसकी परिचर्या करने जाती थी। वह बाल कलभ शनैः-शनैः तपस्वी आश्रम में बड़ा होने लगा।

तपस्वी उस बाल कलभ को पक्व, नीवार[क] तथा शल्लकी[ख] के कवल खिलाकर अत्यन्त प्रेम से पालन कर रहे थे। वह हस्ती-शिशु भी तपस्वियों के साथ क्रीड़ा करता था। अपनी सूँड में जल से परिपूर्ण घड़े लता और वृक्षों का सिंचन करता

(क) नीवार–तृण धान्य (ख) शल्लकी–एक वृक्ष विशेष जो हार्थियों को बहुत प्रिय है।

था। तुम वहाँ गये और वहाँ खड़े हो गये। उस समय तुम्हारे शरीर में खुजली चली। तुमने खुजली करने के लिए एक पैर ऊँचा उठा लिया। तब जगह की संकीर्णता से एक खरगोश वहाँ पर आ गया। उस खरगोश पर दया करके तुमने पैर ऊपर उठाकर रखा। 2½ दिन तक पैर ऊँचा रखने से अनुकम्पा के कारण तुम्हारा संसारपरित्त[क] हुआ और मनुष्यायु का बंध किया।[158] दावानल शांत होने पर पैर नीचा रखने का प्रयास किया, लेकिन पैर नीचे रखा नहीं गया। तुम धड़ाम से धरती पर गिर पड़े। तीन रात-दिन वेदना सहन कर तुम मेघकुमार के रूप में उत्पन्न हुए।

तुम क्रमशः युवा हुए और संयम अंगीकार किया। मेघ ! जरा चिंतन करो, जब तुम हाथी थे, तुम्हें सम्यक्त्व भी नहीं था, तब भी प्राणियों की अनुकम्पा से, जीव मात्र की अनुकम्पा से पैर अधर रखा, नीचे नहीं टिकाया। तुम सहनशील बने रहे तो इस भव में तो तुमने अपने उत्थान[ख], बल[ग], वीर्य[घ], पुरुषाकार[ङ], पराक्रम[च] से संयम लिया है। तुम्हें रात्रि में श्रमणों के हाथ का स्पर्श हुआ, पैर का स्पर्श हुआ यावत् तुम्हारा शरीर धूलि-धूसरित हो गया। तुम उसे सम्यक् प्रकार सहन न कर सके। बिना क्षुब्ध हुए सहन न कर सके। अदीन भाव से सहन न कर सके। शरीर को निश्चल रखकर सहन न कर सके।

भगवान् के वचनों को श्रवण कर शुभ परिणामों से मेघ मुनि को जाति-स्मरणज्ञान हुआ। वे अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सम्यक्रूपेण जानने लगे। हर्षान्वित होकर उन्होंने भगवान् को वंदन किया और निवेदन किया-भंते ! आप मुझे दूसरी बार प्रव्रजित करने की कृपा करावें।

तब प्रभु ने उन्हें पुनः प्रव्रजित किया और वे सम्यक्तया तप संयम में लीन रह ग्यारह अंगों का अध्ययन करने लगे।[159]

पहहस्ती : सेचनक :

मेघ मुनि की दीक्षा के पश्चात् राजा श्रेणिक के पुत्र नन्दीषेण की दीक्षा प्रभु के मुखारविन्द से हुई, ऐसा इतिहास में उल्लेख मिलता है। नन्दीषेण का जीव किस प्रकार राजघराने में जन्मा, उसके जीवन का रोचक वृत्तान्त उपलब्ध होता है, वह इस प्रकार है –

पूर्वकाल में एक यज्ञकर्ता ब्राह्मण था। उसने एक दास को नौकर रूप में रखा और उस दास से पूछा कि तू क्या लेगा? तब उसने कहा-ब्राह्मणों को

(क) संसारपरित्त-संसार कम करना (अर्थात् अर्द्धपुद्गल परावर्त संसार परिभ्रमण शेष रहना)
(ख) उत्थान-विशिष्ट शारीरिक चेष्टा (ग) बल-शारीरिक शक्ति
(घ) वीर्य-आत्म बल (ङ) पुरुषाकार-पुरुषार्थ
(च) पराक्रम-[illegible]

जिमाने के बाद जो रसोई बचे, बस, मुझे तो वह रसोई चाहिए और कुछ नहीं। ब्राह्मण ने दास की इस बात को स्वीकार कर लिया। वह ब्राह्मणों के जीमने के बाद जो भी बचता उसे अपने पास रखता और साधु-मुनिराज का योग मिलने पर सुपात्र दान देता। उसके पश्चात् खुद भोजन करता। इस प्रकार सुपात्र दान की भावना से उसने देवायु का बंध कर लिया और मृत्यु को प्राप्त होकर देवलोक में देव बन गया।

देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर वह देव श्रेणिक राजा के पुत्र नन्दीषेण के रूप में उत्पन्न हुआ। वह यज्ञकर्ता ब्राह्मण का जीव अनेक योनियों में परिभ्रमण करने लगा। इधर एक जंगल में हाथियों के यूथ में एक यूथपति हाथी दिग्गजकुमार जैसा था। वह सोचता था कि इन हाथियों का स्वामी अन्य कोई हाथी न बन जाये, इसलिए जो भी हस्ती कलभ पैदा होता तो वह जन्मते ही उसको मार डालता। एक बार यूथ में रही हुई हथिनी गर्भिणी हो गयी। यज्ञकर्ता ब्राह्मण का जीव उस हथिनी के गर्भ में आया। तब उस सगर्भा हथिनी ने विचार किया कि यह पापी यूथपति, जो भी शिशु जन्मता है, उसे मार डालता है। मैं भी जिस शिशु का प्रसव करूँगी उसे यह मार डालेगा। इसलिए मुझे अपने गर्भस्थ शिशु के संरक्षण के लिए कोई उपाय करना चाहिए। उस हथिनी का मातृ वात्सल्य हिलोरें लेने लगा। उस वात्सल्य के रस से अभिभूत होकर वह मायाजाल से पैर लंगड़ाती चलने लगी। बहुत दिनों से हाथी से मिलने लगी। हाथी ने सोचा—इस हथिनी का स्वास्थ्य ठीक नहीं, इसे विश्राम की अपेक्षा है, अतः हाथी भी निश्चिन्त-सा बन गया।

एक बार वह यूथपति हस्ती दूर चला गया और हथिनी अपने मस्तक पर तृण का पूला लेकर तपस्वियों के आश्रम में आयी। उसे स्खलित पैर से चलते हुए देखकर तपस्वियों के मन में करुणा का संचार हुआ और वे तपस्वी उसकी परिचर्या करने लगे। समय आने पर उसने एक सुन्दर हस्ती शिशु को जन्म दिया।

हथिनी अपने बच्चे की रक्षा के लिए उसे आश्रम में छोड़कर अपने यूथ में चली गयी और स्वस्थता का अनुभव करने लगी। अवसर देखकर गुप्त रीति से आश्रम में अपने शिशु को दुग्धपान कराने, उसकी परिचर्या करने जाती थी। वह बाल कलभ शनैः-शनैः तपस्वी आश्रम में बड़ा होने लगा।

तपस्वी उस बाल कलभ को पक्व, नीवार[क] तथा शल्लकी[ख] के कवल खिलाकर अत्यन्त प्रेम से पालन कर रहे थे। वह हस्ती-शिशु भी तपस्वियों के साथ क्रीड़ा करता था। अपनी सूँड में जल से परिपूर्ण घड़े लता और वृक्षों का सिंचन करता

(क) नीवार–तृण धान्य (ख) शल्लकी–एक वृक्ष विशेष जो हार्थियों को बहुत प्रिय है।

था। तपस्वियों ने वृक्षों का सिंचन करने से उसका नाम सेचनक रख दिया। वह सेचनक प्रमाणोपेत अंगों वाला, सौम्य, सुन्दर रूप वाला, ऊँचे मस्तक वाला, सुखद स्कन्ध वाला था। उसका पिछला भाग वराह[क] के समान नीचे झुका हुआ था। वह लम्बे उदर वाला, लम्बे होंठ वाला एवं लम्बी सूँड वाला था। उसकी पीठ खींचे हुए धनुष के समान आकृति वाली थी। सारे शरीर के अवयव गोल, पुष्ट एवं प्रमाणोपेत थे। पूंछ चिपकी हुई थी। पैर कछुए जैसे परिपूर्ण एवं मनोहर थे। बीसों नाखून श्वेत, निर्मल, चिकने एवं निरुपहत[ख] थे। उसके उज्ज्वल दाँत निकलने लगे थे। शनैः-शनैः तरुणाई को प्राप्त वह अत्यन्त सुन्दर दिखने लगा।

एक बार वह तरुण सेचनक हस्ती नदी के तीर पर पानी पीने के लिए गया। संयोग से उसे वहाँ आपगा के तट पर वह यूथपति हस्ती दिखाई दिया। तब सेचनक ने देखा, यह कहाँ से आया है? इसके साथ युद्ध करना चाहिए और यूथपति ने सोचा कि यह दूसरा हस्ती कहाँ से आया? इसके साथ युद्ध करना चाहिए। दोनों परस्पर युद्ध करने लगे। सेचनक अतीव बलशाली था। उसने दाँतों के स्वल्प प्रहार से यूथपति को मार डाला और स्वयं यूथ का मालिक बन गया।

एक दिन उसने विचार किया कि मेरी माता ने जैसे कपट करके मुझे आश्रम में रखा, बड़ा होकर मैंने मेरे पिता को मार डाला, वैसे ही कोई सगर्भा हथिनी इस आश्रम में कपट से किसी हाथी को रखेगी तो वह भी मुझे मार डालेगा इसलिए इस आश्रम को ही नष्ट कर देना चाहिए।

यही सोच वह तपस्वियों के आश्रम को नष्ट-भ्रष्ट करने लगा। जहाँ जन्मा, जिन तपस्वियों ने अपने हाथों से कौर देकर जिसे बड़ा किया, जिन तपस्वियों ने उसकी निरन्तर परिचर्या की, आज वह उन तपस्वियों के आश्रम को अपनी मृत्यु को रोकने के लिए छिन्न-भिन्न कर रहा है। मृत्यु ! उसे तीर्थंकर भगवान् भी रोक नहीं पाये। उसे कौन रोक सकता है। वह तो शाश्वत सत्य है लेकिन आश्चर्य है कि मरणशील प्राणी भी मरना नहीं चाहता और अमर बनने के लिए किस-किस प्रकार प्रयास कर लेता है।

वह सेचनक अब तपस्वियों के लिए कष्टदायी बन गया। प्रतिदिन आश्रम की शोभा को छिन्न-भिन्न करने लगा। यहाँ तक कि तपस्वियों का रहना भी दुष्कर हो गया। तब अन्यन्त खिन्न होकर तपस्वी राजा श्रेणिक के पास पहुँचे और उन्होंने सम्राट् से निवेदन किया–राजन् ! एक हस्ती सर्व-लक्षणों से सम्पन्न राजकार्यों में काम आने योग्य है। वह मदोन्मत्त बना आश्रम को छिन्न-भिन्न कर रहा है। यदि आप उसे यहाँ ले आते हैं तो राज्य की शोभा में भी चार चाँद लग जायेंगे और हम तपस्वी भी सुख-शांतिपूर्वक अरण्य में निवास करेंगे।

(क) वराह–सूअर (ख) निरुपहत–रोगादि से मुक्त

तपस्वियों की वार्ता श्रवण कर राजा बोला–राजकर्मचारियों सहित मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलता हूँ। यों कहकर राजा तपस्वियों के साथ चल देता है। वहां जाकर सेचनक को पकड़ लेते हैं। उसे राज्य में लाते हैं और उसके पैरों में साँकल बाँध देते हैं। सेचनक अपनी सूँड, पूंछ और कानों को स्थिर कर आसानी से साँकल बँधवा लेता है। तब तपस्वी सेचनक को सांकलों से आबद्ध देखकर तिरस्कार करते हैं। अरे "खल ! तू कितना अधम" है ! हमने तुझे कितने यत्नों से पाला और तूने हमारे ही आश्रम को छिन्न-भिन्न किया। इसी का दुष्परिणाम तुझे भोगना पड़ रहा है। अरण्य के सुख का त्याग कर सांकलों में बंधा रहना पड़ रहा है।

सेचनक सोचता है, जरूर इन तपस्वियों ने राजा से मेरी शिकायत की है, इसीलिए राजा ने मुझे सॉकलों से बांधा है, अतः मैं अब इन तपस्वियों को मजा चखाता हूँ। ऐसा विचार कर उसने तड़ातड़-तड़ातड़ बंधन तोड़ दिये। बंधनमुक्त बनकर उसने तपस्वियों को उठा-उठाकर दूर फेंक दिया और स्वयं जंगल की ओर भाग गया।

राजा श्रेणिक उस हाथी को वश में करने के लिए अश्वारूढ़ होकर अपने पुत्रों आदि सहित जंगल में गया और चारों तरफ से उसे घेर लिया। वह हाथी मानो व्यन्तर के प्रकोप से ग्रस्त हो, इस प्रकार अपने प्रबल बल का परिचय देता हुआ सभी महावतों का तिरस्कार करता हुआ मदोन्मत्त बना हुआ, किसी के वशीभूत नहीं होता हुआ भयंकर उछल-कूद मचा रहा था। तब नन्दीषेण ने उसे बड़े प्रेम से सम्बोधित किया। नन्दीषेण की वाणी को श्रवण कर उसे अवधिज्ञान हुआ। किन्हीं आचार्यों के मतानुसार उसे जाति-स्मरण ज्ञान पैदा हो गया और वह बिलकुल शांत, प्रशांत बन गया।

तब नन्दीषेण उसके समीप आया, दाँत पर पैर रखकर आरूढ़ हुआ और सेचनक के कुंभ-स्थल" पर तीन बार मुष्टि से प्रहार किया जिससे मानो वह हस्ती पूर्ण शिक्षित हो गया। अब उसे राज्य में लाते हैं और राजा उसे अपने पट्टहस्ती के रूप में नियुक्त कर देता है। इधर श्रेणिक राजा राज्य का संचालन कर रहा है, उधर राजगृह में भगवान् पधारे हुए हैं। मेघकुमार ने संयम अंगीकार कर लिया है।

जागरण : नंदीषेण का :

एक दिन नन्दीषेणकुमार भी भगवान् महावीर की धर्मदेशना श्रवण करने गया। भगवान् की देशना श्रवण करके नन्दीषेण विरक्त बना और घर आकर

(क) खल–दुश्मन (ख) अधम–पापी
(ग) कुंभ स्थल–हाथी का मस्तक–ललाट स्थल

उसने माता-पिता से संयम ग्रहण करने की आज्ञा माँगी। माता-पिता ने अनेक युक्तियों से नन्दीषेण को समझाने का प्रयास किया, लेकिन जब वह नहीं माना तो माता-पिता ने संयम की अनुमति दे दी। तब आकाशवाणी हुई—नन्दीषेण! अभी तुम्हारे भोगावली कर्म अवशिष्ट हैं, अतः कुछ समय गृहस्थ में रहने के पश्चात् संयम ग्रहण करना।

नन्दीषेण का वैराग्य-भाव प्रबल था। उसमें लीन बना वह सोचने लगा—मेरा संकल्प दृढ़ है, मैं श्रेष्ठ चारित्र पर्याय का पालन करूँगा तो कर्म स्वतः ही नष्ट हो जायेंगे।

पुनः देववाणी हुई—नन्दीषेण ! तुम मेरी बात मान लो, मेरी भविष्यवाणी मिथ्या नहीं होगी।

नन्दीषेण ने इस आकाशवाणी की उपेक्षा की और वह भगवान् के पास आकर संयम ग्रहण कर लेता है। किन्हीं-किन्हीं आचार्यों की यह धारणा है कि नन्दीषेण को संयम लेने के लिए भगवान् ने मना किया, परन्तु प्रबल योग होने से उसने चारित्र अंगीकार कर लिया। यह बात कम संगत लगती है, क्योंकि भगवान् तो प्रबल योग को जान ही रहे थे, फिर मना करने का कोई औचित्य नहीं दिखता।

नन्दीषेण मुनि अब संयम में सतत जागरूक रहने लगे। तपस्या से उन्होंने अपने शरीर को कृशकाय[क] बना लिया। वे तप-तेज से अत्यन्त तेजोमय शरीर वाले बन गये। लेकिन निकाचित[ख] भोगावली कर्मों का उदय होने वाला था। अब इन्द्रियों के विषय नन्दीषेण के मन को विह्वल बनाने लगे। तब सोचा—असंयम में जाने से संयम में मरना अच्छा है, तब कभी वे शस्त्र से घात करने की सोचते तो देवता शस्त्र को धार रहित बना देते। जब अग्नि में कूदते तो देवता उसे शीतल बना देते। पर्वत से गिरने का प्रयास करते तो देवता बचा लेते और कहते—नन्दीषेण! तुम्हारें निकाचित कर्मों का भोग अभी बाकी है और वह भोग तो तीर्थंकर भगवंतों को भी भोगना पड़ता है। नन्दीषेण मुनि अब भी देवों की बात मानने को तैयार नहीं था।

एक बार एकाकी विहार करने वाले नन्दीषेण मुनि बेले-बेले पारणा करते थे। बेले के पारणे में एक दिन मुनि नन्दीषेण अनाभोग[ग] दोष से प्रेरित होकर गणिका के भवन में संयोगवश पहुँच गये और गणिका को सद्धर्म के लिए सम्बोधित किया। तब गणिका ने कहा—मुझे धर्म नहीं, धन चाहिए और वह मुनि की कृशकाया को देखकर खिलखिला कर हँस पड़ी। तब मुनि ने उसके उपहास को शांत करने के

(क) कृशकाय-दुबला-पतला (ख) निकाचित-जिनका विपाकोदय होता, ऐसे कर्म
(ग) अनाभोग-अनजान

लिए एक तिनका लिया और पूर्वोपार्जित लब्धि से रत्नों का ढेर कर दिया। मुनि नन्दीषेण रत्न ढेर कर लौटने लगे तो गणिका ने कहा–प्राणनाथ ! आप कहाँ पधार रहे हैं। आप चले जायेंगे तो मैं अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूंगी। एक क्षण भी आपके बिना एकाकी रहने में मैं समर्थ नहीं हूँ। यों विविध प्रकार से विलाप करती हुई अपने कटाक्षों से मुनि को वश में कर लेती है।

मुनि भी उसके प्रेम-पाश में बंधकर प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं प्रतिदिन दस व्यक्तियों को प्रतिबोध देकर प्रव्रज्या के लिए भगवान् महावीर के पास भेजूँगा और जिस दिन दस व्यक्ति तैयार नहीं होंगे उस दिन पुनः संयम ले लूँगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके संयम वेश का परित्याग कर गणिका के साथ भोग भोगने लगते हैं।

नन्दीषेण मुनि दस व्यक्तियों को प्रतिबोध देने के पश्चात् ही भोजन ग्रहण करते हैं। ऐसा करते-करते उनके एक दिन भोगावली[क] कर्म क्षय हो गये। तब नौ व्यक्ति ही उनके प्रतिबोध से तैयार हुए। अत्यधिक प्रतिबोध देने पर भी दसवाँ व्यक्ति तैयार नहीं हुआ। इधर भोजन तैयार होने पर गणिका ने बुलावा भेजा, लेकिन नन्दीषेण अपना अभिग्रह पूर्ण नहीं होने से नहीं गये और वे सोनी को प्रतिबोध देने लगे। तब अत्यधिक देर होने से गणिका स्वयं आई और बोली–स्वामिन! मैंने पहले रसोई तैयार की वो खराब हो गयी, पुनः दुबारा भोजन बनाया वो नीरस हो जायेगा। इसलिए आप भोजन ग्रहण कर लो। नन्दीषेण ने कहा–नहीं, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न हो पाई, इसलिए मैं संयम अंगीकार करूँगा। ऐसा कह कर नन्दीषेण भगवान् महावीर के श्रीचरणों में चले जाते हैं और आलोचना करते हुए संयम अंगीकार कर लेते हैं।[107]

राजकुमार मेघ एवं नन्दीषेण अपनी संयमी यात्रा का आनन्दपूर्वक निर्वहन कर रहे हैं। भगवान् के चरणों में सर्वतोभावेन समर्पित बनकर अपनी आत्मा पर लगे कर्मों का आवरण दूर करने में तत्पर हैं और भगवान् महावीर ने राजगृह वर्षावास में अनेक भव्यात्माओं को धर्म-पथ पर अग्रसर कर जीवन में शाश्वत सुख पाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। आत्मकल्याणकारी मार्ग बताकर भव्यात्माओं का उद्धार कर भगवान् महावीर समीपवर्ती क्षेत्र में विचरण कर रहे हैं।

राजगृह का सम्राट् श्रेणिक भगवान् महावीर का अनन्य उपासक बन गया और महारानी चेलना तो विवाह पूर्व ही जिन-धर्मानुरागिणी थी लेकिन राजा श्रेणिक के चारित्र मोहनीय कर्म का प्रगाढ़ उदय था, जिसके कारण वह श्रावक व्रत भी अंगीकार न कर सका। उसके मोहनीय कर्म का उदय था और भोगावली कर्म अवशिष्ट थे। इसलिए वह महारानी चेलना के प्रणय सूत्र में आबद्ध रहता था। वह

(क) भोगावली–भोगने योग्य

उसने माता-पिता से संयम ग्रहण करने की आज्ञा माँगी। माता-पिता ने अनेक युक्तियों से नन्दीषेण को समझाने का प्रयास किया, लेकिन जब वह नहीं माना तो माता-पिता ने संयम की अनुमति दे दी। तब आकाशवाणी हुई—नन्दीषेण ! अभी तुम्हारे भोगावली कर्म अवशिष्ट हैं, अतः कुछ समय गृहस्थ में रहने के पश्चात् संयम ग्रहण करना।

नन्दीषेण का वैराग्य-भाव प्रबल था। उसमें लीन बना वह सोचने लगा—मेरा संकल्प दृढ़ है, मैं श्रेष्ठ चारित्र पर्याय का पालन करूँगा तो कर्म स्वतः ही नष्ट हो जायेंगे।

पुनः देववाणी हुई—नन्दीषेण ! तुम मेरी बात मान लो, मेरी भविष्यवाणी मिथ्या नहीं होगी।

नन्दीषेण ने इस आकाशवाणी की उपेक्षा की और वह भगवान् के पास आकर संयम ग्रहण कर लेता है। किन्हीं-किन्हीं आचार्यों की यह धारणा है कि नन्दीषेण को संयम लेने के लिए भगवान् ने मना किया, परन्तु प्रबल योग होने से उसने चारित्र अंगीकार कर लिया। यह बात कम संगत लगती है, क्योंकि भगवान् तो प्रबल योग को जान ही रहे थे, फिर मना करने का कोई औचित्य नहीं दिखता।

नन्दीषेण मुनि अब संयम में सतत जागरूक रहने लगे। तपस्या से उन्होंने अपने शरीर को कृशकाय[क] बना लिया। वे तप-तेज से अत्यन्त तेजोमय शरीर वाले बन गये। लेकिन निकाचित[ख] भोगावली कर्मों का उदय होने वाला था। अब इन्द्रियों के विषय नन्दीषेण के मन को विह्वल बनाने लगे। तब सोचा—असंयम में जाने से संयम में मरना अच्छा है, तब कभी वे शस्त्र से घात करने की सोचते तो देवता शस्त्र को धार रहित बना देते। जब अग्नि में कूदते तो देवता उसे शीतल बना देते। पर्वत से गिरने का प्रयास करते तो देवता बचा लेते और कहते—नन्दीषेण! तुम्हारे निकाचित कर्मों का भोग अभी बाकी है और वह भोग तो तीर्थंकर भगवंतों को भी भोगना पड़ता है। नन्दीषेण मुनि अब भी देवों की बात मानने को तैयार नहीं था।

एक बार एकाकी विहार करने वाले नन्दीषेण मुनि बेले-बेले पारणा करते थे। बेले के पारणे में एक दिन मुनि नन्दीषेण अनाभोग[ग] दोष से प्रेरित होकर गणिका के भवन में संयोगवश पहुँच गये और गणिका को सद्धर्म के लिए सम्बोधित किया। तब गणिका ने कहा—मुझे धर्म नहीं, धन चाहिए और वह मुनि की कृशकाया को देखकर खिलखिला कर हँस पड़ी। तब मुनि ने उसके उपहास को शांत करने के

(क) कृशकाय-दुबला-पतला (ख) निकाचित-जिनका विपाकोदय होता, ऐसे कर्म
(ग) अनाभोग-अनजान

लिए एक तिनका लिया और पूर्वोपार्जित लब्धि से रत्नों का ढेर कर दिया। मुनि नन्दीषेण रत्न ढेर कर लौटने लगे तो गणिका ने कहा–प्राणनाथ ! आप कहाँ पधार रहे हैं। आप चले जायेंगे तो मैं अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूँगी। एक क्षण भी आपके बिना एकाकी रहने में मैं समर्थ नहीं हूँ। यों विविध प्रकार से विलाप करती हुई अपने कटाक्षों से मुनि को वश में कर लेती है।

मुनि भी उसके प्रेम-पाश में बंधकर प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं प्रतिदिन दस व्यक्तियों को प्रतिबोध देकर प्रव्रज्या के लिए भगवान् महावीर के पास भेजूँगा और जिस दिन दस व्यक्ति तैयार नहीं होंगे उस दिन पुनः संयम ले लूँगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके संयम वेश का परित्याग कर गणिका के साथ भोग भोगने लगते हैं।

नन्दीषेण मुनि दस व्यक्तियों को प्रतिबोध देने के पश्चात् ही भोजन ग्रहण करते हैं। ऐसा करते-करते उनके एक दिन भोगावली[क] कर्म क्षय हो गये। तब नौ व्यक्ति ही उनके प्रतिबोध से तैयार हुए। अत्यधिक प्रतिबोध देने पर भी दसवाँ व्यक्ति तैयार नहीं हुआ। इधर भोजन तैयार होने पर गणिका ने बुलावा भेजा, लेकिन नन्दीषेण अपना अभिग्रह पूर्ण नहीं होने से नहीं गये और वे सोनी को प्रतिबोध देने लगे। तब अत्यधिक देर होने से गणिका स्वयं आई और बोली–स्वामिन! मैंने पहले रसोई तैयार की वो खराब हो गयी, पुनः दुबारा भोजन बनाया वो नीरस हो जायेगा। इसलिए आप भोजन ग्रहण कर लो। नन्दीषेण ने कहा–नहीं, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न हो पाई, इसलिए मैं संयम अंगीकार करूँगा। ऐसा कह कर नन्दीषेण भगवान् महावीर के श्रीचरणों में चले जाते हैं और आलोचना करते हुए संयम अंगीकार कर लेते हैं।[160]

राजकुमार मेघ एवं नन्दीषेण अपनी संयमी यात्रा का आनन्दपूर्वक निर्वहन कर रहे हैं। भगवान् के चरणों में सर्वतोभावेन समर्पित बनकर अपनी आत्मा पर लगे कर्मों का आवरण दूर करने में तत्पर हैं और भगवान् महावीर ने राजगृह वर्षावास में अनेक भव्यात्माओं को धर्म-पथ पर अग्रसर कर जीवन में शाश्वत सुख पाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। आत्मकल्याणकारी मार्ग बताकर भव्यात्माओं का उद्धार कर भगवान् महावीर समीपवर्ती क्षेत्र में विचरण कर रहे हैं।

राजगृह का सम्राट् श्रेणिक भगवान् महावीर का अनन्य उपासक बन गया और महारानी चेलना तो विवाह पूर्व ही जिन-धर्मानुरागिणी थी लेकिन राजा श्रेणिक के चारित्र मोहनीय कर्म का प्रगाढ़ उदय था, जिसके कारण वह श्रावक व्रत भी अंगीकार न कर सका। उसके मोहनीय कर्म का उदय था और भोगावली कर्म अवशिष्ट थे। इसलिए वह महारानी चेलना के प्रणय सूत्र में आबद्ध रहता था। वह

(क) भोगावली–भोगने योग्य

अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करके रति-सुख का अनुभव करता था। कभी जलक्रीड़ा करता हुआ कृष्णराज के समान उसकी विशाल केश राशि को खोलता और कभी बाँधता तो कभी केशर-कस्तूरी से उसके गात्र पर आलेखन करता था। कभी मधुर-मधुर प्रणयालाप से चेलना को समाकृष्ट बनाने में आतुर रहता था।

भयंकर शिशिर ऋतु का समागम हो चुका था। उत्तरदिग्गामी शीतल पवन कलेजे में ठिठुरन पैदा करने लगा। श्रीमंत लोग अंगीठी जलाकर, गात्र पर केशर आदि का विलेपन कर, शीतकालीन वस्त्रों को धारण कर, गर्भगृह में बैठकर शीतकाल का समययापन करने लगे।

परन्तु निर्धन लोग, जिनके लिए शिशिरकाल अभिशाप बन कर उपस्थित हुआ, पहनने-ओढ़ने के वस्त्रों के अभाव में बड़े, बूढ़े, बालक ठिठुर-ठिठुर कर बैठे-बैठे जाड़े की रातें व्यतीत कर रहे थे। घर में रहे हुए दरवाजों के अभाव में टाट-पट्टियों से छनकर आने वाली हवा कलेजे में तीर की तरह चुभन पैदा कर रही थी। झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाले लोग काल-रात्रियों की तरह इन शीतकालीन रात्रियों को घास-फूस जलाकर जैसे-तैसे व्यतीत कर रहे थे।

ऐसे शीतकाल की प्रचण्डता में साधक-जीवन में घोर परीषह पैदा होते हैं। मात्र 72 हाथ वस्त्र[161] साधु के लिए और 96 हाथ वस्त्र[162] साध्वी के लिए रखने की भगवान् की आज्ञा है। इतने सीमित वस्त्र, रजाई-बिस्तर का परित्याग, पैर में जूते-चप्पल पहनने का त्याग और किसी भी प्रकार की अग्नि का सेवन नहीं करना।[163] कितनी कठिन चर्या, तिस पर जैसा स्थान मिल जाये वहीं पर रहना और स्वयं के लिए निर्मित आहार-पानी ग्रहण नहीं करना। अहो ! कितनी कृच्छ साधना है, परन्तु आत्माभिमुखी साधक देह पर रहे हुए ममत्व का परित्याग कर देता है। इसलिए वह शीतकालीन परीषह को समभावपूर्वक सहन करता हुआ अपनी निर्दोष संयमीचर्या का पालन करता है।

इसी शिशिर ऋतु की कँपकँपाती ठंड में विचरण करते हुए भगवान् महावीर पधारे। प्रभु के पधारने के समाचारों को श्रवण कर राजा श्रेणिक एवं चेलना भगवान् को वंदन-नमस्कार करने हेतु गये। जब वे प्रभु को वंदन- नमस्कार करके पुनः लौट रहे थे तो दोपहर व्यतीत हो चुका था। रास्ते में उन्होंने एक प्रतिमाधारी मुनि को उत्तरीय[क] रहित जलाशय से कुछ दूर शीत की आतापना लेते हुए देखा। उन्हें देखकर श्रेणिक एवं चेलना वंदन-नमस्कार करने के लिए रथ से नीचे उतरते हैं और वंदन- नमस्कार करके पुनः रथारूढ़ होते हैं।

(रथ में) चेलना—अरे धन्य हैं! मुनिराज को जो इस भयंकर शीतकाल में आतापना ले रहे हैं।

(क) उत्तरीय- ओढ़ने का वस्त्र

श्रेणिक–हाँ, मुनि-जीवन की साधना सर्वोत्तम है। भगवान् महावीर के साधकों की चर्या अत्यन्त क्लिष्ट है।

चेलना–देह-ममत्व-परित्याग का यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्रेणिक–हाँ, मुनि इन्द्रिय विजेता होते हैं, इसी कारण वे कर्मवृन्द को समाप्त कर अनुत्तर गति[क] को प्राप्त करते हैं।

चेलना–ऐसे शीतकाल में अपने को कोई बिस्तर का परित्याग करना पड़े तो.........

श्रेणिक–सुदुष्कर है, सुदुष्कर है।

(पथ समाप्त हो जाता है, दोनों राजभवन में चले जाते हैं)

महलों में आग :

कुछ ही समय पश्चात् सूर्य अस्ताचल की ओर चला जाता है। रात्रि के आगमन के साथ ही शीतल पवन के झोंके शरीर में कम्पन्न पैदा कर रहे हैं। कर्पूर की धूप से सुवासित वासगृह[ख] में श्रेणिक अपना राजकीय कार्य सम्पूर्ण कर चला जाता है और जहाँ चेलना शयन कर रही थी, वहीं जाकर स्वयमेव विश्राम करने लगता है। अर्धरात्रि के समय नींद में श्रेणिक के शीतल हाथ का स्पर्श चेलना के लगता है तो उसके मुँह से सीत्कार की ध्वनि निकलती है। उसी समय चेलना को प्रतिमाधारी मुनि का स्मरण हो आता है और मुँह से शब्द निकलते हैं–"अरे ! कितनी जबरदस्त ठंड है। इस ठंड में उनका क्या होगा?" ऐसा बोलकर पुनः सो जाती है।

राजा श्रेणिक चेलना के इन शब्दों को श्रवण कर भ्रमित हो जाता है और चिंतन करता है वस्तुतः चेलना दुराचारिणी स्त्री है। मैं इससे कितना प्रेम करता हूँ और यह........... किसी दूसरे का स्मरण कर रही है। अब क्या करना चाहिए. .... इसको कोई कड़ी सजा देनी चाहिए........... क्या सजा दूँ........... क्या सजा दूँ। बस, इसी उधेड़-बुन में सम्पूर्ण रात्रि जगते-जगते व्यतीत कर देता है।

प्रातःकाल होने पर सम्राट् श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाया। तब अभयकुमार ने तुरन्त उपस्थित होकर पितृ चरणों में प्रणाम किया और कहा–पिताश्री ! आदेश दीजिए, आपने किस कारण याद किया है?

श्रेणिक–अभय ! मेरा पूरा अन्तःपुर दुराचार से दूषित है। इसलिए तू अभी समस्त अन्तःपुर को जला देना। इस कार्य को करते हुए अपनी माताओं के प्रति जरा भी ममत्व मत रखना।

(क) अनुत्तर गति–मोक्ष

(ख) वासगृह–शयनकक्ष

अभयकुमार "जो आज्ञा" कहकर चल देता है।

राजा श्रेणिक के मन में उथल-पुथल मची है कि आखिरकार चेलना का वह प्रेमी है कौन जिसे वह नींद में भी स्मरण करती है। यह किससे जानकारी करूँ.......... सहसा राजा श्रेणिक को भगवान् महावीर का स्मरण होता है और चिंतन करता है कि इन सबका यथोचित समाधान भगवान् के श्रीचरणों में मिल सकता है। ऐसा सोचकर श्रेणिक राजा भगवान् महावीर के समीप पहुँचा।

इधर अभयकुमार ने सोचा—यद्यपि मेरी समस्त माताएँ शील की देवियाँ हैं, लेकिन फिर भी पिता की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है। अतः ऐसा करूँ जिससे पितृ-आज्ञा का पालन भी हो जाये और माताओं के शील की रक्षा भी। यही सोच अभयकुमार ने हाथी बाँधने की जीर्ण शालाओं में आग लगा दी, जो अन्तःपुर के पास थी और उद्घोषणा कर दी कि अन्तःपुर जल रहा है।

राजा श्रेणिक भगवान् के समीप पहुँच चुके हैं। अवसर देखकर प्रभु से प्रश्न करते हैं—भगवन ! चेलना एक पति वाली है या अनेक पति वाली?

प्रभु ने फरमाया—श्रेणिक ! शीलधर्म का पालन करने वाली चेलना एक पतिवाली है, उस पर संदेह करना व्यर्थ है। तब श्रेणिक राजा दौड़ता हुआ अपने नगर की ओर जाने लगा। मार्ग में ही अभयकुमार मिल गया। उसे देखते ही श्रेणिक ने पूछा—अरे ! क्या अन्तःपुर में आग लगा दी?

अभय—हाँ पिताश्री, मैंने आपके आदेश का पालन किया है।

श्रेणिक (आवेश में)—अरे माताओं के मर जाने पर तू जिन्दा कैसे है? तू उस आग में कूदकर क्यों नहीं मरा?

अभय—पिताश्री मैंने तो भगवान् के वचनों को जीवन में उतारा है। मैं अकाल मृत्यु नहीं मरूँगा। मुझे तो अवसर आने पर प्रभु की सन्निधि में संयम अंगीकार करना है।

श्रेणिक—अरे ! यह बहुत बुरा हुआ.......... बहुत खराब हुआ। ऐसा कहते-कहते श्रेणिक मूर्च्छित हो गया।

अभयकुमार ने हवा आदि करके राजा को होश दिलाया और होश आने पर कहा—पिताश्री, मेरी माताएँ अंतःपुर में सुरक्षित हैं। यद्यपि आपने उन्हें जलाने की आज्ञा दी थी लेकिन मैंने अन्तःपुर में आग लगाने के बजाय समीपवर्ती जीर्ण हस्तीशालाओं में आग लगा दी। यह मेरा अपराध हुआ कि मैंने आपकी आज्ञा का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया।

श्रेणिक–अभय ! तुझे बार-बार साधुवाद है। तू वास्तव में मेरा अतिजात[क] पुत्र है। चल, अब अन्तःपुर की ओर चलते हैं।[164]

श्रेणिक और अभयकुमार चेलना के पास जाते हैं। तब श्रेणिक पूछता है–चेलना, रात्रि में तू बोल रही थी, उनका क्या हो रहा होगा? उसका तात्पर्य?

चेलना–राजन् ! शीत भयंकर थी, तब उस समय आपका ठंडे हाथ का स्पर्श हुआ तो मेरे मुँह से सीत्कार निकली। मैंने चिंतन किया कि मखमली गद्दे-रजाइयों में मैं मात्र शीत हस्त-स्पर्श से सीत्कार करने लगी तब शीतकालीन आतापना लेने वाले उन प्रतिमाधारी मुनि का क्या होता होगा?

श्रेणिक–ओह ! कितना धर्म का अनुराग है कि नींद में साधुओं के प्रति तुम्हारा जबरदस्त अहोभाव। तुम वस्तुतः जिन-धर्मानुरागिनी हो, जिनेश्वर उपासिका हो। इस प्रकार वार्तालाप से वातावरण हर्षमय बन जाता है।

एक स्तम्भ प्रासाद :

चेलना के गुणों को देखकर श्रेणिक का मन-मधुप निरन्तर उसकी ओर समाकृष्ट होने लगा और वह प्रणय के वातायन में झाँककर देखने लगा कि चेलना मुझे सर्वाधिक प्रिय है। अतएव उसके लिए एक स्तम्भ पर बनने वाले प्रासाद का निर्माण करवाऊँ जिससे वह मानो विमान में रहने वाली देवी की तरह स्वेच्छा से क्रीड़ा कर रही है।

ऐसा विनिश्चय करके श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाया और कहा–वत्स! चेलनादेवी के लिए एक स्तम्भ वाले प्रासाद का निर्माण करवाओ।

अभय–जैसी आज्ञा ! यों कहकर अभयकुमार वहाँ से चल दिया।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने सूत्रधार[ख] को बुलाया और कहा–तुम जंगल में जाओ और एक स्तम्भ पर महल का निर्माण हो सके ऐसा काष्ठ लेकर आओ।

जैसी आज्ञा ! यों कहकर सूत्रधार जंगल में गया और वहाँ जाकर वृक्ष का चयन करने के लिए प्रत्येक वृक्ष का निरीक्षण करने लगा। निरीक्षण करते-करते वह एक उत्तम लक्षण वाले वृक्ष के पास पहुँच गया। उसे देखकर विचार किया कि घनी छाँव वाला, गगनचुम्बी, फल-फूलों से लदी डालियों वाला, मोटी शाखा वाला, विशाल स्कन्ध वाला यह वृक्ष सामान्य नहीं है। इस वृक्ष पर अवश्यमेव किसी व्यन्तर देव का निवास-स्थान है।

अतएव सर्वप्रथम इस देव की आराधना करनी चाहिए, उसके पश्चात् वृक्ष

(क) अतिजात–कुल के गौरव में वृद्धि करने वाला (ख) सूत्रधार–बढई, दस्तकार

का छेदन, ताकि मेरे और मेरे स्वामी के कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जायें। इस प्रकार चिंतन करके उस बढ़ई ने उपवास किया। उपवास करके गंध, धूप, माल्यादि से उस वृक्ष को सुवासित किया। तभी वृक्ष आश्रित व्यन्तर देव अपने आश्रय की रक्षा के लिए अभयकुमार के पास आया और बोला–कुमार ! तुम उस बढ़ई को मना करो। जिस वृक्ष का वह छेदन करने जा रहा है, वह वृक्ष मेरा आश्रयभूत है। मैं स्वयं तुम्हारी महारानी के लिए एक स्तम्भ वाले प्रासाद का निर्माण करवा दूँगा। साथ ही सर्वऋतुओं से मंडित, सर्व-वनस्पतियों से शोभित नन्दनवन जैसा उद्यान भी बना डालूँगा।

अभयकुमार ने देव से कहा–"ठीक है।" देव अपने स्थान पर लौट गया और अभयकुमार ने बढ़ई को जंगल से बुला लिया। उसने बढ़ई से कहा–हमारा सर्वकार्य सिद्ध हो गया है, अब हमें प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है। बढ़ई अपने स्थान को लौट गया।

व्यन्तर देव वचनबद्ध था। उसने अपने वचनानुसार अतिशीघ्र एक स्तम्भ वाले प्रासाद का एवं नन्दनवन सम उद्यान का निर्माण कर दिया और अभयकुमार से कहा–कुमार, मैंने अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रासाद व उद्यान का निर्माण कर दिया है।

अभयकुमार देव से यह श्रवण कर सम्राट् के पास गये और व्यन्तर द्वारा प्रासाद एवं उद्यान के निर्माण की बात बताई। श्रेणिक यह श्रवणकर अत्यन्त प्रमुदित हुआ। उसने चेलना को वह प्रासाद समर्पित कर दिया और स्वयं वहाँ चेलनादेवी के साथ विपुल भोग भोगने लगा।

आम्रहरण : विद्याग्रहण :

राजगृह नगर में अनेक व्यक्ति अनेक कला-कौशल से सम्पृक्त थे। यहाँ एक मातंग नामक विद्या-सिद्ध व्यक्ति रहता था। एक बार उसकी पत्नी सगर्भा हुई। तब उसे दोहद पैदा हुआ–आम्रफल खाने का। उसने अपने पति से कहा–स्वामिन् ! मुझे दोहद पैदा हुआ है–आम्रफल खाने का।

पति बोला–देवी ! अकाल में आम्रफल कहाँ मिलेगा?

उसकी पत्नी बोली–आप चेलना के उद्यान में जाओ, वहाँ आम्रफल मिल जायेगा।

उसने कहा–ठीक है। ऐसा कहकर वह चेलना के उद्यान के पास आया। वहाँ उसने देखा आम्रवृक्ष पर परिपक्व आम्रफल लटक रहे थे, लेकिन वह वृक्ष बहुत ऊँचा था और उद्यान से बाहर रहकर उसमें से तोड़ना संभव नहीं था। वह वहाँ देखकर चला गया। रात्रि में आया, अपनी विद्या से डाली नीचे की और स्वेच्छा से आम्रफल तोड़कर घर ले गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल महारानी चेलना सदा की भाँति उद्यान में परिभ्रमण करने लगी। अनेक तरुवृन्दों की शोभा निहारती-निहारती वह आम्रवृक्ष के समीप पहुँची। आम्रवृक्ष की ओर दृष्टि जाते ही वह दंग रह गयी। सोचने लगी–अरे यह क्या? किसने आम्रफल चुराये? इतने आम्र बगीचे में से कहाँ गायब हो गये? वह सोच-सोचकर बेचैन हो गयी, लेकिन उसे समाधान नहीं मिला। आखिरकार वह राजा श्रेणिक के पास पहुँच गयी। श्रेणिक ने चेलना को देखकर पूछा–इस समय तुम यहाँ?

चेलना–अरे ! क्या बताऊँ, वाटिका में से कोई व्यक्ति आम्रफल चुरा कर ले गया है। लगता है कोई शातिर चोर है।

श्रेणिक–कब ले गया?

चेलना–लगता है, रात्रि में ले गया क्योंकि कल सुबह तक तो सब-कुछ ठीक था।

श्रेणिक–अच्छा, चोर का पता लगाता हूँ।

श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से कहा–अभय ! चेलना की वाटिका में से कोई आम्रफल चुराकर ले गया है। वृक्ष की डालियाँ ऊँची थी, लगता है किसी विद्या के बल से उसने डालियाँ नीची करली और आम्रफल चुरा लिये। उस चोर का पता लगाना जरूरी है। वह असामान्य चोर अन्तःपुर में भी कभी चोरी कर सकता है।

अभयकुमार–पिताश्री थोड़े समय में ही चोर का पता लगाता हूँ। यों कहकर अभयकुमार कार्य में व्यस्त हो गया।

चोर का पता लगाने के लिए नित्यप्रति नगर में घूमने लगा। एक दिन घूमते-घूमते अभयकुमार एक स्थान पर पहुँचा जहाँ नाटक होने वाला था। जनता की बहुत भीड़ एकत्र थी लेकिन नट-मण्डली का आगमन नहीं हुआ था। सब नट-मण्डली का इंतजार कर रहे थे। तब अवसर का लाभ उठाते हुए अभयकुमार ने कहा–जब तक नट-मण्डली नहीं आती, मैं तुमको एक कथा सुनाता हूँ और यों कहकर कहानी सुनाना प्रारम्भ किया और वहाँ बैठी जनता एकाग्र मन से श्रवण करने लगी।

प्राचीन काल में बसन्तपुर नामक एक नगर था। वहाँ एक जीर्ण (निर्धन) सेठ रहता था। उसके एक कन्या थी। वह उत्तम वर पाने के लिए कामदेव की पूजा करने लगी। इस हेतु वह प्रतिदिन उद्यान से चोरी करके पुष्प लाती। पुष्पों के निरन्तर चुराये जाने से उद्यान के माली ने एक दिन सोचा कि पुष्प-चोर को पकड़ना चाहिए

अन्यथा निरन्तर पुष्प रहित उद्यान शोभा-विहीन हो जायेगा। वह माली यह सोचकर एक दिन छुपकर बैठ गया। कुछ समय पश्चात् वह कुमारी आई। माली उसके रूप-लावण्य और तरुणाई को देखकर मुग्ध बन गया और उसके पास जाकर भोग की याचना की। तब वह कुमारी बोली—अभी मैं अविवाहित हूँ।

माली ने कहा—चाहे कुछ भी हो, तुम यह प्रतिज्ञा करो कि विवाहोपरान्त प्रथम दिन मेरे पास आओगी। अन्यथा मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा।

उस लड़की ने परिस्थिति से समझौता करते हुए माली के कथनानुसार प्रतिज्ञा कर ली और अपने घर लौट गयी।

कुछ समय पश्चात् उसका विवाह हो गया। जिस दिन विवाह सम्पन्न हुआ, उसी दिन उस लड़की ने अपने पति से माली के लिए की गयी प्रतिज्ञा बतला दी। पति ने अपनी नवोढ़ा पत्नी को सत्यप्रतिज्ञ जानकर माली के पास जाने की अनुमति प्रदान कर दी। वह नववधू वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर यामिनी[क] में एकाकी जाने लगी। मार्ग में उसे चोर मिले। उन्होंने उससे कहा—ये सब गहने हमको देने होंगे।

उस नववधू ने कहा—मैं माली से मिलकर आ जाऊँ तब तुम लोग ये गहने ले लेना।

चोरों ने उसकी सत्यता से प्रभावित होकर कहा—ठीक है। वह वधू यामिनी में आगे बढ़ी तब उसे राक्षस मिला और उस राक्षस ने कहा—मैं तुम्हारा भक्षण करना चाहता हूँ।

नवोढ़ा ने फिर कहा—जब माली का वचन पूर्ण कर लौट आऊँ तब भक्षण कर लेना।

राक्षस ने कहा—ठीक है। वह आगे बढ़ी और उद्यान में चली गयी, माली को देखा और बोली—मैं पुष्प चुराने वाली कन्या हूँ। मैंने विवाह के प्रथम दिन आपसे मिलने की प्रतिज्ञा की, इसलिए मैं आ गयी हूँ।

माली ने कहा—मातेश्वरी, तुम्हें प्रणाम हो। तुम तो मेरी माता समान हो, पुनः लौट जाओ। रास्ते में राक्षस मिला। उसने पूछा—इतनी जल्दी कैसे आ गयी तो उसने माली की सारी बात बतला दी। राक्षस ने सोचा—मैं माली से हीन नहीं हूँ। ऐसा सोचकर उसने भी उसे छोड़ दिया। आगे गयी तब चोर मिले। उन्होंने पूछा—इतनी जल्दी कैसे आई? उसने माली और राक्षस की बात चोरों को बतलाई तब चोरों ने सोचा—हम माली और राक्षस से हीन नहीं

(क) यामिनी-रात्रि

हैं। ऐसा सोचकर चोरों ने भी उसे छोड़ दिया। और तो और, माली, राक्षस और चोर उसे पति के घर छोड़ने तक आये। तब उस नवोढ़ा ने अपने पति से सारी बात कही और वह अर्धांगिनी अपने स्वामी के साथ भोग भोगने लगी। पति ने उसकी योग्यता जानकर सुबह ही उसको भण्डार की सारी चाबियाँ सुपुर्द कर दी।

लोग बहुत ध्यान से कहानी सुन रहे थे। कहानी पूर्ण होने पर अभयकुमार ने लोगों से पूछा—बताओ पति, माली, चोर और राक्षस इन चारों में से किसने दुष्कर कार्य किया? तब जो लोग स्त्री के ईर्ष्यालु थे उन्होंने कहा—पति ने दुष्कर कार्य किया है। चतुर लोगों ने कहा—राक्षस ने दुष्कर कार्य किया है। जार पुरुषों ने कहा—माली ने दुष्कर कार्य किया है। तब वहाँ आम्रफल चुराने वाला चोर बैठा था, उसने कहा—चोर ने दुष्कर कार्य किया।

अभयकुमार ने चोर को पकड़ लिया, उसे एकांत में बुलाया और पूछा कि आम्रफल कैसे चुराये?

चोर बोला—विद्या के बल से।

चोर की सत्यता से अभयकुमार प्रभावित हुआ और उसे राजा के पास ले गया। महाराजा से कहा—राजन् ! यह आम्रफल चुराने वाला चोर है। यह विद्या का जानकार है, आप इससे विद्या ग्रहण कर लीजिए। राजा सिंहासन पर बैठकर चोर से विद्या ग्रहण करने लगा। लेकिन उसे विद्या नहीं आई।

अभयकुमार ने कहा—महाराज ! आप सिंहासन पर इसको बिठाओ और आप नीचे बैठो तब विद्या आयेगी। महाराजा ने उसे सिंहासन पर बिठाया और स्वयं नीचे बैठे। तब उसने राजा को उन्नामनी और अवनामनी विद्या दी। राजा ने विद्या गुरू मानकर उसे छोड़ दिया।[165]

दुर्गन्धा का भावी सुगन्ध में भरा :

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक भगवान् महावीर को वंदन करने के लिए अपने विशाल सैन्य समुदाय सहित जाने लगे। मार्ग में एक नवजात बालिका को जमीन पर पड़े देखा। स्वयं राजा उसके पास पहुँचा, लेकिन देखा, उसके शरीर से भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। इतनी दुर्गन्ध कि सहन करना भी शक्य नहीं था। सभी ने अपने नाक पर वस्त्र लगा लिया और वहाँ से चले गये। भगवान् महावीर के समवसरण में पहुँचे। प्रभु ने दिव्य देशना प्रदान की जिसे श्रवण कर सब गद्गद हो गये।

उपदेश श्रवण कर परिषद् पुनः लौट गयी। तब राजा श्रेणिक ने अवसर

देखकर भगवान् से पूछा–भंते ! हम आपश्रीजी के दर्शनार्थ आ रहे थे तब मार्ग में एक नवजात बालिका पड़ी थी। मैं स्वयं उसके पास गया लेकिन उसके शरीर से भयंकर दुर्गन्ध फूट रही थी। वहाँ खड़ा रहना मुश्किल था। भगवन्, हम उस लड़की को वहीं छोड़कर आ गये। उसका भविष्य क्या है? वह लड़की कहाँ से आई है? उसके शरीर में से दुर्गन्ध क्यों आ रही है?

श्रेणिक राजर्षि के पूछने पर प्रभु ने फरमाया–श्रेणिक ! राजगृह के पास प्रदेश में धनमित्र नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उस श्रेष्ठी की पत्नी ने समय आने पर एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम धनश्री रखा। वह धनश्री शनैः-शनैः बड़ी होने लगी और क्रमशः यौवन अवस्था को उसने सम्प्राप्त कर लिया। श्रेष्ठी ने योग्य वर देखकर कन्या का विवाह तय कर दिया। ग्रीष्म ऋतु में विवाह की तिथि तय कर दी। जोर-शोर से विवाह की तैयारियाँ चलने लगी। उत्सव प्रारम्भ हो गया तभी सुदूर क्षेत्र से विहार करके एक मुनि श्रेष्ठी के यहाँ पर गोचरी हेतु पधारे। सेठ ने अपनी पुत्री से कहा–बेटी ! मुनिराज आये हैं, तुम सुपात्र दान का लाभ ले लो। अपने पिता की प्रेरणा से वह मुनि को आहार बहराने लगी। उस समय मुनि के शरीर व कपड़ों से पसीने की गंध आ रही थी। उसने चिंतन किया–अरे! प्रभु का शासन वैसे तो सर्वोत्तम है, लेकिन यदि स्नान करने की छूट रहती तो कितना अच्छा होता। बस, इतना-सा मुनि के प्रति जुगुप्सा भाव पैदा हुआ और उसने जीवनपर्यन्त इस भाव की आलोचना नहीं की, प्रायश्चित्त नहीं लिया तो वह मृत्यु आने पर काल करके राजगृह नगर की नगरवधू के गर्भ में पैदा हुई। गणिका ने गर्भ गिराने का बहुत उपाय किया लेकिन सब उपाय निरर्थक रहे। उस गणिका ने समय आने पर एक कन्या को जन्म दिया। उस कन्या के शरीर से भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। गणिका ने उस कन्या को विष्ठा की तरह सड़क पर फेंक दिया और वही कन्या तुम्हें रास्ते में दिखाई पड़ी।

भंते ! इस कन्या का भविष्य क्या है? श्रेणिक द्वारा पूछने पर भगवान् ने फरमाया–श्रेणिक ! इसने दुःख भोग लिया है, अब इसके सुख का समय आने वाला है। आठ वर्ष की उम्र होने पर यह तुम्हारी रानी बनेगी।[165]

श्रेणिक–भगवन ! मैं कैसे पहचानूँगा कि यह वही दुर्गन्धा है?

भगवान्–एक बार अन्तःपुर में क्रीड़ा करते हुए यह तुम्हारी पीठ पर चढ़कर हँसेगी, तब तुम जान लेना कि यह वही दुर्गन्धा है।

श्रेणिक–अहो ! घोर आश्चर्य है कि यह दुर्गन्धा मेरी पत्नी बनेगी .... पत्नी बनेगी। इन्हीं विचारों में डूबा राजा श्रेणिक प्रभु को वंदन- नमस्कार करके लौट गया।

रास्ते में उसने दुर्गन्धा को देखने का प्रयास किया, लेकिन खूब खोजने पर

भी उसे वह कन्या नहीं मिली। श्रेणिक राजा अपने प्रासाद में प्रविष्ट हुआ।

इधर दुर्गन्धा के शरीर की दुर्गन्ध[LXXII] व्यपगत हुई। वह सड़क पर पड़ी थी और एक वंध्या आभीरी युवती उधर से गुजरी। उसने दुर्गन्धा के रूप और लावण्य को देखा। उसे देखकर उसने उस बालिका को उठा लिया। अपने घर ले गयी और वात्सल्य-भाव से ओत-प्रोत उसका लालन-पालन करने लगी।

चोर बना अचोर :

राजगृह नगर में जहां अनेक दातार लोग पैदा हुए वहीं पर भीषण उत्पात मचाने वाले चोर-लुटेरे भी, जिन्होंने जनता में त्राहि-त्राहि मचा दी। ऐसे-ऐसे लुटेरे भी भगवान् की वाणी श्रवणकर संसार-सागर से तिर गये। उन्हीं लुटेरों में एक था–रोहिणेय चोर। उसके पिता का नाम था–लोहखुर। वह लोहखुर राजगृह नगर के समीप वैभारगिरि की विषम कन्दरा[क] में रहता था। वह रौद्ररस की तीव्रता को धारण करने वाला, परद्रव्य हरण और परस्त्री हरण में पारंगत था। नगर के महल और भंडार पर स्वयं का आधिपत्य जमाते हुए वह निरन्तर निर्भय होकर चोरी करता था। उसकी रोहिणी नामक पत्नी आकृति एवं चेष्टा में मानो उसकी प्रतिकृति थी। एक बार रोहिणी ने एक पुत्र का प्रसव किया, जिसका नाम रोहिणेय रखा। रोहिणेय भी युवा होकर लोहखुर के पथ का अनुकरण करने लगा। चौर्यकर्म में वह इतना निष्णात बन गया कि उसने अपने पिता को भी पीछे छोड़ दिया।

लोहखुर अब अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, तब उसने अपने पुत्र रोहिणेय को बुलाया और कहा–बेटा ! मैं जीवन की अन्तिम शिक्षा तुम्हें देना चाहता हूँ।

रोहिणेय–कहिए पिताश्री ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

लोहखुर–बेटा, तू चोरी करने सब जगह जाना, लेकिन एक बात का खयाल रखना कि जहाँ भगवान् महावीर का समवसरण हो, वहाँ उपदेश श्रवण करने मत जाना।

रोहिणेय–पिताश्री ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

लोहखुर पुत्र के वाक्य श्रवण कर अत्यन्त हर्षित हुआ और उसने उसी समय अपने प्राणों का व्युत्सर्ग कर दिया। पिता को परलोक पहुँचा हुआ जानकर रोहिणेय ने पिता की पार्थिव देह का अन्तिम संस्कार किया और तदनन्तर वह चौर्यकर्म में संलग्न हो गया। वह अपने चौर्यकर्म से राजगृह नगर में भयंकर उत्पात मचाने लगा।

भगवान् भी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चौदह हजार मुनियों सहित राजगृह

(क) कंगरा-गुफा

देखकर भगवान् से पूछा–भंते ! हम आपश्रीजी के दर्शनार्थ आ रहे थे तब मार्ग में एक नवजात बालिका पड़ी थी। मैं स्वयं उसके पास गया लेकिन उसके शरीर से भयंकर दुर्गन्ध फूट रही थी। वहाँ खड़ा रहना मुश्किल था। भगवन्, हम उस लड़की को वहीं छोड़कर आ गये। उसका भविष्य क्या है? वह लड़की कहाँ से आई है? उसके शरीर में से दुर्गन्ध क्यों आ रही है?

श्रेणिक राजर्षि के पूछने पर प्रभु ने फरमाया–श्रेणिक ! राजगृह के पास प्रदेश में धनमित्र नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उस श्रेष्ठी की पत्नी ने समय आने पर एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम धनश्री रखा। वह धनश्री शनैः-शनैः बड़ी होने लगी और क्रमशः यौवन अवस्था को उसने सम्प्राप्त कर लिया। श्रेष्ठी ने योग्य वर देखकर कन्या का विवाह तय कर दिया। ग्रीष्म ऋतु में विवाह की तिथि तय कर दी। जोर-शोर से विवाह की तैयारियाँ चलने लगी। उत्सव प्रारम्भ हो गया तभी सुदूर क्षेत्र से विहार करके एक मुनि श्रेष्ठी के यहाँ पर गोचरी हेतु पधारे। सेठ ने अपनी पुत्री से कहा–बेटी ! मुनिराज आये हैं, तुम सुपात्र दान का लाभ ले लो। अपने पिता की प्रेरणा से वह मुनि को आहार बहराने लगी। उस समय मुनि के शरीर व कपड़ों से पसीने की गंध आ रही थी। उसने चिंतन किया–अरे! प्रभु का शासन वैसे तो सर्वोत्तम है, लेकिन यदि स्नान करने की छूट रहती तो कितना अच्छा होता। बस, इतना-सा मुनि के प्रति जुगुप्सा भाव पैदा हुआ और उसने जीवनपर्यन्त इस भाव की आलोचना नहीं की, प्रायश्चित्त नहीं लिया तो वह मृत्यु आने पर काल करके राजगृह नगर की नगरवधू के गर्भ में पैदा हुई। गणिका ने गर्भ गिराने का बहुत उपाय किया लेकिन सब उपाय निरर्थक रहे। उस गणिका ने समय आने पर एक कन्या को जन्म दिया। उस कन्या के शरीर से भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। गणिका ने उस कन्या को विष्ठा की तरह सड़क पर फेंक दिया और वही कन्या तुम्हें रास्ते में दिखाई पड़ी।

भंते ! इस कन्या का भविष्य क्या है? श्रेणिक द्वारा पूछने पर भगवान् ने फरमाया–श्रेणिक ! इसने दुःख भोग लिया है, अब इसके सुख का समय आने वाला है। आठ वर्ष की उम्र होने पर यह तुम्हारी रानी बनेगी।[166]

श्रेणिक–भगवन ! मैं कैसे पहचानूँगा कि यह वही दुर्गन्धा है?

भगवान्–एक बार अन्तःपुर में क्रीड़ा करते हुए यह तुम्हारी पीठ पर चढ़कर हँसेगी, तब तुम जान लेना कि यह वही दुर्गन्धा है।

श्रेणिक–अहो ! घोर आश्चर्य है कि यह दुर्गन्धा मेरी पत्नी बनेगी .... पत्नी बनेगी। इन्हीं विचारों में डूबा राजा श्रेणिक प्रभु को वंदन- नमस्कार करके लौट गया।

रास्ते में उसने दुर्गन्धा को देखने का प्रयास किया, लेकिन खूब खोजने पर

भी उसे वह कन्या नहीं मिली। श्रेणिक राजा अपने प्रासाद में प्रविष्ट हुआ।

इधर दुर्गन्धा के शरीर की दुर्गन्ध[LXXII] व्यपगत हुई। वह सड़क पर पड़ी थी और एक बंध्या आभीरी युवती उधर से गुजरी। उसने दुर्गन्धा के रूप और लावण्य को देखा। उसे देखकर उसने उस बालिका को उठा लिया। अपने घर ले गयी और वात्सल्य-भाव से ओत-प्रोत उसका लालन-पालन करने लगी।

चोर बना अचोर :

राजगृह नगर में जहां अनेक दातार लोग पैदा हुए वहीं पर भीषण उत्पात मचाने वाले चोर-लुटेरे भी, जिन्होंने जनता में त्राहि-त्राहि मचा दी। ऐसे-ऐसे लुटेरे भी भगवान् की वाणी श्रवणकर संसार-सागर से तिर गये। उन्हीं लुटेरों में एक था–रोहिणेय चोर। उसके पिता का नाम था–लोहखुर। वह लोहखुर राजगृह नगर के समीप वैभारगिरि की विषम कन्दरा[क] में रहता था। वह रौद्ररस की तीव्रता को धारण करने वाला, परद्रव्य हरण और परस्त्री हरण में पारंगत था। नगर के महल और भंडार पर स्वयं का आधिपत्य जमाते हुए वह निरन्तर निर्भय होकर चोरी करता था। उसकी रोहिणी नामक पत्नी आकृति एवं चेष्टा में मानो उसकी प्रतिकृति थी। एक बार रोहिणी ने एक पुत्र का प्रसव किया, जिसका नाम रोहिणेय रखा। रोहिणेय भी युवा होकर लोहखुर के पथ का अनुकरण करने लगा। चौर्यकर्म में वह इतना निष्णात बन गया कि उसने अपने पिता को भी पीछे छोड़ दिया।

लोहखुर अब अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, तब उसने अपने पुत्र रोहिणेय को बुलाया और कहा–बेटा ! मैं जीवन की अन्तिम शिक्षा तुम्हें देना चाहता हूँ।

रोहिणेय–कहिए पिताश्री ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

लोहखुर–बेटा, तू चोरी करने सब जगह जाना, लेकिन एक बात का खयाल रखना कि जहाँ भगवान् महावीर का समवसरण हो, वहाँ उपदेश श्रवण करने मत जाना।

रोहिणेय–पिताश्री ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

लोहखुर पुत्र के वाक्य श्रवण कर अत्यन्त हर्षित हुआ और उसने उसी समय अपने प्राणों का व्युत्सर्ग कर दिया। पिता को परलोक पहुँचा हुआ जानकर रोहिणेय ने पिता की पार्थिव देह का अन्तिम संस्कार किया और तदनन्तर वह चौर्यकर्म में संलग्न हो गया। वह अपने चौर्यकर्म से राजगृह नगर में भयंकर उत्पात मचाने लगा।

भगवान् भी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चौदह हजार मुनियों सहित राजगृह

(क) कंगरा-गुफा

नगर पधारे। देवों ने राजगृह में समवसरण की रचना की उस समय रोहिणेय चोर राजगृह नगर में चोरी करने गया। उसके पास में गगन गामिनी पादुकाएँ थी और वह रूप परावर्तनी विद्या भी जानता था इसलिए दिन के समय भी वह एक घर में घुसकर चोरी करने लगा। पड़ौसियों को पता लगा लोग एकत्रित हो गये वह भागा तो जल्दी-जल्दी में गगन-गामिनी पादुकाएँ वहीं रह गयी। जिस मार्ग से भाग रहा था उधर ही भगवान् का समवसरण था। जैसे ही भगवान् का समवसरण उसके दृष्टिपथ में आया, उसने चिंतन किया "अरे ! यह भगवान् का समवसरण है, यदि मैं इधर से निकलूँगा तो पितृ आज्ञा भंग का दोष लगेगा, लेकिन राजगृह में जाने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग भी नहीं। तब क्या करूँ..........? वापिस लौट जाऊँ..........? नहीं.......... नहीं.......... वापिस तो नहीं जाऊँगा। अरे हाँ ! ऐसा करता हूँ कि अपने दोनों कर्ण छिद्रों को अंगुलियों से ढक लेता हूँ। तब मेरा कार्य भी हो जायेगा और पिता की आज्ञा का पालन भी। यही श्रेष्ठ उपाय है।" यही चिंतन कर उसने अपने कर्ण-कुहरों में अंगुलियाँ डाल ली और समवसरण के समीप से गुजरने लगा। लेकिन होनहार बलवान है, इंसान सोचता कुछ है और घटित होता कुछ और है। तमन्नाएँ, तमन्नाएँ ही रह जाती हैं।

रोहिणेय चोर जैसे ही समवसरण के समीप से गुजर रहा था, वैसे ही उसके पैर में काँटा लग गया, काँटा भी ऐसा, जिसको निकाले बिना आगे कदम रखना असम्भव था। तब उसने एक हाथ को कान से हटाकर काँटा निकालना प्रारम्भ किया और प्रभु की वाणी उसके कानों में हलचल पैदा करने लगी। क्योंकि निषेध में आकर्षण होता है, प्रतिकार के प्रति उत्सुकता जाग जाती है। उसका हाथ काँटा निकाल रहा है तो कान प्रभु की वाणी को ग्रहण कर रहे हैं। प्रभु फरमा रहे हैं –

"जिनके चरण धरती पर संस्पर्शित नहीं होते, जिनके नेत्र निर्निमेष रहते हैं, जिनके गले में धारण की हुई पुष्प माला खिलती हुई रहती है, जिनका गात्र स्वेद[क] एवं रजकणों से रहित होता है, वे देव होते हैं।"[167]

प्रभु के इन वचनों को श्रवण कर रोहिणेय चिंतन करता है "ओह ! मैंने बहुत सुन लिया.......... मुझे धिक्कार है.......... धिक्कार है।" और वह जल्दी से काँटा निकालकर तीव्र कदमों से वहाँ से चला जाता है।

राजगृह में प्रविष्ट होकर रोहिणेय दिन-दहाड़े चोरी करता है। उसके पास में इस प्रकार का अंजन था, जिसे वह आँखों में लगा लेता और अदृश्य हो

(क) स्वेद–पसीना

जाता। इस प्रकार निरन्तर अदृश्य चोरियाँ होने से राजगृह की जनता में आतंक फैल गया। जनता के सब्र का बाँध टूट गया और सेठ-साहूकारों ने मिलकर राजा श्रेणिक से एक दिन शिकायत कर ही डाली कि राजन् ! आपके राज्य में हमें अनेक प्रकार की सुविधाएँ हैं, हमें किसी प्रकार का कोई भय नहीं है, लेकिन एक चोर दिन-दहाड़े हमारे घरों को, हमारी दुकानों को लूट रहा है। इससे हमारे हृदय निरन्तर सशंकित हो रहे हैं।

राजा–तुम्हारी इस समस्या का समाधान कर ही देंगे, तुम निश्चिन्त रहो।

राजा के आश्वासन से सेठ-साहूकार आश्वस्त बन जाते हैं। तब श्रेणिक राजा कोतवाल को बुलाकर कहता है–क्या तुम चोर हो? या चोर के भागीदार हो कि तुम्हारे रहते हुए चोर नगर को लूट रहा है।

तब कोतवाल बोला–राजन् ! रोहिणेय नामक चोर इस कदर जनता को लूट रहा है कि वह देखने पर भी दिखाई नहीं देता है। वह इतना फुर्तीला है कि विद्युत्-किरणों की भाँति उछलता हुआ, बन्दर की तरह छलाँग लगाता हुआ, एक आवाज लगाये जितने में एक घर से दूसरे घर जाता हुआ नगर का किला तक भी उल्लंघन कर लेता है। अतएव राजन् मैं उसे पकड़ने में सामर्थ्यवान नहीं हूँ।

तब राजा श्रेणिक ने भृकुटी तान ली। उसी समय प्रज्ञा के सागर अभयकुमार ने कोतवाल से कहा–तुम गुप्त रीति से चतुरंगिणी सेना सजाकर नगर के बाहर पड़ाव डाल दो, जब चोर नगर में प्रवेश करे, तब उसे पकड़ लेना। कोतवाल ने दूसरे दिन वैसा ही किया। नगर के बाहर गुप्त रीति से पड़ाव डाल दिया। प्रथम दिन तो रोहिणेय आया ही नहीं और दूसरे दिन जैसे ही नगर में रोहिणेय ने प्रवेश किया, सेना ने उसे पकड़कर बंदी बना लिया और तब लाकर राजा को सौंप दिया। राजा ने उसे अभयकुमार को सौंप दिया और उस चोर से पूछा–तू कहाँ का रहने वाला है? तेरी आजीविका कैसे चलती है? तू इस नगर में किसलिए आता है और तुम्हारा नाम रोहिणेय है, क्या यह बात सत्य है?

राजा के इन प्रश्नों को श्रवण कर रोहिणेय ने विचार किया कि राजा को अभी तक मेरे नाम पर संदेह है? अतएव उसका लाभ उठाना चाहिए। यही सोचकर रोहिणेय बोला–राजन् ! मैं शालिग्राम का रहने वाला दुर्गचण्ड नामक कुटुम्बी हूँ। किसी प्रयोजनवश मैं राजगृह में आया था। किसी देवालय में रात्रि विश्राम के लिए रुका था। बहुत रात्रि बीतने पर घर जाने के लिए निकला, तो आपका कोतवाल पकड़ने लगा। इसके भय से त्रस्त हुआ मैं किले का उल्लंघन करने लगा तो किले के बाहर रहने वाले सिपाहियों ने मुझे पकड़ लिया। क्या इस प्रकार निरपराधी व्यक्ति को पकड़ कर रखना न्यायसंगत है?

राजा रोहिणेय की बात श्रवण कर सशंक बन जाता है, वह गुप्त रीति से पुरुषों को शालिग्राम जानकारी के लिए भेजता है। उस रोहिणेय ने पहले ही शालिग्राम के लोगों को संकेत कर रखा था। इसलिए जैसे ही गुप्तचरों ने शालिग्राम वालों से पूछा कि क्या यहाँ पर दुर्गचण्ड नामक कोई कुटुम्बी रहता है? तब गाँव वालों ने कहा-हाँ, लेकिन इस समय वह दूसरे गाँव गया हुआ है। गुप्तचरों ने आकर राजा से वैसा ही निवेदन कर दिया। तब अभयकुमार ने कहा-कपट का जाल अत्यन्त पेचीदा होता है, उसका अन्त तो ब्रह्मा भी नहीं जान सकते। अब मैं इसके चौर्यकर्म का पर्दाफाश करता हूँ, यों कहकर अभयकुमार ने सात मंजिला, रत्नजटित एक महल बनवाया। वह प्रासाद अपनी रमणीय आभा से स्वर्गोपम लग रहा था। उस भव्य प्रासाद में अभयकुमार ने **गंधर्व**[क] संगीत प्रारम्भ करवाया, जिसमें वह **गंधर्वनगर**[ख]-सम अभिगुंजित होने लगा।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने चोर को मद्यपान करवाकर उसे बेसुध कर दिया और देवदूष्य वस्त्र पहिनाकर उस महल की मखमली शय्या पर उसे लिटा दिया। अनेक युवक-युवतियों को पलंग के चारों ओर वस्त्राभूषणों से **परिमण्डित**[ग] करके ऐसा खड़ा कर दिया मानों उसकी सेवा में देव और अप्सराएँ खड़ी हों। अब जैसे ही उस रोहिणेय का नशा उतरा, वैसे ही देवरूप धारण करने वाले युवक-युवतियों ने कहा-हे नाथ ! आपकी जय हो। हे भद्र ! आपकी जय हो। इस विशाल विमान में आप हमारे स्वामी बनकर देवरूप में पैदा हुए हो। हम आपका स्वागत करते हैं, आप इन अप्सराओं के साथ विपुल देव सम्बन्धी दिव्य भोगों को भोगो। तब रोहिणेय असमंजस की स्थिति में आ गया कि क्या मैं वस्तुतः देव बन गया हूँ।

उसी समय प्रतिहारी ने कहा-नाथ ! आपने पूर्वभव में कौनसा सुकृत या दुष्कृत किया, जिससे आपको यह स्वर्ग का सुख मिला है?

तब रोहिणेय ने संशयग्रस्त होकर चिंतन किया कि अरे ! मैं वास्तव में देवलोक में पैदा हुआ हूँ? या अभयकुमार ने मेरी परीक्षा लेने हेतु ऐसा स्वांग रचा है? अब कैसे सत्य के निकट पहुँचूँ। सत्य के निकट पहुँचने के लिए महापुरुषों के वचन ही आश्रयणीय होते हैं। बस, यही सोचकर वह भगवान् महावीर का स्मरण करने लगा। तब उसके स्मृतिपट पर भगवान् महावीर के उन वचनों का स्मरण हो आया कि जब मैं काँटा निकाल रहा था, तब भगवान् ने देवों की पहिचान बतलाई थी। अब उसके अनुसार ही परीक्षा करके देखता हूँ

(क) गंधर्व-गंधर्व नामक व्यंतरों का प्रिय संगीत (ख) गंधर्वनगर-गंधर्व नामक व्यंतरों का नगर
(ग) परिमण्डित-सुसज्जित

कि ये वस्तुतः यह स्वर्ग है या अभयकुमार द्वारा विरचित प्रपंच है। ऐसा ही विनिश्चय करके रोहिणेय ने उन गंधर्वों और अप्सराओं की ओर देखा और देखकर निर्णय करने लगा–"अरे ! इनके तो पैर धरती का संस्पर्श कर रहे हैं, नेत्र टिमटिमा रहे हैं, शरीर पर मोतियों की लड़ी की तरह स्वेद बिंदु चमक रहे हैं। ये वस्तुतः देव नहीं, ये अभयकुमार द्वारा रचित माया है।" अतएव रोहिणेय ने निश्चिंत होकर उस प्रतिहारी पुरुष से कहा–मैंने पूर्वभव में सुपात्र दान दिया है, सद्गुरु की सेवा की है।

प्रतिहारी–और कोई दुष्कृत्य किया हो, वह भी बताओ।

रोहिणेय–मैंने कोई दुष्कृत्य नहीं किया।

प्रतिहारी–सम्पूर्ण जीवन एक जैसे स्वभाव में व्यतीत नहीं होता, कभी जीव सुकृत्य करता है तो कभी दुष्कृत्य भी। इसलिए चोरी आदि कोई भी दुष्कृत्य आपने किया हो तो बताओ।

रोहिणेय–दुष्कृत्य करने वाला क्या कभी स्वर्ग प्राप्त करता है? क्या अंधा पुरुष पर्वत पर आरोहण करता है?

तब वह प्रतिहारी जान गया कि यह चोर ऐसे सत्य नहीं बोलेगा। अतएव उसने सारी बात जाकर राजा से निवेदन करदी। राजा ने अभयकुमार से कहा कि चोर इन उपायों से पकड़ा नहीं जा रहा है, अतः हमें चोर को छोड़ देना चाहिए क्योंकि हमने चोर को छल से पकड़ा है। अतः नीति का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। पितृ-वचन को शिरोधार्य कर अभयकुमार ने चोर को मुक्त कर दिया। मुक्त होने के पश्चात् रोहिणेय ने विचार किया कि मेरे पिता की आज्ञा को धिक्कार है कि मैं भगवान् का प्रवचन नहीं सुन सका। यदि काँटा निकालते समय मैं भगवान् के वचनों को नहीं सुनता तो आज मैं यमलोक पहुँच जाता। प्रभु के स्वल्प उपदेश से मेरे प्राण सुरक्षित रह गये तो यदि सारा उपदेश सुन लूँ तो सब-कुछ अच्छा होगा, ऐसा चिंतन कर वह प्रभु चरणों में पहुँच गया।

भगवान् के समीप जाकर शुद्ध मन से आलोचना करने लगा–भंते ! मेरे पिता ने आपके वचनों को सुनने का निषेध किया था, इसलिए मैं इधर से निकला तो कानों में अंगुली डाली, लेकिन काँटा चुभा, मैंने अंगुली निकाली, आपके वचन सुने, उससे आज मैं यमलोक जाता हुआ बच गया। भगवन् ! अब मैं परिपूर्ण आस्था से आपके उपदेश को श्रवण करने आया हूँ।

भगवान् ने रोहिणेय की बात को सुना और उस समय उस विशाल परिषद को एवं रोहिणेय को धर्मोपदेश दिया, जिसे श्रवण कर रोहिणेय के भीतरी मन में

वैराग्य भावना का जागरण हुआ और वह संयम लेने हेतु उद्यत हुआ। उसी सभा में श्रेणिक राजा भी था। तब रोहिणेय ने राजा श्रेणिक से कहा-राजन्! मैं रोहिणेय चोर हूँ। मैं अभयकुमार की बुद्धि का छल द्वारा उल्लंघन कर गया। मैंने आपके पूरे नगर को लूटा। अब आप मेरे साथ किसी को भेजो ताकि मैं चोरी का समग्र माल दे देता हूँ और उसके पश्चात् मैं दीक्षा लूँगा।

विस्मयान्वित हो राजा श्रेणिक ने अभयकुमार सहित कई व्यक्तियों को भेजा। रोहिणेय ने जहाँ-जहाँ धन छिपा रखा था वहाँ-वहाँ पर्वत, सरिता, कुंज[क], श्मशान आदि से धन निकाल कर दे दिया। अभयकुमार ने भी जिस-जिस का धन था, उस-उस व्यक्ति को पुनः धन लौटा दिया।

तत्पश्चात् रोहिणेय ने अपने पारिवारिक जनों से दीक्षा की अनुमति माँगी, श्रेणिक राजा ने उसका **अभिनिष्क्रमण**[ख] महोत्सव किया और **रोहिणेय**[LXXIII] भगवान् के मुखारविन्द से संयम ग्रहण कर साधुचर्या का पालन करने लगा।[*168] भगवान् महावीर भी जघन्य से भी करोड़ों देवों से घिरे हुए तीर्थंकर नाम कर्म की निर्जरा करते हुए धर्मोपदेश की श्रुत गंगा प्रवाहित करते हुए अनेक राजा, युवराजा, मंत्री आदि को साधु एवं श्रावक बनाते हुए राजगृह से विदेह[LXXIV] की ओर विहार कर ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

(क) कुंज-लताओं और पौधों से आच्छादित स्थान
(ख) अभिनिष्क्रमण-संसार त्याग कर दीक्षा लेने वाले का महोत्सव

*टिप्पणी : रोहिणेय ने दीक्षा लेने के पश्चात् विविध प्रकार की तपश्चर्या की, उपवास से लेकर छः मासी तक तप किया। इस प्रकार विभिन्न तपश्चर्या करते हुए, वैभारगिरि पर अनशन करते हुए, पंचपरमेष्ठि का स्मरण करते हुए उसने देह त्याग कर स्वर्ग को प्राप्त किया।

अनुत्तरज्ञानचर्या का प्रथम वर्ष

टिप्पणी

I धनोदधि

1. सौधर्म और ईशान कल्प की पृथ्वी धनोदधि के आधार पर, सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक की पृथ्वी धनवात के आधार पर लांतक, शुक्र और सहस्रार की पृथ्वी धनोदधि और धनवात के आधार पर शेष आनतादि से लेकर अनुत्तर तक समग्र देवलोक आकाश प्रतिष्ठित है।
2. सौधर्म व ईशानकल्प की मोटाई 2700 योजन व ऊँचाई 500 योजन है। सनत्कुमार व महेन्द्र कल्प की मोटाई 2600 योजन व ऊँचाई 600 योजन है। ब्रह्मलोक व लांतक कल्प की मोटाई 2500 योजन व ऊँचाई 700 योजन है। महाशुक व सहस्रार कल्प की मोटाई 2400 योजन व ऊँचाई 800 योजन है। आणत, प्राणत व अरण व अच्युत कल्प की मोटाई 2300 योजन व ऊँचाई 900 योजन है। नवग्रैवेयक व विमानों कल्प की मोटाई 2200 योजन व ऊँचाई 1000 योजन है। पांच अनुत्तर कल्प की मोटाई 2100 योजन व ऊँचाई 1100 योजन है।

वैमानिक उद्देशक (जीवा. चतुर्थ प्रतिपत्ति)

II सौधर्म देवलोक

देवलोक के नाम	विमान संख्या
सौधर्म कल्प में	32 लाख
ईशान कल्प में	28 लाख
सनत्कुमार कल्प में	12 लाख
महेन्द्र कल्प में	8 लाख
ब्रह्मलोक कल्प में	4 लाख
लान्तक कल्प में	50,000
महाशुक्र कल्प में	40,000
सहस्रार कल्प में	6,000
आणत-प्राणत कल्प में	400
अरण-अच्युत कल्प में	300
सुदर्शन ग्रैवेयक सुप्रभद ग्रैवेयक मनोरम ग्रैवेयक	111

सर्वभद्र ग्रैवेयक सुविशाल ग्रैवेयक सुमनस ग्रैवेयक	107
सौमनस ग्रैवेयक प्रियंकर ग्रैवेयक आदित्य	100
अनुत्तर विमान	5
कुल	84,97,0,23 विमान

III चतुष्कोण

सर्वगोलाकार विमानों के एक द्वार होता है, त्रिकोण विमानों के तीन द्वार होते हैं और चतुष्कोण विमानों के चार द्वार होते हैं। गोल विमान का द्वार पूर्व दिशा की ओर समझना उचित है। यह बात आवलिका प्रविष्ट वृत्त विमान में भी संभव है। शेष के लिए अधिक द्वार भी होना संभव है।

वृहत्संग्रहणी, चतुर्थ वैमानिक निकाय, गाथा-98

IV पुष्पावकीर्ण

धनोदधि - ठोस पानी घी जैसा जमा हुआ वह अप्काय का भेद होने से सचित्त है।

धनवात - ठूंस-ठूंस कर भरी मजबूत वायु (यह भी सचित्त है)

आकाश - अवकाश देने के स्वभाव वाला अरूपी द्रव्य है।

वैमानिक की परिभाषा :-

विशिष्टपुण्यैर्जन्तुभिर्मान्यन्ते-उपभुज्यते इति विमानानि तेषु भवा वैमानिकाः विशिष्ट पुण्यशाली जीवों के जो भोगने योग्य हैं वे विमान कहलाते है, उनमें उत्पन्न हुए वैमानिक कहलाते हैं। पुष्पावकीर्ण विमान-स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, श्रीवत्स, खड्ग, कमल, चक्रादि विविध आकार वाले प्रत्येक प्रतर में होते हैं।

वृहत संग्रहणी, वैमानिक-निकाय, गाथा 96, पृ. 275

V इन्द्रकविमान

प्रत्येक प्रतर में इन्द्रक विमान होने से सर्वप्रतरों के 62 इन्द्रक विमान होते हैं। ये इन्द्रक विमान सर्वप्रतरों के मध्य भाग में होते हैं। प्रत्येक कल्प में चारों दिशाओं में चार पंक्तियाँ होती हैं।

उनमें प्रथम प्रवर में बासठ विमानों की चार पंक्तियाँ, द्वितीय प्रतर में इकसठ विमानों की चार पंक्तियाँ। इसी तरह अनुत्तर। इसी तरह अनुत्तर के अन्तिम प्रतर तक एक-एक हीन करते-करते अनुत्तर में एक विमान रह जाता है।

पंक्तियों के मध्य में रहे हुए इन्द्रक विमान गोल है, पश्चात् पंक्ति में प्रथम त्रिकोण फिर चौकोर और फिर गोल विमान ऐसा क्रम है और पुष्पावकीर्ण विमान विविध आकार वाले हैं। ये पुष्पावकीर्ण विमान पूर्व दिशा की पंक्ति को वर्जित करके शेष तीन पंक्तियों को आंतरे में समझना चाहिये। पंक्तिगत विमानों का जो असंख्य-2 योजन का अन्तर है, उसमें पुष्पावकीर्ण विमान होते हैं। साथ ही अवतंसक विमान और इन्द्रक विमान भी पंक्ति में प्रारम्भ के बीच में होते हैं, तो पूर्व दिशा के अन्तर को वर्जित करके शेष तीनों पंक्तिगत विमानों के आन्तरे में पुष्पावकीर्ण विमान अवश्य होते हैं।

वृहत्संग्रहणी गाथा 111 पृ. 291

VI आवलिका प्रविष्ट

आवलिका गत (पंक्तिबद्ध) विमानों का परस्पर अन्तर असंख्यात योजन का है, जबकि पुष्पावकीर्ण विमानों का परस्पर अन्तर प्रमाण संख्यात, असंख्यात योजन का भी होता है।

वृहत्संग्रहणी वैमानिक-निकाय गाथा 99

VII अवतसंक

राजप्रश्नीयसूत्र में सौधर्म देवलोक का वर्णन-हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर (सुमेरू) पर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्न प्रभा पृथ्वी के रमणीय समतल भू-भाग से ऊपर उर्ध्व दिशा में चन्द्र, सूर्य ग्रह गण नक्षत्र और तारा मण्डल से आगे भी ऊँचाई में बहुत से सैकड़ों योजनों, हजारों योजनों, लाखों योजनों, करोड़ों योजनों और सैकड़ों करोड़, हजारों करोड़, लाखों करोड़ योजनों, करोड़ों करोड़ योजनों को पार करने के बाद प्राप्त स्थान पर सौधर्म कल्प नाम का कल्प है अर्थात् सौधर्म नामक स्वर्ग लोक है। वह सौधर्म कल्प पूर्व पश्चिम लम्बा, उत्तर-दक्षिण विस्तृत चौड़ा है। अर्धचन्द्र के समान उसका आकार है। सूर्य किरणों की तरह अपनी द्युति कांति से सदैव चमचमाता रहता है। असंख्यात कोड़ा-कोड़ी योजन प्रमाण उसकी परिधि है। उस सौधर्म कल्प में सौधर्म कल्पवासी देवों के 32 लाख विमान बताये हैं। वे सभी विमानवास सर्वात्मना रत्नों से बने हुए स्फटिक मणिवत् स्वच्छ यावत् अतीव मनोहर हैं। उन विमानों के मध्यातिमध्य भाग में ठीक बीचों बीच पूर्व दक्षिण और पश्चिम और उत्तर इन चार दिशाओं में अनुक्रम से अशोक अवतंसक, चम्पक अवतंसक, आम्र अवतंसक तथा मध्य में सौधर्म अवतंसक से पाँच अवंतसक है। ये पाँचों अवतंसक भी रत्नों से निर्मित यावत् प्रतिरूप-अतीव मनोहर हैं।

राजप्रश्नीय सूत्र, पत्रांक 59-63

VIII सुधर्मासभा

चमर आदि इन्द्रों के रहने के स्थान, भवन, नगर या विमान इन्द्र-स्थान कहलाते हैं।

इन्द्र स्थान में पाँच सभाएँ होती हैं :- 1. सुधर्मा सभा, 2. उपपात सभा, 3. अभिषेक सभा, 4. अलंकार सभा, 5. व्यवसाय सभा।

1. सुधर्मा सभा - जहाँ देवताओं की शय्या होती है, वह सुधर्मा सभा है।
2. उपपात सभा - जहाँ जाकर जीव देवता रूप से उत्पन्न होता है, वह उपपात सभा है।
3. अभिषेक सभा - जहाँ इन्द्र का राज्याभिषेक होता है।
4. अलंकार सभा - जिसमें देवता अलंकार पहिनते हैं।
5. व्यवसाय सभा - जिसमें पुस्तकें पढ़कर तत्त्वों का निश्चय किया जाता है, वह व्यवसाय सभा है।

ठाणांग 5, उद्देशाक 2, सूत्र 472)

उदधृत जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, बोल 397, भाग-प्रथम

IX शय्याएँ

सूर्याभदेव के वर्णन में देव शय्या का वर्णन इस प्रकार मिलता है :-

यह शय्या प्रतिपाद, पाद, पाद शीर्षक, गात्र और संधियों से युक्त तथा तूली (रजाई) बिब्बोयणा (उपधान-तकिया) गंठोपधान (गालों का तकिया) और सालिंगन वर्तिक (शरीर प्रमाणत किया) से सम्पन्न थी। इसके दोनों ओर तकिये लगे हुए थे। यह शय्या दोनों ओर से उठी हुई एवं बीच में नीची होने के कारण गम्भीर तथा क्षौम और दुकूल वस्त्रों से आच्छादित थी।

X ऋजुबालिका

ऋजुबालिका नदी के उत्तर तट पर भगवान् महावीर को केवलज्ञान हुआ था। हजारी बाग जिला में गिरीडाह के पास बहने वाली बाराकड़ नदी को ऋजुपालिका अथवा रिजुबालुका कहते हैं। प. श्री सौभाग्य विजयजी ने इसके सम्बन्ध में अपनी तीर्थ माला में लिखा है कि वहाँ दामोदर नदी बहती है। पर इन उल्लेखों से भगवान् के केवलज्ञान कल्याणक की भूमि का निश्चित पता लगाना कठिन है। आजकल जहाँ सम्मेत शिखर के समीप केवल भूमि बताई जाती है उसके पास न तो ऋजुवालिका या इससे मिलते-जुलते नाम वाली कोई नदी है और न जंभियग्राम या इसके अपभ्रष्ट नाम का कोई गाँव। समनेद

शिखर से पूर्व दक्षिण दिशा में दामोदर नदी आज भी है पर ऋजुबालिका नदी का कोई पता नहीं है। हाँ उक्त दिशा में आजी नाम की एक बड़ी नदी अवश्य बहती है। यदि इस आजी को ही ऋजुवालिका मान लिया जाये तो बात दूसरी है।

एक बात अवश्य विचारणीय है कि आजी एक बड़ी और इसी नाम से प्रसिद्ध प्राचीन नदी है। स्थानांग सूत्र में गंगा की पांच सहायक बड़ी नदियों में इसकी "आजी" नाम से परिगणना की है। अतः आजी को रिजुवालिका का अपभ्रंश मानना ठीक नहीं है। एक बात यह भी है कि आजी अथवा दामोदर नदी से पावा-मध्यमा, जहाँ भगवान् का दूसरा समवसरण हुआ था, लगभग 140 मील दूर पड़ती है जबकि शास्त्र में भगवान् के केवलज्ञान के स्थान से मध्यम पावा बारह योजन दूर बतलाई है।

आवश्यक चूर्णि के लेखानुसार भगवान् केवली होने के पूर्व चम्पा से जंभिय, मिंडिय, छम्माणी होते हुए मध्यमा गये थे और मध्यमा से जंभियग्राम गये जहां आपको केवलज्ञान हुआ। इस विहार-वर्णन से ज्ञात होता है कि जंभिय ग्राम तथा ऋजुबालिका नदी मध्यमा के रास्ते में चम्पा के निकट कहीं होनी चाहिए जहाँ से चलकर भगवान् रात भर में मध्यमा पहुँचे थे। बारह योजन का हिसाब भी इससे ठीक बैठ जाता है।

XI सूर्य या रवि

ठीक मध्याह्न के समय में सूर्य का तेज प्रखर रहता है, अतः द्रष्टा को उस समय का सूर्य, सूर्योदय और सूर्यास्त की अपेक्षा समान दूरी पर रहते हुए भी दूर दिखाई देता है। यह सूर्य का दूर दिखाई देना लेश्याभिताप के कारण होता है।

व्याख्या. 8, 8, 331, उद्घृत-लेश्या कोष, वही पृ. 32

XII सामर्थ्य

2000 सिंहो का बल एक अष्टापद में 10,00,000 अष्टपदों का बल एक बलदेव में 2 बलदेवों का बल एक वासुदेव में 2 वासुदेवों का बल एक चक्रवर्ती में 10,00,000 चक्रवर्तियों का बल एक देव में 10,00,000 देवों का बल एक इन्द्र में ऐसे अनन्त बलशाली इन्द्र भी भगवान् की छोटी अंगुली को नहीं हिला सकते।

जैन तत्त्व प्रकाश 6

XIII वैक्रिय समुद्घात

वैक्रिय रूप बनाते समय आत्मप्रदेश का दण्डादि आकार में होने वाला अभिसरण वैक्रिय समुद्रघात है। इसके पश्चात् ही उत्तर वैक्रिय शरीर बनता है, जिसको धारण कर देव भूमण्डल पर आते हैं।

XIV मध्यम पावा

पावा (1) :– पावा नाम की तीन नगरियाँ थी। जैन सूत्रों के अनुसार एक पावा भंगिदेश की राजधानी थी। यह देश पारसनाथ पहाड़ के आस–पास के भूमि–भाग में फैला हुआ था, जिसमें हजारी बाग और मानभूम जिलों के भाग शामिल है। बौद्ध साहित्य के पर्यालोचक कुछ विद्वान पावा को मलय देश की राजधानी बताते है। हमारे मत से मलय देश की नहीं पर यह भंगिदेश की राजधानी थी। जैन सूत्रों में भंगिजनपद की गणना साढ़े पच्चीस आर्य देशों में की गई है। मल्ल और मलय को एक मान लेने के परिणाम स्वरूप पावा को मलय की राजधानी मानने की भूल हुई मालूम होती है।

पावा (2) – दूसरी पावा कोशल से उत्तर–पूर्व में कुशीनारा की तरफ मल्ल राज्य की राजधानी थी। मल्ल जाति केराज्य की दो राजधानियाँ थी, एक कुशीनारा और दूसरी पावा। आधुनिक पड़रौना को जो कासिया से बारह मील और गोरखपुर से लगभग 50 मील है, पावा कहते हैं। तब कोई–क़ोई गोरखपुर जिला में पड़रौना के पास नो पपउर गाँव है, उसको प्राचीन पावापुर मानते हैं।

पावा (3) :– तीसरी पावा मगध जनपद में थी। यह उक्त दोनों पावाओं के मध्य में थी। पहली पावा इसके आग्नेय दिशा भाग में थी और दूसरी इसके वायव्य कोण में लगभग सम अन्तर पर थी इसीलिए यह प्रायः पावा–मध्यमा के नाम से ही प्रसिद्ध थी। भगवान् महावीर के अन्तिम चातुर्मास का क्षेत्र और निर्वाणभूमि इसी पावा को समझना चाहिये। आज भी यह पावा, जो बिहार नगर से तीन कोस पर दक्षिण में है, जैनों का तीर्थधाम बना हुआ है।

XV आदक्षिण–प्रदक्षिणा

दक्षिण–दिशा से आरम्भ कर प्रदक्षिणा करता है।

हस्तलिखित–औपतातिक, पृष्ठ 40, संवत् 1211,

प्राप्ति स्थल–अगरचन्द भैरोंदान सेठिया ग्रन्थालय, बीकानेर

XVI आभियोगिक देव

आभियोगिक देव–वेतनभोगी नौकर की तरह कार्य करने वाले ।

रायपसेणियम्–हेमशब्दानुशासन 6/4/15 पृ. 52 बेचर दास

XVII वैक्रिय समुद्घात

शंका :– यहाँ रत्नादि के पुद्‌गलों को ग्रहण कर वैक्रिय समुद्रघात कहा है तब शंका होती है कि रत्नादि प्रायोग्य पुद्‌गल औदारिक हैं और उत्तरवैक्रिय के पुद्‌गल वैक्रिय हैं तब कैसे संगत होगा?

समाधान :– रत्नादि का ग्रहण सारभूत पुद्गलों को ग्रहण करने मात्र की अपेक्षा प्रतिपादित किया है किन्तु रत्नादि का ग्रहण नहीं है अथवा औदारिक भी ग्रहण किये जाते हुए वैक्रिय रूप में परिणत होते हैं पुद्गलों की उस–उस सामग्री से वैसा–वैसा परिगमन होने का स्वभाव होने से कोई दोष नहीं है।

रायपसेणियं टीका पृ. 58, वही, बेचरदास

XVIII वैमानिक

वैमानिक की परिभाषा :– विशिष्टपुण्यैर्जन्तुभिर्मान्यन्ते – उपभुज्यते इति विमानानि तेषु भवा वैमानिकाः संग्रहणी विशिष्ट पुण्यशाली जीवों के जो भोगने योग्य हैं वे विमान कहलाते है, उनमें उत्पन्न हुए वैमानिक कहलाते हैं।

पुष्पावकीर्ण विमान–स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, श्रीवत्स, खड्ग, कमल, चक्रादि विविध आकार वाले प्रत्येक प्रतर में होते हैं, वृह्त संग्रहणी,वैमानिक–निकाय,गाथा 96, पृ.275

XIX सेवन करना चाहिए

मुनि नथमलजी ने अहिंसा तत्व दर्शन में कहा है कि दया में हिंसा या हिंसा में दया कभी नहीं हो सकती। यदि हम इनको पृथक करना चाहें तो निवृत्त्यात्मक अहिंसा को अहिंसा एवं सप्रवृत्यात्मक अहिंसा को दया कह सकते है।

प्रश्न व्याकरण सूत्र में अहिंसा के 60 पर्यायवाची नाम बतलाये हैं। उनमें 11वाँ नाम दया है।

टीकाकार – मलयगिरि ने उसका अर्थ "दया देहि रक्षा" देहधारी जीवों, की रक्षा करना किया है। यह उचित भी है क्योंकि अहिंसा में जीव रक्षा अपने आप होती है।

विशेष विवरण के लिये देखिये

अहिंसा तत्त्वदर्शन, मुनि नथमल, सम्पा. छगनलाल शास्त्री,

प्रकाशक–सादर्श साहित्य संघ, चुरू, प्र. सं.सन् 1960, पृ.26–27

XX गोबर

गोब्बर गाँव :– यह प्रथम तीन गणधरों की जन्मभूमि है। गोबर राजगृह से पृष्ठ चम्पा जाते मार्ग में पड़ता था। पृष्ठ चम्पा के निकट होने से यह अंगभूमि में होगा, ऐसा सिद्ध होता है।

XXI श्रमण

श्रमण :– जो श्रम करते हैं वे श्रमण। जो समता का आचरण करते हैं वे

श्रमण। जिनकी कथनी करनी समान है वे श्रमण। स्वजन और परिजन में जिनका मन समान है, वे श्रमण। जिनका श्रेष्ठ मन है, वे श्रमण है।

XXII चौदह पूर्व

तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थंकर भगवान् जिस अर्थ का गणधरों को पहले पहल उपदेश देते है अथवा गणधर पहले पहल जिस अर्थ को सूत्र रूप में गूंथते हैं उन्हें पूर्व कहा जाता है पूर्व चौदह है–

1. **उत्पाद पूर्व** :– इस पूर्व में सभी द्रव्य और सभी पर्यायों के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गई है। उत्पाद पूर्व में एक करोड़ पद है।
2. **अग्रायणीय पूर्व** :– इस में सभी द्रव्य, सभी पर्याय और सभी जीवों के परिमाण का वर्णन है। अग्रायणीय पूर्व में छयानवें लाख पद हैं।
3. **वीर्यप्रवाद पूर्व** :– इस में कर्म सहित और बिना कर्म वाले जीव तथा अजीवों के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है। वीर्य प्रवाद पूर्व में 70 लाख पद है।
4. **अस्तिनास्ति प्रवाद** :– संसार में धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएं विद्यमान है तथा आकाश कुसुम वगैरह जो अविद्यमान है उन सब का वर्णन अस्तिनास्ति प्रवाद में है। इसमें 60 लाख पद है।
5. **ज्ञान प्रवाद पूर्व** :– इसमें मति ज्ञान आदि ज्ञान के 5 भेदों का विस्तृत वर्णन है इसमें कम से कम एक करोड़ पद है।
6. **सत्य प्रवाद पूर्व** :– इसमें सत्य रूप संयम या सत्य वचन का विस्तृत वर्णन है। इसमें छः अधिक एक करोड़ पद है।
7. **आत्म प्रवाद पूर्व** :– इसमें अनेक नय तथा मतों की अपेक्षा आत्मा का प्रतिपादन किया गया है। इसमें छब्बीस करोड़ पद है।
8. **कर्म प्रवाद पूर्व** :– जिसमें 8 कर्मो का निरूपण प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदों द्वारा विस्तृत रूप से किया गया है। इसमें एक करोड़ अस्सी लाख पद हैं।
9. **प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व** – इसमें प्रत्याख्यानों का भेद प्रभेद पूर्वक वर्णन है। इसमें चौरासी लाख पद हैं।
10. **विद्यानुवाद पूर्व** :– इस पूर्व में विविध प्रकार की विद्या तथा सिद्धियों का वर्णन है इसमें एक करोड़ 10 लाख पद हैं।
11. **अवन्ध्यपूर्व** :– इसमें ज्ञान, तप संयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फल वाले अवन्ध्यपूर्व अर्थात निष्फल न जाने वालें कार्यो का वर्णन है।

12. **प्राणायु प्रवाद पूर्व** – इसमें 10 प्राण और आयुआदि का भेद प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है। इसमें 1 करोड़ 56 लाख पद है।
13. **क्रिया विशाल पूर्व** :– इसमें कायिकी, आधिकरणिकी आदि तथा संयम में उपकारक क्रियाओं का वर्णन है। इसमें 9 करोड़ पद है।
14. **लोक बिन्दुसार पूर्व** :– लोक में अर्थात् संसार में श्रुतज्ञान में जो शास्त्र बिन्दु की तरह सबसे श्रेष्ठ हैं, वह लोक बिन्दु सार है इसमें साढे 12 करोड़ पद हैं।

पूर्वो में वस्तु :– पूर्वो के अध्याय विशेषों को वस्तु कहते हैं।

वस्तुओं के आवान्तर अध्यायों को चूलिका वस्तु कहते हैं।

उत्पाद पूर्व में 10 वस्तु और 4 चूलिका वस्तु हैं। अग्रायणीय पूर्व में 14 वस्तु और 12 चूलिकावस्तु हैं। वीर्य प्रवाद में पूर्व में 8 वस्तु और 18 चूलिका वस्तु हैं। अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व में 18 वस्तु और 10 चूलिका वस्तु हैं। ज्ञान प्रवाद पूर्व में 12 वस्तु हैं। सत्य प्रवाद पूर्व में 2 वस्तु है। आत्म प्रवाद पूर्व में 16 वस्तु हैं। कर्म प्रवाद पूर्व 30 वस्तु है। प्रत्याख्यान पूर्व में 20, विद्यानुप्रवाद पूर्व में 15, अवन्ध्य पूर्व में 12, प्राणायु पर्व में 13, क्रिया विशाल पूर्व में 3, लोक बिन्दुसार पूर्व में 25, चौथें से आगे के पूर्वो में चूलिका वस्तु नही हैं।

नन्दी.सूत्र 57, समवायांग 14वाँ तथा 147वां

XXIII पूर्व

आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने लिखा है कि दृष्टिवाद का अध्ययन – पठन स्त्रियों के लिए वर्ज्य था क्योंकि स्त्रियां तुच्छ स्वभाव की होती हैं, उन्हें शीघ्र गर्व आता है। उनकी इन्द्रियाँ चंचल होती है। उनकी मेधा शक्ति पुरूषों की अपेक्षा दुर्बल होती है इसलिए अतिशय या चमत्कार युक्त अध्ययन और दृष्टिवाद का ज्ञान उनके लिए नहीं है।

विशेषावश्यकभाष्य गाथा–55 की व्याख्या पृ. 48

XXIV संघतीर्थ

जिसमें तिरा जाये, वह तीर्थ है। जो क्रोध, लोभ और कर्ममल को दूर करता है, वह तीर्थ हैं। जिसके सम्यक–ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीन प्रयोजन है, वह तीर्थ है।

XXV गणधर

तीर्थंकरों के रूप से गणधरों का रूप अनन्त गुण हीन होता है। गणधरों के रूप से आहारक शरीरी का रूप अनन्तगुणहीन, अनुत्तर, ग्रैवेयक

12,11,10,9,8,7,6,5,4,3,2,1 देवलोक, भवनवासी, ज्योतिष्क, व्यन्तर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, महामण्डलिक अनन्तगुणहीन जानना चाहिये। उससे राजा और सामान्य लोग षट्स्थान पतित जानने चाहिये।

आवश्यक, मलयगिरि, पत्रांक-307

XXVI गण

भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गण तथा आठ ही गणधर थे :- 1. शुभ, 2. आर्यघोष, 3. वशिष्ठ, 4. ब्रह्मचारी, 5. सोम, 6. श्रीघृत, 7. वीर्य, 8. भद्रयश।

ठाणांग 8, 3 सूत्र 6, 7 टीका, समवायांग 8

XXVII धोवन पानी

प्रासुक जल को धोवन पानी कहते हैं। यह इक्कीस प्रकार का है :-

1. उस्सेइम – कठोती आदि का धोय पानी।
2. संसेइम – सब्जी की हॉडी आदि का धोय पानी।
3. चाउलोदक – चावलों को धोया पानी।
4. तिलोदग – तिलों का धोया पानी।
5. तुसोदग – तुषों का पानी।
6. जवोदग – जौ का पानीं
7. आयाम – चावल आदि का पानी।
8. सौवीर – छाछ की आछ।
9. सुद्धवियड़ – गर्म किया हुआ पानी।
10. अम्ब पाणग – आम धोये हुए का पानी।
11. अम्बाउग पाणग – अम्बाउक फलों का धोया पानी।
12. कविट्ठ पाणग – कविठ का धोया हुआ पानी।
13. माउलिंग पाणग – बिजौरा के फलों का धोया हुआ पानी।
14. मुद्दियापाणग – दाखों का धोया हुआ पानी।
15. दालिम पाणग – अनारों का धोया हुआ पानी।
16. खज्जूर पाणग – खजूरों का धोया हुआ पानी।
17. नालिकेर पाणग – नारियलों का धोया हुआ पानी।
18. करीर पाणग – कैरों का धोया हुआ पानी।
19. कोलपाणग – बेरों का धोया हुआ पानी।
20. अमलपाणग – ऑवलों का धोया हुआ पानी।

21. चिंचापाणग — इमली का पानी ।

जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, भाग–7

XXVIII जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र की भूतकालीन चौबीसी

1. श्री केवलज्ञानीजी	2. श्री निर्वाणजी	3. श्री सागरजी
4. श्री महायशजी	5. श्री विमलप्रभजी	6. श्री सर्वानुभूतिजी
7. श्री श्रीधरजी	8. श्री श्रीदत्तजी	9. श्री दामोदरजी
10. श्री सुतेजजी	11. श्री स्वामीनाथजी	12. श्री मुनिसुव्रतजी
13. श्री समितिजिनजी	14. श्री शिवगतिजी	15. श्री अस्तांगजी
16. श्री नमीश्वरजी	17. श्री अनिलनाथजी	18 श्री अस्तांगजी
19. श्री कृताधजी	20. श्री जिनेश्वरजी	21. श्री शुद्धमतिजी
22. श्री शिवशंकरजी	23. श्री स्यन्ननाथजी	24. श्री सम्प्रतिजी

प्रवचनसारोद्वार, पत्रांक 80

XXIX जम्बूद्वीप, ऐरावत क्षेत्र के 72 तीर्थंकरों के नाम

भूतकाल की चौबीसी	वर्तमानकाल की चौबीसी	भविष्यकाल की चौबीसी
1. श्री पंचरूपजी	1. श्री चन्द्राननजी	1. श्री सुमंगलजी
2. श्री जिनधरजी	2. श्री सुचन्द्रजी	2. श्री सिद्धार्थजी
3. श्री सम्प्रतकजी	3. श्री अग्निसेनजी	3. श्री निर्वाणजी
4. श्री उरमतजी	4. श्री नन्दसेनजी	4. श्री महाशयजी
5. श्री आदिछांयजी	5. श्री ऋषिदत्तजी	5. श्री धर्मध्वजजी
6. श्री अभिनंदजी	6. श्री व्रतधारीजी	6. श्रीचन्द्रजी
7. श्री रत्ससेनजी	7. श्री सोमचन्द्रजी	7. श्री पुष्पकेतुजी
8. श्री रामेश्वरजी	8. श्री युक्तिसेनजी	8. श्री पुष्पकेतुजी
9. श्री रंगोजीतजी	9. श्री अजितसेनजी	9. श्री श्रुतसागरजी
10. श्री विनपासजी	10. श्री शिवसेनजी	10. श्री सिद्धार्थजी
11. श्री आरोवसजी	11. श्री देवसेनजी	11. श्री पुष्पाघोषजी
12. श्री शुभध्यानजी	12. श्री निक्षिप्तशस्त्रजी	12. श्री महाघोषजी
13. श्री विप्रदत्तजी	13. श्री असंज्जलजी	13. श्री सत्यसेनजी
14. श्री कुंवारजी	14. श्री अनन्तकजी	14. श्री शूरसेनजी

15. श्री सर्वसहेलजी	15. श्री उपशांतजी	15. श्री महासेनजी
16. श्री परभंजनजी	16. श्री गुप्तिसेनजी	16. श्री सर्वानंदजी
17. श्री सौभाग्यजी	17. श्री अतिपार्श्वजी	17. श्री देवपुत्रजी
18. श्री दिवाकरजी	18. श्री सुपार्श्वजी	18. श्री सुपार्श्वजी
19. श्री व्रतबिन्दुजी	19. श्री मरूदेवजी	19. श्री सुव्रतजी
20. श्री सिद्धकान्तजी	20. श्री श्रीधरजी	20. श्री सुकौशलजी
21. श्री ज्ञानश्रीजी	21. श्री श्यामकोष्ठजी	21. श्री अनंतविजयजी
22. श्री कल्पद्रुमजी	22. श्री अग्रिसेनजी	22. श्री विमलजी
23. श्री तीर्थफलजी	23. श्री अग्निपुत्रजी	23. श्री महाबलजी
24. श्री ब्रह्मप्रभुजी	24. श्री वारिसेनजी	24. श्री देवानंदजी

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में आगामी चौबीसी के नाम इस प्रकार है :–

1. श्री महाप्रभ	2. श्री सुरदेव	3. श्री सुपार्श्व
4. श्री स्वयंप्रभु	5. श्री सर्वात्मभु	6. श्री श्रीदेव
7. श्री कुलपुत्र देव	8. श्री उदंकदेव	9. श्री प्रोष्ठिलदेव
10. श्री जयकीर्ति	11. श्री मुनिसुव्रत	12. श्री अरह
13. श्री निष्पाप	14. श्री निष्कषाय	15. श्री विपुल
16. श्री निर्मल	17. श्री चित्रगुप्त	18. श्री समाधिमुक्त
19. श्री स्वयंभू	20. श्री अनिवृत्त	21. श्री जयनाथ
22. श्री श्री विमल	23. श्री देवपाल	24. श्री अनन्तवीर्य

समयायांगसूत्र, भूमिका–मधुकरमुनिजी

XXX तीर्थंकर

तीर्थंकर नामकर्म का निकाचित बन्ध तीर्थंकर भव से पूर्व, तीसरे भव में होता है। बन्ध और तीर्थंकर नामकर्म की जघन्य स्थिति, उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तः कोटा कोटि सागरोपम प्रमाण है, वह अनिकाचित बन्ध की अपेक्षा जानना चाहिये। निकाचित बन्ध तीसरे भव से लेकर तीर्थंकर भव के अपूर्वकरण के संख्यात भाग तक बन्धता रहता है, तत्पश्चात् व्यवछिन्न होता है।

प्रवचनसारोद्धार, पूर्वभाग, नेमिचन्दजी, पंत्राक–84

XXXI बीस बोल

इन बीस बोलों की आराधना प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों ने की थी। मध्यम

बाईस तीर्थंकरों ने एक, दो, तीन अथवा सब बोलों की आराधना की ऐसा हरिभद्रीय आवश्यक वृत्ति मे कहा हैं :–

"पुरिमेण पच्छिमेण य एए सव्वेऽवि फासिया ठाणा। मज्झिमएहिं जिणेहिं, एक्कं दो तिण्णिसव्वे वा"

आवश्यक सूत्र, भाग I, पं. 119

XXXII तीर्थंकर

जो जीव निकाचित तीर्थंकर नाम कर्म बाँधता है, वह नियम से मनुष्य गति का होता है तथा उसके सम्यक् दृष्टि सहित शुभ लेश्या होती है।

लेश्या कोश (द्वितीय खण्ड) पृ. 42

सम्पा. स्व. मोहनलाल बाँठिया, श्रीचन्द चोरड़िया, प्रकाशक जैन दर्शन समिति, कलकत्ता, सन् 2001

XXXIII अतिशय

आचार्य अभयदेवसूरि व आचार्य हेमचन्द्र के अतिशय वर्णन में कुछ अन्तर परिलक्षित होता है। भाषा दोनों ने भगवान् की अर्धमागधी मानी है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार 19 अतिशय देवकृत हैं जबकि अभयदेव की दृष्टि से 15 अतिशय देवकृत हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि भगवान् का मुख चारों ओर दिखाई देता है वह देवकृत अतिशय है जबकि दिगम्बर दृष्टि से केवलज्ञान कृत है। तीन की रचना को भी देवकृत अतिशय माना है पर समवायांग के चौंतीस अतिशयों में उसका उल्लेख तक नहीं है। आचार्यों ने अतिशयों का जो विभाजन किया, उस सम्बन्ध में सबल तर्क का अभाव है। समवायांग मूल में किसी प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है।

समवायांग की भाँति अंगुत्तरनिकाय (5/121) में तथागत बुद्ध के पाँच अतिशय बतलाये हैं :–

1. वे अर्थज्ञ होते हैं।
2. वे धर्मज्ञ होते हैं।
3. वे मर्यादा के ज्ञाता होते हैं।
4. वे कालज्ञ होते हैं।
5. वे परिषद् को जानने वाले होते हैं।

XXXIV देशी भाषा

यहाँ देशी भाषा के सोलह नाम ही मिलते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. ए. मास्टर ने (A.Master-B. Soas XIII-2, 1950 P.P. 41315) कहा है कि सोलह भाषाओं में औड्र और द्राविड़ी भाषाएँ मिलने पर अठारह देशी भाषाएँ हो जाती है।

XXXV आठ देशों की भाषा

निशीथ चूर्णिकार ने भी इन्हीं आठ देशों की भाषाओं को देशी भाषा माना है। भरत के नाट्यशास्त्र में सात भाषाओं का उल्लेख मिलता है– मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, बहिध्का, दक्षिणात्य और अर्धमागधी।

XXXVI चौबीस तीर्थंकरों का प्राचीन उल्लेख

बौद्धग्रन्थों में बुद्ध के समकालीन 6 तीर्थकरों का उल्लेख मिलता है। यथा–

1. पूर्णकाश्यप
2. मंखलि गोशालक
3. अजितकेशकम्बल
4. प्रबुद्ध कात्यायन
5. निगंठनाथ पुत्र
6. संजयवेलट्ठि पुत्र

दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद) सामञ्ञफलसुत्त, पृ. 16-22

XXXVII बौद्ध धर्म की पूर्वापरता संबंधी जानकारी

पंडित सुखलालजी ने अपनी पुस्तक चार तीर्थंकर में बुद्ध को भी पार्श्वनाथ परम्परा का साधक मानते हुए लिखा है "खुद बुद्ध अपने बुद्धत्व के पहले की तपश्चर्या और चर्या का जो वर्णन करते है उसके साथ तत्कालीन निर्गन्थ आचार का जब हम मिलान करते हैं" (तुलना–दशवैकालिक 5/1 तथा अध्य.3 और मण्झिमनिकाय महासिंहनाद सुत्त)

कपिल वस्तु के निर्ग्रन्थ श्रावक वप्पशाक्य का निर्देश सामने रखते हैं तथा बौद्ध पिटकों में पाये जाने वाले खास आचार और तत्वज्ञान सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्द जो केवल निर्ग्रन्थ प्रवचन में ही पाये जाते हैं, इन सब पर विचार करते हैं तो ऐसा मानने में कोई खास सन्देह नहीं रहता है कि बुद्ध ने, भले ही थोड़े समय के लिए हो, पार्श्वनाथ की परपम्रा को स्वीकार किया था। अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी ने अपनी अन्तिम पुस्तक पार्श्वनाथ चातुर्याम धर्म में अपनी ऐसी ही मान्यता सूचित की है।

चार तीर्थंकर, पृष्ठ 141–42

XXXVIII श्रेणिक को राजगृह नगरी दूंगा

राजा प्रसेनजित एक बार घुड़सवारी करके घूमने गया और बिना पानी मूर्च्छित हो गया तब एक यमदण्ड नामक भील ने पानी पिलाया। रात्रि में अपने घर ले गया, खाना खिलाया तब राजा उसकी पुत्री तिलकवती पर मुग्ध बन गया और विवाह की मंगनी की तब यमदण्ड ने कहा कि यदि मेरी लड़की से उत्पन्न पुत्र को राज्य दोगे तब मैं विवाह करूँगा तब प्रसेनजित ने हाँ भर ली तथा यही कारण था कि आगे चलकर श्रेणिक को राज्य की बजाय देश निकाला देना पड़ा।

जैन कथाएँ, भाग 37

XXXIX कामार्त का भान भूलना

धूमज्योतिः सलिल मरूतां–सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणौः प्राणिभिदः प्रापणीयाः
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्णकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृति श्चेतनाचेतनेषु,

मेघदूत, महाकवि कालिदास

XL मगध

मगध :– यह देश महावीर के समय का एक प्रसिद्ध देश था। मगध की राजधानी राजगृह महावीर के प्रचार क्षेत्रों में प्रथम और वर्षावास का मुख्य केन्द्र था। पटना और गया जिले पूरे और हजारीबाग का कुछ भाग प्राचीन मगध के अन्तर्गत थे। इस प्रदेश को आज कल दक्षिणी–पश्चिमी बिहार कह सकते हैं। इस देश के लाखों मनुष्य महावीर के उपदेश को शिरोधार्य करते थे। मागधी भाषा की उत्पत्ति इसी मगध से समझनी चाहिये।

XLI धूलि

द्रष्टव्य :–

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया, निष्कम्प चामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलंधनीया, धावन्त्यमी मृगजवाक्षयमेवरथ्याः

अभिज्ञान–शाकुन्तलम् प्रथम अंक, महाकवि–कालिदास

XLII औष्ट्रिक

औष्ट्रिक तप क्या होता है? इसका उल्लेख तो खोज का विषय है लेकिन अर्धमागधी कोश में औष्ट्रिक श्रमण शब्द जरूर मिलता है जिसका विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि मिट्टी के बड़े बरतन में बैठकर तपश्चर्या करने वाला।

XLIII मानोन्मान प्रमाण

जल से भरी द्रोणी (नाव) में बैठने पर उससे बाहर निकला जल द्रोण (विशेष माप) प्रमाण हो तो वह पुरूष मान–प्राप्त कहलाता है। तुला पर बैठे पुरूष का वजन यदि अर्ध भार प्रमाण हो तो वह उन्मान प्राप्त कहलाता है। शरीर की ऊँचाई उसके अंगुल से 108 अंगुल हो तो वह प्रमाण प्राप्त कहलाता है।

समवायांग, पत्रांक 157

XLIV पांच धायें

पाँच धायें एवं उनके कार्य इस प्रकार हैं :–

1. क्षीरधात्री – दूध पिलाने वाली धाय।
2. मण्डन धात्री – वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय।
3. मज्जन धात्री – स्नान कराने वाली धाय।
4. क्रीडापन धात्री – खेल खिलाने वाली धाय।
5. अंकधात्री – गोद में लेने वाली धाय।

XLV पुरूषों की बहत्तर कलाएँ

1. लेख – लेखन
2. गणित – गणित विषयक ज्ञान
3. रूप – रूप सौन्दर्य
4. नाट्य – अभिनय युक्त, अभिनय रहित तांडवादि नृत्य
5. गीत – गन्धर्व कला या संगीत विद्या।
6. वादित्र – वाद्य बजाने की कला।
7. स्वरगत – संगीत के मूलभूत षड़ज, ऋषभ आदि स्वरों का ज्ञान।
8. पुष्करगत – मृंदगादि बजाने का ज्ञान।
9. समताल – संगीत में गीत तथा वाद्यों के स्वर एवं ताल समन्वय या संगीत का ज्ञान।
10. द्यूत – जुआ खेलना।
11. जनवाद – द्यूत विशेष
12. पाशक – पासे खेलना।
13. अष्टापद – चौपड़ द्वारा जुआ खेलने की कला।
14. पुरःकाव्य – किसी भी विषय पर तत्काल काव्य रचना करना।
15. दक मृतिका – पानी तथा मिट्टी को मिलाकर विविध वस्तुएँ निर्मित करने की कला।
16. अन्न विधि – भोजन पकाने की कला।
17. पान विधि – पानी पीने के विषय के गुण–दोष का विज्ञान।
18. वस्त्र विधि – वस्त्र पहने आदि का विशिष्ट ज्ञान।
19. विलेपन – देह पर विलेपन करने की विधि का ज्ञान।

20. शयनविधि — पलंग आदि शयन सम्बन्धी वस्तुओं की संयोजना सुसज्जा आदि का ज्ञान।
21. आर्या — आर्यछन्द बनाने की कला।
22. प्रहेलिका — पहेलियाँ रचने की कला।
23. मागधिका — मागधिका छन्द में रचना करने की कला।
24. गाथा — संस्कृतरहित गाथा बनाने की कला।
25. गीतिका — गीत बनाने की कला।
26. श्लोक — अनुष्टुप् की रचना करना।
27. हिरणयुक्ति — चाँदी के संयोजन की कला।
28. स्वर्णयुक्ति — स्वर्ण के संयोजन की कला।
29. चूर्ण युक्ति — चूर्ण के संयोजन की कला।
30. आभरण विधि — आभूषण बनाने की कला।
31. तरूणी परिकर्म — युवती श्रृंगार कला।
32. स्त्रीलक्षण — स्त्री के लक्षण जानने की कला।
33. पुरूषलक्षण — पुरूष के लक्षण जानने की कला।
34. हयलक्षण — घोड़े के लक्षण जानने की कला।
35. गजलक्षण — हाथी के लक्षण जानने की कला।
36. गोलक्षण — गाय के लक्षण जानने की कला।
37. कुक्कुटलक्षण — मुर्गे के लक्षण जानने की कला।
38. छत्र लक्षण — छत्र के लक्षण जानने की कला।
39. दण्डलक्षण — दण्ड के लक्षण जानने की कला।
40. असिलक्षण — तलवार के लक्षण जानने की कला।
41. मणिलक्षण — मणि के लक्षण जानने की कला।
42. कांकिणीलक्षण — कांकिणी के लक्षण जानने की कला।
43. वास्तुविद्या — भूमि के गुण दोष का ज्ञान।
44. स्कन्धावारमान — सेना के पड़ाव के सम्बन्ध में ज्ञान।
45. नगरमान — नगर विषयक जानकारी (सैन्य–ज्ञातानुसार संचालक)
46. चार–ग्रह — नक्षत्र का ज्ञान।
47. प्रतिचार — ग्रहों के वक्री होने का ज्ञान। शत्रु सेना के समय ज्ञातानुसार अपनी सेना चलाना।

48.	व्यूह	– चक्रव्यूह आदि रचना।
49.	प्रतिव्यूह	– व्यूह को भंग करने की कला।
50.	चक्रव्यूह	– चक्राकार व्यूह बनाना।
51.	गरूड़व्यूह	– गरूड़ाकार व्यूह बनाना।
52.	शकट व्यूह	– शकटाकार व्यूह बनाना।
53.	युद्ध	– संग्राम
54.	नियुद्ध	– मल्लयुद्ध
55.	युद्धातियुद्ध	– घमासान युद्ध का ज्ञान।
56.	दृष्टियुद्ध	– दृष्टियुद्ध का ज्ञान।
57.	मुष्टियुद्ध	– मुष्टियुद्ध का ज्ञान।
58.	बाहुयुद्ध	– बाहुयुद्ध का ज्ञान।
59.	लता युद्ध	– जैसे लता वृक्ष पर चढ़ती है, वैसे एक योद्धा का दूसरे योद्धा पर चढ़ जाना।
60.	इषुशास्त्र	– नाग बाण आदि का ज्ञान
61.	त्सरू प्रवाद	– खड़ग शिक्षा
62.	धनुर्वेद	– धनुर्विधा
63.	हिरण्यपाक	– रजत सिद्धि
64.	स्वर्ण	– स्वर्णसिद्धि
65.	सूत्र खेल	– सूत्र क्रीड़ा
66.	वस्त्र खेल	– वस्त्र क्रीड़ा
67.	मालिका खेल	– द्यूत विशेष
68.	पत्र–छेद्य	– पत्र छेदन।
69.	कट–छेद्य	– पर्वतभूमि छेदन की कला।
70.	सजीव करण	– मृत धातु को स्वाभाविक रूप में पहुँचाना।
71.	निर्जीवकरण	– स्वर्ण आदि धातुओं को मारना।
72.	शकुनिरूत	– पक्षियों की आवाज जानना।

यहाँ कलाओं का निरूपण जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार किया है ज्ञातासूत्र में कलाएँ समान–सी हैं लेकिन संख्या क्रम में अन्तर है। समवायांग की कलाओं में बहुत अन्तर है। औपपातिक में पाँचवी कला गीत, पच्चीसवीं कला गीति और छप्पनवीं कला दृष्टि युद्ध नहीं है। इनके स्थान पर औपपातिक में चक्कलक्खणं, चम्मलक्खणं, वत्थुनिवेसन का उल्लेख है। ये सब संकलन भिन्नता से अवगतव्य

है। (तत्वंतुकेवलिगम्यम्)

XLVI आठ प्रसाद

मेघ कुमार के माता–पिता ने कन्या अन्तःपुर में आठ लड़कियाँ मेघ कुमार के समान उम्र वाली रखी थी इसलिए आठ प्रासाद बनवाये।

XLVII स्त्रियों की चौसठ कला

1. नृत्य	2. औचित्य	3. चित्र
4. वादित्र	5. मंत्र	6. तंत्र
7. ज्ञान	8. विज्ञान	9. दम्भ
10. जल स्तम्भ	11. गीत मान	12. ताल मान
13. मेघवृष्टि	14. जलवृष्टि	15. आराम–रोपण
16. आकार–गोपन	17. धर्म–विचार	18. शकुन–विचार
19. क्रिया कल्प	20. संस्कृत–जल्प	21. प्रासाद–नीति
22. धर्मरीति	23. वर्णिका वृद्धि	24. स्वर्ण सिद्धि
25. सुरभि तैलकरण	26. लीला–संचरण	27. हय–गज परीक्षण
28. पुरुष–स्त्री लक्षण	29. हेमरत्न	30. अष्टादश लिपि परिच्छेद
31. तत्काल बुद्धि	32. वास्तु सिद्धि	34. वैद्यक क्रिया
33. काम विक्रिया	35. कुम्भ–भ्रम	36. सारिश्रम
37. अंजन योग	38. चूर्ण योग	39. हस्त–लाघव
40. वचन पाटव	41. भोज्य विधि	42. वाणिज्य–विधि
43. मुख–मण्डन	44. शालि–खण्डन	45. कथा कथन
46. पुष्प ग्रथन	47. वक्रोक्ति	48. काव्यशक्ति
49. स्फार विधिवेश	50. सर्वभाषा विशेष	51. अभिधान ज्ञान
52. भूषण परिधान	53. भृत्योपचार	54. गृहोपचार
55. व्याकरण	56. पर–निराकरण	57. रंधन
58. केश–बंधन	59. वीणा–नाद	60. वितण्डावाद
61. अंक विचार	62. लोक–व्यवहार	63. अन्त्याक्षरिका
64. प्रश्न प्रहेलिका		

XLVIII अन्तःपुर

यहाँ अन्तःपुर का तात्पर्य रनिवास से है।

XLIX कौशाम्बी

अपने असाधारण, गुणों से पुरातन नगरों से भिन्नता स्थापित करने वाली प्रमुख या श्रेष्ठ नगरी कौशाम्बी थी।

उत्तराध्ययनसूत्र, 20

LX चिकित्सा

चार प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख मिलता है :–

1. यथा भिषक् (वैद्य), भेषज (औषधि), रूग्ण और परिचारक रूप चार चरणों वाली।
   अथवा
2. वमन, विरेचन, मर्दन एवं स्वेदन रूप चतुर्भागात्मिका।
   अथवा
3. अंजन, बन्धन, लेपन और मर्दन रूप चिकित्सा
4. स्थानांग सूत्र (चतुर्थ स्थान) में वैद्यादि चारों चिकित्सा के अंग कहे गये हैं।

वृहद वृत्ति पत्रांक 475

उत्तराध्ययन, नेमीचन्दजी, दिव्यदर्शन ट्रस्ट, पृष्ठ–180

LXI स्वच्छन्द

जिनमत में पाँच साधु अवन्दनीय (स्वच्छन्द) हैं :–

1. **पासत्थ** :– जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र में पुरूषार्थ नहीं करता। इसके दो भेद हैं यथा–
   (अ) **सर्वपासत्थ** :– जो मात्र वेश से साधु है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना नहीं करता।
   (ब) **देशपासत्थ** :– जो बिना कारण शय्यातर पिण्ड, राजपिण्ड, नित्यपिण्ड, अग्रपिण्ड और सामने लाया हुआ भोजन लेता है।
2. **अवसन्न** :– साधु समाचारी में प्रमाद करने वाला अवसन्न है।
3. **कुशील** :– ज्ञान, दर्शन, चारित्र में दोष लगाने वाला कुशील है।
4. **संसक्त** :– मूल, उत्तर गुणों में दोष लगाने वाला संसक्त है।
5. **यथाछन्द** :– सूत्र विरूद्ध प्ररूपणा करने वाला यथाछन्द है।

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, भाग 1 सूत्र 347

LXII चैत्य

चैत्य शब्द का अर्थ भागवत में आत्मा, अमरकोश में यज्ञशाला, भरत के नाट्यशास्त्र में यज्ञगृह, देवगृह, देवकुल, वुद्ध, बिम्ब, वृक्षादि, मेदिन कोशकार ने

वृक्ष, सुन्दरकाण्ड की तिलक टीका में चौराहे का वृक्ष, कल्पसूत्र में जीर्ण–उद्यान, प्रश्नव्याकरण में ज्ञान उववाई, अनुत्तरोप–पातिक, उपासकदशांग आदि शास्त्रों में वृक्ष और उद्यान किया है।

चैत्य शब्द की मीमांसा श्री घासीलालजी महाराज, प्र.सं सवंत्–1987

LXIII गुणशील

यह राजगृह का प्रसिद्ध उद्यान है। भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर शिष्यों ने इसी गुणशील चैत्य में अनशनपूर्वक निर्वाण प्राप्त किया था। आजकल का गुणावा, जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील पर है, प्राचीन काल का गुणशील माना जाता है।

LXIV इन्द्र महोत्सव

इन्द्रमहोत्सव का उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में मिलता है। एक बार इन्द्रमहोत्सव आने पर द्विमुख राजा ने नगरजनों को इन्द्रध्वज स्थापित करने को कहा। तब नागरिकों ने एक सौम्य स्तम्भ पर मनोहारी वस्त्र लपेटा। उसके ऊपर सुन्दर वस्त्र का ध्वज बाँधा उसको चारों ओर से छोटी–छोटी ध्वजाओं और घंटियों से श्रृंगारित किया और उसको ऐसे फूलों से सजाया जिन पर भ्रमर दौड़े चले आते हों उन फूलों पर रत्नों और मोतियों को सुसज्जित किया। उन ध्वजा को गाजे–बाजे के साथ नगर के मध्य में स्थापित किया। तत्पश्चात् लोगों ने फल–फूल आदि से पूजा की। कितने ही लोग वहाँ गाने लगे, नृत्य करने लगे, बाजे बजाने लगे, याचकों को दान देने लगे। कर्पूर–केसर मिश्रित रंग छिटकने लगे, सुगन्धित चूर्ण उड़ाने लगे। इस प्रकार सात दिन तक उत्सव चलता रहा। सातवें दिन पूर्णिमा आई तो द्विमुख राजा ने भी उस ध्वज की पूजा की।

उत्तराध्ययन, भावविजयजी, पंत्राक – 210

LXV स्कन्द महोत्सव

1. **भूतों की गणना** :– वाणव्यन्तर में की गई है। वृहत्कल्प सूत्र भाग 5 में हेमपुर नामक नगर में इन्द्रपूजा का उल्लेख मिलता है कि 500 उच्च कुल की महिलाओं ने फूल, धूपदान आदि से युक्त होकर सौभाग्य के लिए इन्द्र की पूजा की।
2. **स्कन्दमह** :– स्कन्द शिव के लड़के थे। उसके सम्बन्ध में यह पर्व भगवान् महावीर के काल में मनाया जाता था, जब वे श्रावस्ती पहुँचे तब स्कन्द का जुलूस निकाला जा रहा था।
3. **रूद्रमह** :– रूद्रधर की चर्चा जैन ग्रन्थों में मिलती है। रूद्र को महादेवता कहा है।
4. **मुकुन्दमह** :– जैन ग्रन्थों में मुकुन्द पूजा का भी उल्लेख है। भगवान्

महावीर के समय में श्रावस्ती और आलंभिया के निकट मुकुन्द और वासुदेव की पूजा का उल्लेख मिलता है।

5. **शिवमह** :– शिव की पूजा भी भगवान् महावीर के समय प्रचलित थी।
6. **वैश्रमण** :– वैश्रमण कुबेर को कहा है।
7. **नागमह** :– इसका वर्णन ज्ञाता 8, पृ. 95 पर मिलता है।
8. **यक्षमह** :– तीर्थंकरों के यक्ष–यक्षिणी होते हैं।

LXVI जृंभक

स्वच्छन्दाचारी की तरह चेष्टा करने वाले को जृम्भक कहते हैं। जृम्भक देव सदा प्रमोदी, अतीव क्रीडाशील, कन्दर्प में रत और मोहन (मैथुन सेवन) शील होते हैं। जो व्यक्ति उन देवों को क्रुद्ध हुए देखता है वह महान् अपयश प्राप्त करता है और जो उन देवों को तुष्ट हुए देखता है, वह महान् यश को प्राप्त करता है सतत् क्रीड़ा आदि में रत रहते हैं ऐसे तिर्छालोकवासी व्यन्तर जृम्भक देव हैं। ये अतीवक्रामकीड़ा रत रहते हैं। ये वैरस्वामी की तरह वैक्रिय लब्धि आदि प्राप्त करके शाप और अनुग्रह करने में समर्थ होते हैं। इस कारण जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं उसे धनादि से निहाल कर देते हैं और जिन पर कुपित होते हैं उन्हें अनेक प्रकार से हानि भी पहुँचाते हैं।

जृंभक देव 10 प्रकार के कहे गये हैं :–

अन्न जृंभक :– भोजन को सरस–निरस कर देने या मात्रा घटा–बढ़ा देने वाले देव।

पान जृंभक :– वस्त्र को घटाने–बढ़ाने आदि की शक्ति वाले देव।

लयन जृंभक :– घर, मकान आदि की सुरक्षा करने वाले देव।

शयन जृंभक :– शय्या आदि के रक्षक देव।

पुष्प फल जृंभक :– फलों–फूलों व पुष्प फलों की रक्षा आदि करने वाले देव।

विद्या जृंभक :– देवी के मंत्रो–विद्याओं की रक्षा आदि करने वाले देव।

अव्यक्त जृंभक :– सामान्यतया सभी पदार्थो की रक्षा आदि करने वाले देव। कहीं–कहीं इसके स्थान में "अधिपति" जृंभक पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ होता है, राजादि नायक के विषय में जृंभक देव।

जृंभक देव के निवास :– 5 भरत, 5 ऐरावत, 5 महाविदेह इन 15 क्षेत्रों में 170 दीर्घ वैताढ्य पर्वत है। प्रत्येक क्षेत्र में एक–एक पर्वत है तथा महाविदेह क्षेत्र के प्रत्येक विजय में एक–एक पर्वत है, जृंभक देव सभी दीर्घ वैताढ्य में

चित्र–विचित्र यमक पर्वतों में तथा कांचन पर्वत में निवास करते हैं।

स्थिति :– एक पल्योपम की देवकुरू में शीतोदा नदी के दोनों तटों पर चित्रकूट पर्वत है। उत्तरकुरू में शीतानदी के दोनों तटों पर यमक–समक पर्वत है। उत्तरकुरु में शीतानदी से सम्बन्धित नीलवान् आदि 5 द्रह हैं। उनके पूर्व–पश्चिम दोनों तटों पर 10–10 कांचन पर्वत है। इस प्रकार उत्तरकुरू में 100 कांचन पर्वत हैं। देवकुरू में शीतोदा नदी से सम्बन्धित निषध आदि 5 द्रहों के दोनों तटों पर 10–10 कांचन पर्वत है। इस तरह ये भी 100 कांचन पर्वत हुए दोनों मिलाकर 200 कांचन पर्वत हैं। इन पर्वतों पर जृम्भक देव रहते हैं (भग. सूत्र 14 शतक 8 उद्देश्क)

इन जृम्भक देवों का पल्योपम का आयुष्य होता है। ये नित्य प्रमुदित रहते हैं, क्रीडा करते हैं, सूरत समागम में लीन रहते हैं। इनका स्वच्छन्दाचार नित्य (वि.) जृम्भ प्राप्त करता (बढ़ता–बढ़ता) होने से ये जृम्भक कहलाते हैं। (गाथा 53–54, द्रव्यलोक)

लोक प्रकाश, प्रथम विभाग–द्रव्यलोक, पृ. 477

LXVII विद्याधर

विद्या के बल से आकाश में उड़ने वाला मनुष्य, वैताढ़य पर्वत की विद्याधर श्रेणी में रहने वाला मनुष्य विद्याधर कहलाता है। जमीन से दस योजन ऊँचे दक्षिण और उत्तर दिशा में वैताढ़य पर्वत के दोनों तरफ की श्रेणियाँ जिनमें विद्याधर रहते हैं।

जम्बू. प्रथमवक्षस्कार

LXVIII निदान

निदान की घटना प्रथम वर्ष की है ऐसा उल्लेख जैन कथा माला भाग 7 एवं 8 में मिलता है।

मधुकरमुनिजी म.सा., पृ.72

LXIX निदान

निदान को आयतिस्थान भी कहा है। आयति–लाभ, किसका–जन्म मरण का। जिससे जन्म – मरण की प्रक्रिया वृद्धिगत हो उसे निदान कहते हैं।

LXX आठ मंगल का टिप्पण (मेघकुमार)

स्वस्तिक	–	साथिया
श्रीवत्स	–	तीर्थंकर के वक्षस्थल में उठे हुए अवयव के आकार का चिन्ह विशेष श्रीवत्स कहलाता है।

नंदिकावर्त	–	प्रत्येक दिशा में नव कोण वाला साथिया विशेष।
वर्धमानक	–	शराब (सकोरे) को वर्द्धमानक कहते है।
भद्रासन	–	सिंहासन विशेष।
कलश	–	
मत्स्य	–	ये लोक प्रसिद्ध हैं।
दर्पण	–	

औपपातिक सूत्र 4 टीका, राजप्रश्नीय सूत्र 14

LXXI संयममार्ग

साधु के अठारह कल्प बतलाये हैं, छः व्रत, छः काया के आरम्भ का त्याग, अकल्पनीय वस्तु, गृहस्थ के पात्र, पर्यंक निषद्या, स्नान और शरीर की शुश्रूषा इनका त्याग करना।

दीक्षा अयोग्य अठारह प्रकार के पुरूष :– 1. बाल, 2. वृद्ध, 3. नपुंसक, 4. क्लीब, 5. जड़ (भाष जड़, शरीर जड़, करण जड़), 6. व्याधित, 7. स्तेन, 8. राजापकारी, 9. उन्मत्त, 10. अदर्शन, 11. दास, 12. दुष्ट, 13. मूढ़, 14. ऋणार्त, 15. जुंगिक, 16. अवबद्ध, 17. मृतक, 18. शैक्ष–निस्फैटिक।

LXXII दुर्गन्ध

आठ वर्ष पश्चात् राजगृह में कौमुदी महोत्सव आया। उसमें अनेक युवक–युवतियाँ वस्त्रालंकार आदि धारण कर आये थे। राजा श्रेणिक भी इस महोत्सव में अभय कुमार के साथ वर योग्य परिधान पहिन कर गया। अत्यन्त भीड़ होने से राजा का हाथ उस युवती पर पड़ गया। जैसे ही हाथ का संस्पर्श हुआ श्रेणिक का अनुराग भाव जागृत बन गया। तब श्रेणिक ने अपनी मुद्रिका उस बाला के पल्ले के छोर से बाँध दी और श्रेणिक राजा ने अभय कुमार से कहा कि मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल था और उस समय मेरी मुद्रिका कोई हरण करके ले गया है अतएवं तू चोर का पता लगा कर आ। तब अभय कुमार ने सारे द्वार बन्द करवा दिये और एक–एक मनुष्य को मुख, वस्त्र, केशादि बुद्धिमानी से देख–देख कर उसे दरवाजे से बाहर निकालने लगा। ऐसे करते–करते वह आभीरी कुमारी दुर्गन्धा आई उसके वस्त्र देखते हुए पल्ले पर बंधी वह अँगूठी नजर आई। तब अभय कुमार ने पूछा – बाला ये अँगूठी तुमने क्यों ली? आभीरी बाला घबरा कर बोली – मैं कुछ भी नहीं जानती तब उसका सौम्य रूप देखकर अभय कुमार ने अपनी विलक्षण प्रज्ञा से चिन्तन किया कि इस बाला पर मेरे पिता मुग्ध बन गए हैं इसलिए मेरे पिता ने यह मुद्रिका स्वयं इसके पल्ले पर

बाँध दी है, तब अभय कुमार उस बाला को लेकर श्रेणिक के पास पहुँचा। राजा श्रेणिक ने पूछा कि क्या मुद्रिका चुराने वाला चोर मिला?

तब अभय कुमार ने कहा कि मुद्रिका चुराने वाली यह बाला है परन्तु राजन् ! उसने मुद्रिका के साथ तुम्हारा चित्त भी चुरा लिया है, मुझे ऐसा लगता है। राजा ने कहा– दुष्कुल में से भी स्त्री रत्न ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार कहकर राजा ने दुर्गन्धा के साथ विवाह किया और उस पर अनुराग होने से उसको पटरानी भी बनाया।

एक बार राजा अपनी रानियों के साथ खेल खेल रहा था और उसमें शर्त रखी कि जो हारेगा, उसकी पीठ पर जीतने वाला बैठेगा। इस प्रकार शर्त रखने के पश्चात् खेल चलने लगा। तब यदि कुलवान् नारियाँ जीततीं तो वे राजा की पीठ पर वस्त्र डाल देती लेकिन जैसे ही यह गणिका– पुत्री दुर्गन्धा जीती, वह निःशंक होकर उस पर चढ़ गई। उस समय श्रेणिक राजा को हँसी आई। दुर्गन्धा ने हंसी का कारण पूछा। राजा ने उसके पूर्व भव से लेकर अद्यतन पर्यन्त समस्त वृत्तान्त जैसा भगवान् से सुना, वैसा बता दिया। उसे श्रवण कर दुर्गन्धा को वैराग्य आया। उसने दीक्षा ग्रहण की।

"जैन कथाएँ" में भी दुर्गन्धा की शादी 15–16 के पश्चात् बतलाई हैं लेकिन भगवान् के केवलज्ञान के पश्चात् 15 वर्ष तक श्रेणिक जीवित नहीं रहा अतएव आठ वर्ष में विवाह की धारणा ठीक लगती है।

त्रिषष्टिशलाका पुरूषचारित्र पृ. 151–52

LXXIII रोहिणेय

रोहिणेय भगवान् के केवलज्ञान के पश्चात् राजगृह के प्रथम चातुर्मास में ही दीक्षित हुआ। ऐसा लगता है क्योंकि त्रिषष्टि शलाका पुरूषाकार ने सर्ग 11 में रोहिणेय की दीक्षा के पश्चात् अभय कुमार का हरण बतलाया है। अभय कुमार हरण से पहले श्रावकव्रतों को प्रथम चातुर्मास में ही ग्रहण कर चुका था। उसका हरण पहले चातुर्मास के पश्चात् हुआ क्योंकि प्रथम चातुर्मास में उसके हरण का कोई उल्लेख नहीं। गोभद्र सेठ की दीक्षा के समय अभयकुमार नहीं था। उसका हरण हो गया था, ऐसा उल्लेख मिलता है। गोभद्र सेठ की दीक्षा की घटना प्रथम चातुर्मास के पश्चात् की लगती है क्योंकि जिस समय अभय कुमार का हरण हुआ उस समय कौशाम्बी के युवराज उदयन का भी चण्ड प्रद्योतन द्वार हरण कर रखा था, ऐसा त्रिषष्टिशलाका पुरूष में उल्लेख है। युवराज उदयन, शतानीक के राजा रहते ही चण्डप्रद्योतन द्वारा हरण कर लिया गया था। शतानीक की मृत्यु भगवान् के तृतीय चातुर्मास के पहले की है।

अतएव अभय कुमार का हरण प्रथम चातुर्मास के पश्चात् ही संभावित है चतुर्थ चातुर्मास में तो वह राजगृह में ही था।

तत्त्वं तु केवलिगम्यम

LXXIV विदेह

गंडक नदी का निकटवर्ती प्रदेश, विशेष कर पूर्वी भाग जो तिरहुत नाम से प्रसिद्ध है, पहले विदेह देश कहलाता था। इसकी प्राचीन राजधानी मिथिला और महावीर के समय की वैशाली थी। भगवान् महावीर इसी देश में अवतीर्ण हुए थे।

अनुत्तरज्ञानचर्या का द्वितीय वर्ष

उद्‌घाटित हुआ रहस्य

एक अद्‌भुतमिलन :

गंडकी[1] नदी के कूल पर बसा ब्राह्मणकुण्ड नगर महीतल पर अपनी आभा विकीर्ण कर रहा था। अनेक बहुमंजिली गगनचुम्बी हवेलियाँ वहाँ के कलाकौशल को प्रदर्शित कर रही थीं। स्थान-स्थान पर बने उद्यान अपनी सौम्य छटा से पथिकों के आकर्षण का केन्द्र बने थे।

उसके ईशानकोण में निर्मित बहुशाल उद्यान विविध तरुवृन्दों एवं तरु-लताओं से अलंकृत आगन्तुकों का मन मुग्ध बना रहा था। पादपों के अवलम्बन पर पलने वाला खग समूह अपने कलरव नाद से वातावरण की कलुषता का अपहरण कर रहा था।

वहाँ के भद्रिक परिणामी लोग स्वभाव से सरल प्रकृति के थे। वे विशाल ज्ञान का भण्डार अपने में समर्जित किये निरन्तर ज्ञान सरिता में अवगाहन कर रहे थे। वहाँ रहने वाला ऋषभदत्त ब्राह्मण[1] अत्यन्त मेधा सम्पन्न था। वह ऋद्धि-समृद्धि की परिपूर्णता के साथ ज्ञान-समृद्धि में भी वैभव की मिसाल था।

वैदिक साहित्य की दृष्टि से उसने चार वेदों का ज्ञान उपार्जित किया, तत्पश्चात् भगवान् पार्श्वनाथ के सामीप्य से उसने श्रावक योग्य बारह व्रतों को ग्रहण किया था।[2] वह जीव-अजीवादि नव तत्त्वों का ज्ञाता था और उनका पारायण करता हुआ अपनी जीवनचर्या को गतिमान कर रहा था।

उसकी अर्द्धांगिनी देवानन्दा ब्राह्मणी अपने भर्ता का अनुगमन करने वाली थी। सरलमना देवानन्दा का बाह्य सौन्दर्य नेत्राकर्षक था। कमनीय हाथ-पैर वाली, मधुर भाषिणी देवानन्दा का सान्निध्य ऋषभदत्त के हृदय को आनन्दित करने वाला था। धर्म-मार्ग में भी उद्यम करने वाली देवानन्दा ने बारह व्रतों को धारण कर, जीवाजीव आदि की ज्ञाता बनकर ज्ञान प्राप्ति के प्रति गहन अभिरुचि जागृत करली थी और समय-समय पर ज्ञान प्राप्ति का उपक्रम करती रहती थी। उनकी धार्मिक जिज्ञासा को ध्यान में रखकर भगवान् महावीर अनेक भव्यात्माओं का उद्धार करने के लिए इसी ब्राह्मणकुण्ड में पधारे और बहुशाल वन उद्यान में ठहर कर तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगे। ब्राह्मणकुण्ड में गली-गली, चौराहे-चौराहे पर भगवान् महावीर के आगमन की चर्चा होने लगी। अदम्य उत्साह से लोगों के समूह के समूह भगवान् महावीर के दर्शनार्थ जाने लगे। ऋषभदत्त को भी यह सूचना कर्णगोचर हुई कि भगवान् पधार गये हैं। वह भी अत्यन्त हर्षित होकर घर आया और उसने देवानन्दा से

कहा–आज हमारा महान पुण्योदय है कि आज तीर्थपति भगवान् महावीर हमारे यहाँ पधारे हैं। ऐसे महान पुरुषों का तो नाम-गोत्र श्रवण करना भी दुर्लभ है, फिर उनके दर्शन, वंदन एवं वाणी-श्रवण से होने वाले लाभ के विषय में कहना ही क्या !

देवानन्दा ने भगवान् के आगमन के समाचारों को जैसे ही ऋषभदत्त से सुना, उसका रोम-रोम पुलकित हो गया। उसने कहा–अपन भी प्रभु के दर्शन हेतु चलते हैं। दोनों ने धार्मिक स्थान में जाने योग्य वस्त्राभूषणों को धारण किया एवं रथ में बैठकर प्रभु के समवसरण की ओर प्रस्थान कर दिया।[ii]

घोड़ों की टाप के साथ मन में उत्साह भरने लगा। उनके नयन समवसरण का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। शनैः-शनैः वे समवसरण के पास पहुँचे। समवसरण के पास पहुँचकर उन्होंने धार्मिक रथ को रोका।

रथ से नीचे उतरकर ऋषभदत्त ब्राह्मण ने पाँच अभिगम धारण किये, यथा–

1. सचित्त द्रव्यों का त्याग किया (पुष्पमालादि उतार कर रथ में रखे)।
2. अचित्त द्रव्यों का विवेक किया (जूते-चप्पल आदि उतारे)।
3. मुँह पर एक शाटिक–दुपट्टा लगाया।[iii]
4. समवसरण में पहुँच कर प्रभु को दृष्टि-वंदन किया।
5. अपने स्थान पर पहुँच प्रभु को विधियुक्त वंदन किया और बैठ गया।[3]

तत्पश्चात् देवानन्दा ब्राह्मणी भी धार्मिक रथ से नीचे उतरी, उतरकर उसने पाँच अभिगम धारण किये –

1 सचित्त का त्याग किया (पुष्पमालादि)।
2. अचित्त वस्त्रादि का विवेक किया (जूते-चप्पल आदि उतारे)।
3. शरीर को विनय से झुकाया।
4. समवसरण में प्रभु के दीदार को देखकर दृष्टि-वंदन किया।
5. समवसरण में अपने स्थान पर पहुँचकर विधियुक्त वंदन किया और अपने स्थान को ग्रहण कर लिया।[4]

देवानन्दा ने शारीरिक दृष्टि से स्थान ग्रहण कर लिया, लेकिन उसका मन तो प्रभु के मुखचन्द्र को देखने में समाकृष्ट था। वह भगवान् को देखते ही चित्रलिखित-सी रह गयी। प्रभु के दीदार को देखकर उसके हृदय में वात्सल्य की धारा प्रवाहित होने लगी। उन्नत पयोधरों के विस्तीर्ण होने से कंचुकी ने विस्तीर्णता धारण की और उसके उरोजों से दूध की धारा बहने लगी, लेकिन अब भी वह निरन्तर प्रभु को निर्निमेष दृष्टि से निहारे जा रही थी।

गणधर गौतम इस दृश्य का अन्तरावलोकन कर रहे थे। वे प्रत्यक्ष द्रष्टा बने हुए विस्मयान्वित हो रहे थे, चिंतन कर रहे थे कि यह क्या? यह देवानन्दा भगवान् को निर्निमेष निहारे जा रही है और भगवान् को निहारने से इसके शरीर में अद्वितीय परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इसके पयोधरों से पयस बह रहा है। यह दृश्य तो मैं प्रथम बार ही देख रहा हूँ। लगता है, प्रभु का देवानन्दा से कोई सांसारिक सम्बन्ध रहा होगा। मैं भगवान् से पूछता हूँ। इस प्रकार विचार कर इन्द्रभूति गौतम बोले–भगवन् ! देवानन्दा ब्राह्मणी के पयोधरों से दुग्ध क्यों बह रहा है? यावत् इसका शरीर रोमांचित क्यों हो रहा है? यह आपको अपलक दृष्टि से क्यों निहार रही है?

भगवान् ने फरमाया–गौतम ! देवानन्दा मेरी माता है। प्रथम गर्भाधान काल में मैं उसके गर्भ में रहा। मैं उनका पुत्र हूँ। पुत्र के अनुरागवश ही उसके पयोधरों से यह दुग्ध की धारा बह रही है और वात्सल्य के कारण उसका शरीर रोमांचित हो रहा है। यही कारण है कि वह टकटकी लगाकर निरन्तर मुझे देख रही है।[iv]

गौतम गणधर समाधान प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित, संतुष्टित हुए। वे वंदन कर प्रभु के समीप बैठ गये। तब भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया, जिसे श्रवण कर ऋषभदत्त एवं देवानन्दा के मन में वैराग्य का जागरण हुआ और उन्होंने प्रभु से कहा–आपकी अमृत वाणी श्रवण कर हम आपश्रीजी के चरणों में प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहते हैं।

भगवान् ने फरमाया–जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य में विलम्ब न करो।

तब दोनों ने ईशान कोण में जाकर वस्त्रालंकार उतारे और पंचमुष्टि लोच करके प्रभु के चरणों में संयम अंगीकार किया। देवानन्दा ने आर्या चन्दनाजी की शरण को स्वीकार किया। तत्पश्चात् दोनों संयमी यात्रा का निर्वहन करते हुए ग्यारह अंगशास्त्रों का अध्ययन करने लगे।[5]

ऋषभदत्त एवं देवानन्दा संयम जीवन का आनन्द ले रहे थे और प्रभु ब्राह्मणकुण्ड की जनता को अपनी भव्य देशना से सराबोर कर रहे थे। ब्राह्मणकुण्ड के समीप बसे हुए क्षत्रियकुण्ड[v] में भी भगवान् के ब्राह्मणकुण्ड विराजने के समाचार निरन्तर पहुँच रहे थे। क्षत्रियकुण्ड से भी अनेक दर्शनार्थी प्रभु के चरणों की उपासना का निरन्तर लाभ ले रहे थे।

जमालि ने ली प्रभु की शरण :

एक दिन दर्शनार्थियों का समूह क्षत्रियकुण्ड से भगवान् महावीर की देशना

श्रवण करने हेतु निकला। उस समय वहाँ स्थित क्षत्रियकुमार जमालि जो भगवान् महावीर की बड़ी बहिन सुदर्शना का लड़का होने से भानजा था, और भगवान् की पुत्री प्रियदर्शना का पति होने से जामाता था। अपने भव्य प्रासाद में बत्तीस प्रकार के नाटकों को देखता हुआ, मृदंग, वाद्य[vi] आदि की ध्वनियों को श्रवण करता हुआ भोगानन्द में निमज्जित था।

बाहर से आने वाले कोलाहल ने जमालि के मन में हलचल पैदा कर दी। उसने महल के झरोखे से झाँककर देखा तो लोगों का समूह एक ही दिशा की तरफ मुँह करके जा रहा था। जमालि ने सोचा कि आज नगर में कौनसा महोत्सव है? ये लोग कहाँ जा रहे हैं? उसे महोत्सव का स्मरण नहीं आया। तब उसने कंचुकी पुरुष को बुलाया और उससे पूछा—आज नगर में कौनसा महोत्सव है? ये लोग एकत्रित होकर कहाँ जा रहे हैं?

कंचुकी—कुमार ! आज कोई उत्सव नहीं। ब्राह्मणकुण्ड में भगवान् महावीर पधारे हुए हैं, उनकी धर्मदेशना श्रवण करने हेतु ये सभी जा रहे हैं।

कंचुकी से जमालि यह श्रवण कर अत्यन्त हर्षित एवं संतुष्ट हुआ। वह कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहता है—तुम चार घंटा वाला अश्व-रथ लाओ। कौटुम्बिक पुरुष चतुर्घण्टा वाला अश्व-रथ लाते हैं, जिस पर समारूढ़ होकर वह ब्राह्मणकुण्ड नगर की ओर रवाना होता है। ब्राह्मणकुण्ड के बहुशाल वन उद्यान के समीप पहुँचकर उसने उद्यान के बाहर अपने रथ को रोका। वहीं पर पुष्प, ताम्बूल, आयुध (शस्त्र) एवं जूते उतारे। आचमन किया तथा एक शाटिक उत्तरासन लगाकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप पहुँचा। प्रभु को दृष्टि वंदन कर वह आगे बढ़ा, तत्पश्चात् तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण करके पर्युपासना करने लगा।

प्रभु ने उस परिषद को सुधासंभृत वाणी का पान कराया। जिनवाणी श्रवण कर परिषद् पुनः लौट गयी। जमालि निर्ग्रन्थ प्रवचन श्रवण कर प्रभु से निवेदन करने लगा—हे भंते ! आपका प्रवचन मुझे अत्यन्त सारभूत लगा। मैं माता-पिता की आज्ञा लेकर श्रीचरणों में मुण्डित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

प्रभु ने फरमाया—हे देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन धर्मकार्य में विलम्ब न करो।

प्रभु के ऐसा कहे जाने पर वह जमालि रथारूढ़ होकर अपने प्रासाद की ओर क्षत्रियकुण्ड के लिए रवाना हुआ और महलों में जाकर अपने माता-पिता से निवेदन किया—हे माता-पिता ! मैंने भगवान् महावीर से आज धर्म श्रवण किया, वह मुझे अत्यन्त इष्ट एवं रुचिकर प्रतीत हुआ है।

माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! तू धन्य है, कृतार्थ है, भाग्यशाली है कि तूने

भगवान् के मुख से धर्म श्रवण किया और वह तुझे इष्ट, अभीष्ट और रुचिकर लगा है।

जमालि बोला—माता-पिता ! प्रभु द्वारा उपदिष्ट प्रवचन मुझे इष्ट लगा है, इसलिए मैं संसार के भय से उद्विग्न बना, जरा-मरण से भयभीत होकर संयम ग्रहण करना चाहता हूँ, आप मुझे संयम ग्रहण करने की अनुज्ञा प्रदान कीजिए।

जमालि की यह बात श्रवण कर माता के शरीर से पसीना छूटने लगा। वह शोक संतप्त हो काँपने लगी। उसका मुख-कमल मुरझा गया। वह लावण्यशून्य एवं कान्तिविहीन हो गयी। उसके आभूषण नीचे गिरने लगे। उसका उत्तरीय वस्त्र (ओढ़ना) ऊपर से हट गया। शरीर भारी-भारी हो गया। चेतना नष्ट हो गयी और धड़ाम से वह धरतीतल पर गिर पड़ी।

तब दासियों ने स्वर्ण कलशों की जलधारा से सिंचन कर उसके गात्र को स्वस्थ किया। बाँस के पंखों से हवा की। तब उसकी मूर्च्छा अपगत हुई। मूर्च्छा दूर होते ही वह करुण विलाप करने लगी—बेटा ! तू हमारा इकलौता पुत्र है। तू हमें इष्ट, कान्त, प्रिय और मनोज्ञ है। हम तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। इसलिए जब हम परलोकवासी हो जायें, तेरी उम्र परिपक्व हो जाये और तेरे वंश की वृद्धि हो जाये तब तू मुण्डित होकर प्रव्रजित हो जाना।

जमालि—माता-पिता ! यह मनुष्य-जीवन जन्म, जरा, मृत्यु, रोग तथा शारीरिक, मानसिक वेदनाओं से, सैकड़ों व्यसनों एवं उपद्रवों से ग्रस्त है। यह कुश के अग्रभाग पर रही ओस-बिन्दु के समान क्षणिक एवं चचंल है। यह अवश्यमेव छोड़ने योग्य है। हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि हममें से कौन पहले जायेगा? कौन पीछे जायेगा? इसलिए आप मुझे संयम ग्रहण करने की अनुज्ञा प्रदान कीजिए।

माता-पिता—बेटा ! अभी तेरा शरीर यौवन के चरमोत्कर्ष को प्राप्त सबल, सामर्थ्यवान एवं निरोग है, इसलिए अभी तो तू भौतिक ऋद्धि का उपभोग करले। फिर जब हम कालधर्म को प्राप्त हो जायेंगे तब तू उम्र के परिपक्व होने पर, कुल की वृद्धि होने पर संयम ग्रहण करना।

जमालि—माता-पिता ! यह शरीर दुःखों का आगार है, सैकड़ों व्याधियों का खजाना है। अस्थि रूप काष्ठ पर खड़ा नाड़ियों और स्नायुओं के जाल से परिवेष्टित है। मिट्टी के बर्तन की तरह नाजुक और गंदगी से दूषित है। इसको टिकाये रखने के लिए इसकी निरन्तर सम्हाल रखनी पड़ती है। यह सड़न, गलन और विध्वंसन गुणवाला है इसलिए आप मुझे संयम ग्रहण करने की अनुज्ञा दीजिए।

माता-पिता–बेटा ! तेरी ये सर्वांगसुन्दरी नव-यौवना कमनीय गात्र वाली पत्नियाँ हैं। ये श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, लाड़-प्यार में पली हुई, सुख भोग के योग्य हैं। ये विनय की साकार प्रतिमा, कुशल, तेरे इंगित आकार को समझने वाली विचक्षण और प्रत्येक कार्य में अतिनिपुण हैं। ये कटाक्ष, विलास, हास्यादि चेष्टाओं में विशारद, सदैव तुम्हारे मन की धड़कन में थिरकने वाली हैं। अतएव हे पुत्र ! तू विपुल कामभोगों का उपभोग कर, तत्पश्चात् भुक्तभोगी होने पर जब तेरी विषय-विकारों के प्रति उत्सुकता की इतिश्री हो जाये तब तुम प्रव्रजित हो जाना।

जमालि–हे माता-पिता ! ये मनुष्य सम्बन्धी कामभोग अपवित्र और अशाश्वत हैं। ये मानसिक और शारीरिक संताप पैदा करने वाले हैं। अज्ञानी पुरुष ही इनका सेवन करते हैं। ये ज्ञानीजनों द्वारा निन्दनीय हैं। अनन्त संसार की वृद्धि करने वाले, कटु फलदायी, जलते हुए घास के पूले के समान, कठिनता से छूटने वाले, दुःखानुबन्धी तथा सिद्धि-गमन में विघ्न रूप हैं।

माता-पिता–हे पुत्र ! तेरे दादा, परदादा आदि से प्राप्त प्रचुर मात्रा में धन उपलब्ध है, जो सात पीढ़ी तक भी पुष्कल मात्रा में भोगा जाये तो भी समाप्त नहीं होगा, इसलिए इस विपुल ऋद्धि को भोग कर तू संयम ग्रहण करना।

जमालि–यह धन तो चोर चुरा सकता है। अग्नि जला सकती है। रिश्तेदार आदि भागीदार बन सकते हैं। राजा ले सकता है इसलिए यह धन तो त्यागने योग्य है। अतएव मुझे तो आप संयम ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

माता-पिता–पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन तो सत्य एवं समस्त दुःखों का अंत करने वाला है, लेकिन बेटा ! संयम बड़ा दुष्कर है, तलवार की तरह एकांत तीक्ष्ण धार वाला है। लोहे के चने चबाने के समान दुष्कर तथा बालू के कौर की तरह नीरस है। गंगा महानदी को भुजाओं से तैरने के समान अतीव कठिन है। महाशिला को उठाने के समान गुरुत्तर एवं तलवार की धार पर चलने के समान दुर्धर है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणों के लिए ये बातें कल्पनीय नहीं हैं -

1. आधाकर्मिक–साधु के लिए बनाया हुआ भोजन।
2. औद्देशिक–विशेष साधु के लिए बनाया हुआ भोजन।
3. मिश्रजात–साधु एवं गृहस्थ के लिए बनाया हुआ भोजन।
4. अध्यवपूरक–साधुओं का आगमन सुनकर बनते हुए भोजन में और मिला देना।
5. पूतिकम–शुद्ध आहार में आधाकर्मादि का अंश मिलाना।
6. क्रीत–साधु के लिए खरीदा हुआ आहार।

7. प्रामित्य–साधु के लिए उधार लाया हुआ।
8. अच्छेद्य–किसी से जबरन छीनना।
9. अनिसृष्ट–एक वस्तु के एक से अधिक स्वामी होने पर सबकी इच्छा बिना देना।
10. अभ्याहत–साधु के सामने जाकर देना।
11. कान्तार भक्त–वन में रहे भिखारी के लिए तैयार किया हुआ आहारादि।
12. दुर्भिक्ष भक्त–दुष्काल पीड़ित लोगों के लिए तैयार किया आहार।
13. ग्लान भक्त–रोगियों के लिए बना हुआ आहारादि।
14. बाद्रलिका भक्त–वर्षा के समय भिखारियों के लिए तैयार किया आहारादि।
15. प्राधूर्णक भक्त–पाहुनों के लिए बनाया हुआ आहारादि।
16. शय्यातर पिण्ड–मकान देने वाले का आहारादि।
17. राजपिण्ड–राजा के लिए बना आहारादि।[8]

उक्त सभी प्रकार का भोजन साधु नहीं ले सकता है। साथ ही अशस्त्र परिणत कन्दमूल, हरी वनस्पति का भोजन करना भी साधक को नहीं कल्पता। तब तू कैसे साधु जीवन में रह पायेगा?

हे वत्स ! तू सुख में पला हुआ, सुख भोगने योग्य है। दुःख सहन करने योग्य नहीं है। तू अभी बड़ा सुकुमाल होने से शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा को तथा चोर-सर्पादि हिंसक प्राणियों के उपद्रव को एवं वात-पित्त कफ आदि रोगों को तथा उदय आये हुए उपसर्ग एवं परीषहों को सहन करने में समर्थ नहीं है। हे पुत्र ! हम तो क्षण-भर तेरा वियोग सहन नहीं करना चाहते, अतएव जब तक हम जीवित हैं, तू गृहस्थावास में रह और हमारे कालगत होने पर प्रव्रज्या अंगीकार करना।

जमालि–हे माता-पिता ! यह संयम पथ कायर, कापुरुष (डरपोक), इस लोक में आसक्त, परलोक से पराङ्मुख, विषयासक्त एवं साधारण व्यक्ति के लिए दुष्कर है, परन्तु साहसिक, धैर्यवान एवं कृतनिश्चयी पुरुष के लिए दुष्कर नहीं है। अतएव आप मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दीजिए।

माता-पिता–पुत्र ! जब तेरा मनोबल दृढ़ीभूत है तो हमारी ओर से हम अनुमति देते हैं।

क्षत्रियपुत्र जमालि दीक्षा की अनुमति प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् अपनी पत्नी प्रियदर्शना, जो भगवान् महावीर की पुत्री थी, उससे कहा–हे प्रिये!

मैं संसार के भोगों से विरक्त बनकर भगवान् महावीर की सन्निधि में संयम ग्रहण करने जा रहा हूँ। माता-पिता की अनुज्ञा मिल गयी है और अब तुम भी..........

प्रियदर्शना–स्वामिन ! आपका शरीर अत्यन्त सुकुमाल और त्याग का मार्ग वह.......... दुष्कर है.......... सुदुष्कर है, अतीव दुष्कर है। तब कैसे उस मार्ग पर. .... आप.......... चल पायेंगे?

जमालि–शूरवीरों के लिए संयम सुकर है। मैंने अपना दृढ़ निश्चय कर लिया है। अब मैं भोगों के कीचड़ में नहीं रहूँगा।

प्रियदर्शना–जब आप चले जायेंगे, तब हमारा क्या होगा..........?

जमालि–तुम तो स्वयं भगवान् की पुत्री हो। तुम क्यों नहीं भगवान् के बताये मार्ग का अनुसरण कर लेती हो?

प्रियदर्शना–ठीक है, मैं भी इस पर चल सकती हूँ, फिर क्यों न आपका ही अनुगमन कर लूँ।

ऐसा विचार कर प्रियदर्शना भी संयम के लिए तैयार हो गयी और उसने भी जमालि के साथ संयम लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

जमालि दीक्षा के लिए पलक-पाँवड़े बिछा रहा था कि मैं अतिशीघ्र इन मोह की बेड़ियों को तोड़ डालूँ। उसका मन संयम ग्रहण करने के लिए पूर्ण तत्पर था। उसके पिता ने भी उसकी तत्पर भावना का समादर करते हुए दीक्षा की तैयारियाँ प्रारम्भ करने का विचार किया।

जमालि राजकुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा–देवानुप्रियों ! तुम शीघ्र ही पूरे क्षत्रियकुण्ड ग्राम में पानी का छिड़काव करो और नगर की भूमि को साफ-स्वच्छ बना डालो। तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने जमालि के पिता की आज्ञा से नगर को स्वच्छ, सुथरा, परिमंडित किया।

जमालि के पिता ने पुनः कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा–हे देवानुप्रियों! शीघ्र ही जमालि राजकुमार के लिए महामूल्य, महान पुरुषों के योग्य और विपुल निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी करो। पिता की आज्ञा होने पर कौटुम्बिक पुरुषों ने निष्क्रमणाभिषेक की सामग्री उपस्थित की।

तत्पश्चात् माता-पिता ने जमालि राजकुमार को पूर्वाभिमुख करके सिंहासन पर बिठलाया और एक सौ आठ स्वर्ण कलशों से, एक सौ आठ रजत कलशों से, एक सौ आठ स्वर्ण-मणिमय कलशों से, एक सौ आठ रजत-मणिमय कलशों से, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणिमय कलशों से, एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से शंख, प्रणव, भेरी, झल्लरी, खरमुही, मुरज, मृदंग और दुंदुभि के घोष सहित

बड़े ठाठ-बाट से स्नान करवाया। अल्पभार, बहु-ऋद्धि वाले आभूषण-वस्त्रों से शरीर को अलंकृत किया। पुष्प, गंध, माला, अलंकार से गात्र को विभूषित किया और उसका निष्क्रमणाभिषेक किया।

तत्पश्चात् उसको जय-विजय शब्दों से बधाया और माता-पिता ने पूछा–पुत्र! तुम बताओ, हम तुम्हारे लिए क्या करें?

जमालि–माता-पिता ! कुत्रिकापण से रजोहरण एवं पात्र मँगवाओ तथा नापित को बुलाओ।

तब पिता ने भण्डार से तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ निकाली, उनमें से एक-एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ देकर कुत्रिकापण से रजोहरण एवं पात्र मँगवाये तथा एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ देकर नापित को बुलाया।

जमालि के द्वारा बुलाये जाने पर नाई उपस्थित हुआ और उसने पिता से पूछा–देवानुप्रिय ! आप फरमाइये, मुझे क्या करना है?

तब पिता ने कहा–देवानुप्रिय ! तुम जमालि के निष्क्रमण योग्य चार अंगुल बालों को छोड़कर अत्यन्त यत्नपूर्वक बालों का कर्तन करो।

पिता का आदेश प्राप्त कर नाई अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने सुगन्धित गंधोदक से हाथ-पैर धोये। आठ पाटवाले शुद्ध वस्त्र से मुँह को बाँधा और अत्यन्त यत्नपूर्वक चार अंगुल केशों को छोड़कर शेष का कर्तन किया।

तब जमालि की माँ ने हंस चिह्न वाली चद्दर में उन अग्र केशों को ग्रहण किया। फिर उन्हें सुगंधित जल से धोया। श्रेष्ठ गंध एवं माला द्वारा अर्चन किया और शुद्ध वस्त्र में बाँधकर रत्नों के पिटारे में रखा।

तत्पश्चात् जमालि की माता सुदर्शना हार, जलधारा निर्गुण्डी के श्वेत फूल एवं टूटी हुई मोतियों की माला के समान पुत्र के वियोग से आँसू बहाती हुई इस प्रकार कहने लगी–जमालि के केश बहुत-सी तिथियों, पर्वों, उत्सवों, इन्द्रादि महोत्सवों के अवसर पर अन्तिम दर्शन के रूप में होंगे। फिर वे केश तकिये के नीचे रख दिये।

तत्पश्चात् जमालि के माता-पिता ने दूसरी बार उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया और जमालि को कनक-रजत कलशों से स्नान करवाया। रोएँदार सुकोमल, गंध काषायित सुगंधित वस्त्र से उसके गात्र को पोंछा। सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप उसके अंग-प्रत्यंगों पर किया। नासिका की निःश्वास वायु से उड़ जाये ऐसे बारीक, नेत्रों को आह्लादक लगने वाला अत्यन्त सुन्दर, सुकोमल, घोड़े के मुख की लार से भी अधिक कोमल, श्वेत एवं स्वर्ण तार जड़ित महामूल्यवान

हंस के चिह्न से युक्त रेशमी वस्त्र पहिनाया। अठारह लड़ी वाला हार, नवलड़ी वाला हार, एकावली, मुक्ताहार और रत्नावली गले में पहनाई। भुजाओं में अंगद[क], केयूर[ख], कड़ा, त्रुटित[ग], करधनी[घ], दसों अंगुलियों में दस अंगूठियाँ, वक्ष सूत्र, मुरवि (मादलिया), कंठ मुरवि (कंठी), प्रालंब (झूमके), कानों में कुण्डल तथा मस्तक पर चूड़ामणि (कलंगी) और विचित्र रत्न जड़ित मुकुट पहिनाया। ग्रन्थिम (गूँथी हुई), वेष्टिम (लपेटी हुई), पूरिम (पूरी हुई) और संघातिम (सांधकर बनाई हुई) चारों प्रकार की पुष्प मालाओं से कल्पवृक्ष के समान जमालिकुमार को अलंकृत किया।

तत्पश्चात् जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा--देवानुप्रियों ! शीघ्र ही सैकड़ों खम्भों से युक्त एक शिविका तैयार करो जिसमें स्थान-स्थान पर हाव-भाव, विलासयुक्त अनेक पुतलियाँ नयनाभिराम हों। उस शिविका में ईहा मृग (भेड़िया), वृषभ (बैल), तुरग (घोड़ा), नर, मगरमच्छ, विहग (पक्षी), सर्प, किन्नर, रुरु (कस्तूरी मृग), सरभ (अष्टापद पक्षी), चमरी गाय, हाथी, वन लता, पद्मलता आदि के नयनाभिराम चित्र चित्रित हों। उसके स्तम्भों पर वज्र रत्नों की रमणीय वेदिका बनाओ, जहाँ समश्रेणि में स्थित विद्याधर युगल यंत्र चालित जैसे दिखलाई दें। वह शिविका हजारों किरणों से व्याप्त एवं हजारों चित्रों से युक्त देदीप्यमान, अतीव देदीप्यमान प्रतीत हो। जिसे देखते ही दर्शकों के नेत्र वहीं चिपक जायें। जिसका संस्पर्श सुखद एवं श्रीसम्पन्न हो, जिसके हिलने-डुलने से उसमें लगी हुई घंटियाँ मधुर एवं मनोहर ध्वनि प्रसरित करें। जो वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना होने से कमनीय, दर्शनीय हो। निपुण शिल्पियों से निर्मित, देदीप्यमान मणि-रत्नों से, घुँघरूओं से व्याप्त एक हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने योग्य शिविका (पालकी) उपस्थित करो।

कौटुम्बिक पुरुषों ने जमालि के पिता की आज्ञा का पालन कर शिविका तैयार कर दी।

तत्पश्चात् जमालिकुमार केशालंकार, वस्त्रालंकार, माल्यालंकार और आभरणालंकार, इन चार प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर, प्रतिपूर्ण अलंकारों से सुसज्जित होकर सिंहासन से उठा और दक्षिण की ओर से शिविका पर चढ़ा और श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठ गया।

तब जमालि की माता स्नानादि करके यावत् शरीर को अलंकृत करके हंस चिह्न वाला पट शाटक लेकर दक्षिण की ओर से शिविका पर चढ़कर जमालिकुमार की दाहिनी ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठ गयी।

(क) अंगद-भुजा का गहना, भुजबंद (ख) केयूर-बाजूबंद
(ग) त्रुटित-बज्जूबंद (घ) करधनी-कंदोरा

तत्पश्चात् जमालिकुमार की धायमाता शरीर को अलंकृत कर रजोहरण और पात्र लेकर दाहिनी ओर से शिविका पर चढ़कर जमालि राजकुमार के बायीं ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठ गयी।

तब जमालि के पृष्ठ भाग में (पीछे) शृंगार की प्रतिमूर्ति, सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित, चारु[क] गति वाली, रूप और लावण्य की देवी, कमनीय अंग- प्रत्यंगों वाली एक उत्तम तरुणी हिम, रजत, कुमुद, कुन्द, पुष्प एवं चन्द्रमा के समान श्वेत कोरण्ट पुष्पमाला से युक्त श्वेत छत्र हाथ में लेकर धारण करती हुई खड़ी हुई।

जमालिकुमार के दाहिनी और बायीं ओर ऐसी सुन्दर दो तरुणियाँ हाथ में चमर लिए हुए लीला सहित डुलाती हुई खड़ी हो गयीं। वे चमर अनेक मणियों, कनक, रत्नों तथा विशुद्ध एवं महामूल्यवान तपनीय (लाल स्वर्ण) से निर्मित उज्ज्वल, विचित्र दण्डवाले एवं देदीप्यमान थे और शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प (मोगरा), चन्द्र जल बिन्दु एवं मथे हुए अमृत के फेन के पुंज के समान श्वेत थे।

तब क्षत्रियकुमार जमालि के ईशान कोण में शृंगारधर के समान, रूप-यौवन की लावण्यमयी प्रतिमा एक तरुणी शुद्ध जल से परिपूर्ण, उन्मत्त हस्ती के महामुख के आकार समान श्वेत रजत कलश हाथ में लेकर खड़ी हो गयी।

जमालिकुमार के आग्नेय कोण में शृंगार की आगार रूप एक तरुण युवती विचित्र स्वर्णमय दंड वाले ताड़पत्र के पंखे को लेकर खड़ी हो गयी।

तब जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा– देवानुप्रियों! शीघ्र ही समवर्ण वाले, समवय वाले, समलावण्य वाले, रूप और यौवन गुणों से संभृत समआभूषणों से विभूषित गात्र वाले, समवस्त्र धारण करने वाले एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ।

तब उन्होंने पिता की आज्ञा से एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन कौटुम्बिक पुरुषों ने एक-सरीखे आभूषण एवं वस्त्रों को धारण किया, जमालि के पिता के पास उपस्थित हुए और कहा–हमारे योग्य कार्य का आदेश दीजिए।

जमालिकुमार के पिता ने कहा–तुम सब जमालिकुमार की शिविका उठाओ।

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने शिविका उठाई। उस शिविका के आगे-आगे सर्वप्रथम आठ मंगल–1. स्वस्तिक, 2. श्रीवत्स, 3. नन्दावर्त, 4. वर्धमानक, 5. भद्रासन, 6. कलश, 7. मत्स्य और 8. दर्पण चले। इनके पश्चात् पूर्ण कलश, झारियाँ, दिव्य छत्र, पताका, चँवर एवं दर्शनीय गगनचुम्बी विजय ध्वजा लिए राजपुरुष चले।

तत्पश्चात् नीलम की प्रभा से देदीप्यमान उज्ज्वल, दंडयुक्त, लटकती हुई

(क) चारू–सुन्दर

हंस के चिह्न से युक्त रेशमी वस्त्र पहिनाया। अठारह लड़ी वाला हार, नवलड़ी वाला हार, एकावली, मुक्ताहार और रत्नावली गले में पहनाई। भुजाओं में अंगद[क], केयूर[ख], कड़ा, त्रुटित[ग], करधनी[घ], दसों अंगुलियों में दस अंगूठियाँ; वक्ष सूत्र, मुरवि (मादलिया), कंठ मुरवि (कंठी), प्रालंब (झूमके), कानों में कुण्डल तथा मस्तक पर चूड़ामणि (कलंगी) और विचित्र रत्न जड़ित मुकुट पहिनाया। ग्रन्थिम (गूँथी हुई), वेष्टिम (लपेटी हुई), पूरिम (पूरी हुई) और संघातिम (सांधकर बनाई हुई) चारों प्रकार की पुष्प मालाओं से कल्पवृक्ष के समान जमालिकुमार को अलंकृत किया।

तत्पश्चात् जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—देवानुप्रियों ! शीघ्र ही सैकड़ों खम्भों से युक्त एक शिविका तैयार करो जिसमें स्थान-स्थान पर हाव-भाव, विलासयुक्त अनेक पुतलियाँ नयनाभिराम हों। उस शिविका में ईहा मृग (भेड़िया), वृषभ (बैल), तुरग (घोड़ा), नर, मगरमच्छ, विहग (पक्षी), सर्प, किन्नर, रुरु (कस्तूरी मृग), सरभ (अष्टापद पक्षी), चमरी गाय, हाथी, वन लता, पद्मलता आदि के नयनाभिराम चित्र चित्रित हों। उसके स्तम्भों पर वज्र रत्नों की रमणीय वेदिका बनाओ, जहाँ समश्रेणि में स्थित विद्याधर युगल यंत्र चालित जैसे दिखलाई दें। वह शिविका हजारों किरणों से व्याप्त एवं हजारों चित्रों से युक्त देदीप्यमान, अतीव देदीप्यमान प्रतीत हो। जिसे देखते ही दर्शकों के नेत्र वहीं चिपक जायें। जिसका संस्पर्श सुखद एवं श्रीसम्पन्न हो, जिसके हिलने-डुलने से उसमें लगी हुई घंटियाँ मधुर एवं मनोहर ध्वनि प्रसरित करें। जो वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना होने से कमनीय, दर्शनीय हो। निपुण शिल्पियों से निर्मित, देदीप्यमान मणि-रत्नों से, घुँघरुओं से व्याप्त एक हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने योग्य शिविका (पालकी) उपस्थित करो।

कौटुम्बिक पुरुषों ने जमालि के पिता की आज्ञा का पालन कर शिविका तैयार कर दी।

तत्पश्चात् जमालिकुमार केशालंकार, वस्त्रालंकार, माल्यालंकार और आभरणालंकार, इन चार प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर, प्रतिपूर्ण अलंकारों से सुसज्जित होकर सिंहासन से उठा और दक्षिण की ओर से शिविका पर चढ़ा और श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठ गया।

तब जमालि की माता स्नानादि करके यावत् शरीर को अलंकृत करके हंस चिह्न वाला पट शाटक लेकर दक्षिण की ओर से शिविका पर चढ़कर जमालिकुमार की दाहिनी ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठ गयी।

(क) अंगद–भुजा का गहना, भूजबंद
(ख) केयूर–बाजूबंद
(ग) त्रुटित–बज्जूबंद
(घ) करधनी–कंदोरा

तत्पश्चात् जमालिकुमार की धायमाता शरीर को अलंकृत कर रजोहरण और पात्र लेकर दाहिनी ओर से शिविका पर चढ़कर जमालि राजकुमार के बायीं ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठ गयी।

तब जमालि के पृष्ठ भाग में (पीछे) शृंगार की प्रतिमूर्ति, सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित, चारु[क] गति वाली, रूप और लावण्य की देवी, कमनीय अंग- प्रत्यंगों वाली एक उत्तम तरुणी हिम, रजत, कुमुद, कुन्द, पुष्प एवं चन्द्रमा के समान श्वेत कोरण्ट पुष्पमाला से युक्त श्वेत छत्र हाथ में लेकर धारण करती हुई खड़ी हुई।

जमालिकुमार के दाहिनी और बायीं ओर ऐसी सुन्दर दो तरुणियाँ हाथ में चमर लिए हुए लीला सहित डुलाती हुई खड़ी हो गयीं। वे चमर अनेक मणियों, कनक, रत्नों तथा विशुद्ध एवं महामूल्यवान तपनीय (लाल स्वर्ण) से निर्मित उज्ज्वल, विचित्र दण्डवाले एवं देदीप्यमान थे और शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प (मोगरा), चन्द्र जल बिन्दु एवं मथे हुए अमृत के फेन के पुंज के समान श्वेत थे।

तब क्षत्रियकुमार जमालि के ईशान कोण में शृंगारधर के समान, रूप-यौवन की लावण्यमयी प्रतिमा एक तरुणी शुद्ध जल से परिपूर्ण, उन्मत्त हस्ती के महामुख के आकार समान श्वेत रजत कलश हाथ में लेकर खड़ी हो गयी।

जमालिकुमार के आग्नेय कोण में शृंगार की आगार रूप एक तरुण युवती विचित्र स्वर्णमय दंड वाले ताड़पत्र के पंखे को लेकर खड़ी हो गयी।

तब जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा— देवानुप्रियों! शीघ्र ही समवर्ण वाले, समवय वाले, समलावण्य वाले, रूप और यौवन गुणों से संभृत समआभूषणों से विभूषित गात्र वाले, समवस्त्र धारण करने वाले एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ।

तब उन्होंने पिता की आज्ञा से एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उन कौटुम्बिक पुरुषों ने एक-सरीखे आभूषण एवं वस्त्रों को धारण किया, जमालि के पिता के पास उपस्थित हुए और कहा—हमारे योग्य कार्य का आदेश दीजिए।

जमालिकुमार के पिता ने कहा—तुम सब जमालिकुमार की शिविका उठाओ।

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने शिविका उठाई। उस शिविका के आगे-आगे सर्वप्रथम आठ मंगल—1. स्वस्तिक, 2. श्रीवत्स, 3. नन्दावर्त, 4. वर्धमानक, 5. भद्रासन, 6. कलश, 7. मत्स्य और 8. दर्पण चले। इनके पश्चात् पूर्ण कलश, झारियाँ, दिव्य छत्र, पताका, चँवर एवं दर्शनीय गगनचुम्बी विजय ध्वजा लिए राजपुरुष चले।

तत्पश्चात् नीलम की प्रभा से देदीप्यमान उज्ज्वल, दंडयुक्त, लटकती हुई

(क) चारू–सुन्दर

कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, चन्द्र सदृश आभामय, ऊँचा, धूप से बचाने वाला छत्र, अत्युत्तम सिंहासन, जिसमें श्रेष्ठ मणि-रत्नों से विभूषित राजा की पादुकाओं की जोड़ी रखी थी, पादपीठ—राजा के पैर रखने की चौकी तथा सेवकों (आज्ञापालन में तत्पर), भृत्यों (विभिन्न कार्यों में नियुक्त) एवं पैदल चलने वाले लोग क्रमशः रवाना हुए। उनके पीछे क्रमशः दण्डधारी, भालाधारी, धनुर्धारी, चँवरधारी, चाबुकधारी, पुस्तकधारी, काष्ठपट्टधारी, आसनधारी, वीणाधारी, ताम्बूलधारी, तैलपत्रधारी, सिक्कों के पात्रधारी पुरुष यथाक्रम से चले।

उनके पीछे क्रमशः दण्डधारी, मुण्डित, शिखाधारी, जटाधारी, मयूर- पिच्छिधारी, विदूषक, हल्लेबाज, खुशामदी, वादकर—वाद-विवाद करने वाले, कामुक, मजाक करने वाले, भांड, खेल-तमाशा करने वाले—ये सभी लोग तालियाँ पीटते हुए, वाद्य बजाते हुए, गाते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए, बोलते हुए, सुनाते हुए, रक्षा करते हुए, अवलोकन करते हुए, जय-जय बोलते हुए आगे बढ़े।

तदनन्तर बहुत-से उग्र-रक्षक, अधिकारी, उग्रपुत्र, भोग—राजा के मंत्रिमंडल के सदस्य, भोगपुत्र, राजन्य—राजा के परामर्श मण्डल के सदस्य, इक्ष्वाकुवंशीय, ज्ञातवंशीय, कुरुवंशीय, क्षत्रिय, ब्राह्मण, सुभट, योद्धा, प्रशास्ता— प्रशासनाधिकारी, मल्लकी—मल्ल गणराज्य के सदस्य, लिच्छवी—लिच्छवी गणराज्य के सदस्य, अन्य अनेक राजा, माण्डलिक राजा, ईश्वर—ऐश्वर्यशाली पुरुष, तलवर—राज सम्मानित विशिष्ट पुरुष, मांडम्बिक—जागीरदार, कौटुम्बिक—बड़े परिवार के प्रमुख, इभ्य—वैभवशालीजन, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, अनेक छोटे व्यापारियों को देशान्तर में व्यवसाय कराने वाले समर्थ व्यापारी आदि अनेक महापुरुष, क्षत्रियकुमार जमालि के आगे, पीछे और आस-पास चलने लगे।

तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता उत्तम वस्त्राभूषणों से सुशोभित होकर श्रेष्ठ हस्ती स्कन्ध पर चढ़े हुए, कोरंट की माला युक्त छत्र धारण किये, श्वेत चामरों से बिंजाते हुए अश्व, हस्ती, रथ एवं श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर महासुभटों के समुदाय सहित जमालि के पीछे-पीछे चल रहे थे।

इस प्रकार विशाल जन-समुदाय से परिवृत होकर वह जमालि क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर के बीचोबीच जाता हुआ ब्राह्मण कुण्डिग्राम के बाहर बहुशाल उद्यान में, जहाँ भगवान् महावीर विराजमान थे, उधर जाने लगा।

जब क्षत्रियकुमार जमालि उधर जा रहा था तब शृंगारिक, त्रिक, चतुष्क[vii] और चत्तर,, राजमार्ग आदि पर बहुत-से अर्थार्थी (धनार्थी), कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी (मात्र भोजनादि के अभिलाषी) किल्विषिक—भांड आदि कापालिक—खप्पर धारण करने वाले भिक्षु, कर बाधित—राज्य कर से कष्ट पाने वाले, शांखिक—शंख बजाने वाले, चाक्रिक—चक्रधारी, लांगलिक—हल चलाने वाले, मुख मांगलिक—मुँह

से मंगल वचन बोलने वाले, वर्धमान–औरों के कंधों पर स्थित पुरुष, पूज्य मानव–चारणादि, खंडकगण–छात्र समुदाय, इष्ट–वांछित, कान्त–रमणीय, प्रिय–प्रीतिकर, मनोज्ञ–मनोनुकूल, प्रणाम–चित्त को प्रसन्न करने वाली वाणी, मनोभिराम–मन को रमणीय लगने वाली, हृदयगमनीय–हृदय में आह्लाद पैदा करने वाली वाणी से एवं जय-विजयादि सैकड़ों मांगलिक शब्दों से जमालि का अभिवादन करते हुए, प्रशस्ति करते हुए इस प्रकार बोले–हे नन्द ! धर्म द्वारा तुम्हारी जय हो। हे नन्द ! तप के द्वारा तुम्हारी जय हो। हे नन्द ! तुम्हारा कल्याण हो। हे देव ! उत्तम ज्ञान-दर्शन-चारित्र द्वारा इन्द्रियों को जीतो और इन्द्रियजयी बनकर श्रमण धर्म का पालन करो। हे देव ! विघ्नजयी बनकर सिद्धि को प्राप्त करो। तप से धैर्य रूपी कच्छे को अत्यन्त दृढ़तापूर्वक बाँधकर राज-द्वेष रूपी मल्लों को पछाड़ो, उत्तम शुक्ल ध्यान के द्वारा अष्टकर्म शत्रुओं का मर्दन करो। हे धीर ! अप्रमत्त होकर विश्व के रंगमंच पर आराधना रूपी ध्वजा फहराओ। विशुद्ध ज्योतिर्मय केवलज्ञान को प्राप्त करो। जिनवर कथित सिद्धि मार्ग पर चलकर परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो। परीषह सेना को विनष्ट कर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करो। तुम्हारा धर्माचरण निर्विघ्न हो। इस प्रकार लोग अभिनन्दन एवं स्तुति करने लगे।

जमालि क्षत्रियपुत्र का हजारों नर-नारी नैत्रों से बार-बार दर्शन कर रहे थे। हजारों लोग हृदय से अभिनन्दन कर रहे थे। शुभकामनाएँ प्रस्तुत कर रहे थे, गुणकीर्तन कर रहे थे। जमालिकुमार हजारों नर-नारियों के अभिवादन को, उनके प्रणामों को अपना दाहिना हाथ ऊँचा करके बार-बार स्वीकार करता हुआ, अत्यन्त कोमल वाणी से उनका कुशल-क्षेम पूछता हुआ, हजारों घरों की पंक्तियों को लांघता हुआ क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर के बीचोबीच निकला, निकलकर ब्राह्मणकुण्ड नगर के बाहर बहुशाल उद्यान के निकट आया और भगवान् के छत्रादि अतिशयों को देखा, देखते ही शिविका से नीचे उतर गया।

तब जमालिकुमार के माता-पिता जमालि को आगे करके, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की और वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके माता-पिता ने कहा–भगवन् ! जमालि हमारा इकलौता इष्ट, कान्त और प्रिय पुत्र है। इसका तो नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है, फिर दर्शनों का तो कहना ही क्या? जैसे कोई कमल कीचड़ में उत्पन्न होने और जल में वृद्धिंगत होने पर भी पंक से अलिप्त रहता है वैसे ही जमालि राजकुमार काम में उत्पन्न हुआ और भोग में बड़ा हुआ है किन्तु काम-भोगों में रंचमात्र भी लिप्त नहीं हुआ और न ही पारिवारिक मोह में आसक्त हुआ।

हे देवानुप्रिय ! यह जन्म-जरा-मरण से भयभीत हुआ है। अतएव यह गृहस्थ से सन्यास जीवन को अंगीकार करना चाहता है। हम आप देवानुप्रिय को शिष्य-भिक्षा देते हैं। आप इसे स्वीकार कीजिए।

भगवान् ने फरमाया–देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य में विलम्ब न करो।

भगवान् द्वारा ऐसा कहने पर जमालिकुमार हर्षित, संतुष्टित होकर, भगवान् को वंदन-नमस्कार करके ईशान कोण में गया जहाँ उसने आभूषण, माला और अलंकार उतार दिये। जिन्हें जमालि क्षत्रियकुमार की माँ ने हंस चिह्न वाले रेशमी वस्त्र में ग्रहण कर लिया और नेत्रों से आँसू की लड़ी गिराती हुई बोली–पुत्र! संयम में चेष्टा करना, संयम में यत्न करना, संयम में पराक्रम करना, संयमी क्रियाओं में जरा भी प्रमाद मत करना।

ऐसा कहकर जमालि के माता-पिता जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गये।

तत्पश्चात् जमालिकुमार ने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया और उसने 500 पुरुषों के साथ ऋषभदत्त ब्राह्मण की तरह ही भगवान् से प्रव्रज्या अंगीकार की। संयम लेकर जमालि ने सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत-से उपवास, बेला, तेला, अर्द्धमास, मासखमण आदि विचित्र तपःकर्म से आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा।

जमालि के साथ प्रियदर्शना ने भी एक हजार स्त्रियों के साथ संयम अँगीकार किया और प्रियदर्शना भी साध्वी चन्दनबालाजी आर्या के पास शास्त्रों का अध्ययन कर विविध प्रकार की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगी।[10]

इस प्रकार भगवती सूत्र में ब्राह्मणकुण्ड में ही जमालि की दीक्षा का उल्लेख है[11] जबकि त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र एवं महावीरचरियं में ऐसा उल्लेख है कि ब्राह्मणकुण्ड में ऋषभदत्त एवं देवानन्दा की दीक्षा के पश्चात् भगवान् क्षत्रियकुण्ड पधारे।[12] वहाँ भगवान् का समवसरण हुआ और स्वयं राजा नन्दिवर्धन विशाल राज-परिवार सहित भगवान् की धर्मदेशना श्रवण करने के लिए पहुँचा।[13] उस समय भगवान् का जमाता जमालि एवं पुत्री प्रियदर्शना[viii] भी धर्मदेशना श्रवण करने हेतु वहाँ उपस्थित हुई। धर्म श्रवण कर जमालि प्रतिबुद्ध हुआ और उसने 500 पुरुषों के साथ संयम अंगीकार किया। प्रभु की पुत्री प्रियदर्शना ने भी एक हजार स्त्रियों के साथ संयम ग्रहण किया।[14]

जमालि की दीक्षा बहुशाल वन उद्यान में हुई जो ब्राह्मणकुण्ड और क्षत्रियकुण्ड के मध्य में था। इसलिए चाहे ब्राह्मणकुण्ड में दीक्षा कहें या क्षत्रियकुण्ड में, इसमें कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार जमालि की दीक्षा के पश्चात् विदेह जनपद के ग्राम-नगरों में विचरण करते हुए, भगवान् अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबुद्ध कर रहे हैं और अनेक भव्यात्माओं का उद्धार करते हुए विदेह जनपद में विचरण करते हुए द्वितीय वर्षावास हेतु वैशाली पधार गये और वहीं अनेक भव्यात्माओं को संसार सागर से तिराते हुए तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

अनुत्तरज्ञानचर्या का द्वितीय वर्ष

टिप्पणी

I गण्ड़की नदी

यह नदी हिमालय के सप्तगंडकी और धवलगिरिश्रेणि से निकलती है। यह गंडक, नारायणी आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध है।

II देवानंदा

देवानन्दा के सन्दर्भ में दासियों का विवरण औपपातिक सूत्र में मिलता है, यथा कुबड़ी–किरात देश की, बौनी–झुकी कमर वाली, बर्बर देश की, बकुश देश की, यूनान देश की, पहलव देश की, इसिन देश की, चारूकिनिक देश की, लासक देश की, लकुश देश की, सिंहल देश की, द्रविड़ देश की, बहल देश की, अरब देश की, पुलिन्द देश की, पंकण देश की, मुरूंड देश की, शबर देश की, पारस देश की, इस प्रकार विभिन्न देशों की दासियों का वर्णन है।

औपपातिक, अभयदेव, पृष्ठ 33–34

III दुपट्टा

एक शाटिक वस्त्र ज़ो उत्तर दिशा से डाला जता है, वह उत्तरासन है। यह उत्तर से दक्षिण में डाला जाता है।

औपपातिक, हस्तलिखित, संवत् 1211, सेठिया ग्रन्थालय, बीकानेर, पृ.40

IV गर्भ संहरण की घटना

आचार्य गुणचन्द्र ने महावीरचरियं में ऐसा उल्लेख किया है कि भगवान् के गर्भ संहरण की बात इतने समय तक जन साधारण को ज्ञात नहीं थी। वह इसी समय ज्ञात हुई इसे श्रवण कर देवानन्दा, ऋषभदत्त के साथ–साथ सारी परिषद् आश्चर्यचकित हो गयी।

महावीरचरियं, गुणचन्द्र, वही, अष्टम प्रस्ताव, पृ.380

V क्षत्रियकुण्ड

मुजफ्फरपुर जिला में बेसाड़पट्टी के पास जो बसुकुण्ड़ गाँव है, वही महावीर की जन्मभूमि प्राचीन क्षत्रियकुण्डपुर है।

VI तात्कालीन वाद्य

शंख, श्रृंग, श्रृंखिका, खरमुही (काहला) पेया (महती काहला) पिरिपिरिका (कोलिकमुखावमद्धमुख वाद्य) पणव (लघुपहट) पटह भंभा (ढक्का) होरम्भ (महाढक्का) भेरी (ढक्काकृति वाद्य) झल्लरी (यह बायें हाथ में पकड़कर दांये हाथ से बजाई जाती हैं) दुन्दुभी (मंगल और विजय सूचक होती है तथा देवालयों

में बजाई जाती है) मुरज (महाप्रमाणमर्दल) मृदंग (लघुमर्दल) नंदी मृदंग (एक ओर से संकीर्ण अन्यत्र विस्तृत मुरज विशेष) आलिंग (गोपुच्छाकार मृदंग जो एक सिरे से चौड़ा और दूसरे सिरे से संकरा होता था) कुस्तुंब, गोमुखी मर्दल (दोनों ओर से सम) वीणा, विपंची (त्रितंत्री वीणा) वल्लवी (सामान्य वीणा) महती, कच्छभी (भारती वीणा) चित्रवीणा, सबद्धी, सुघोषा, नंदिघोषा, भ्रामरी, षड्भ्रमरी, वरवादिनी (सप्ततंत्री वीणा) तूणा, तुम्बवीणा, आमोद, झञ्झा, नकुल, मुकुन्द (मुरज वाद्य विशेष) हुडुक्का, विचिक्की, करटा, डिंडिम, किणित, कडंब, दर्दर, दर्दरिका, कलशिका, महुया, तल, ताल, कांस्यताल रिंगिसिका, लन्तिया, मगरिका, शिशुभारिका, वंश, वेणु, वाली (तूण विशेष, जो मुख से बजाया जाता था) परिली और बद्धक।

VII चतुष्क

श्रृंगाटक त्रिक–1 चतुष्क 2 चत्वर 3 चतुर्मुख

हारिभद्रीय आवश्यक वृत्ति, पूर्व भाग, पत्रांक–136 सन् 1917

VIII प्रियदर्शना

सुदर्शना भगवान् की बड़ी बहिन थी, उसके पुत्र का नाम था जमालि। भगवान् की पुत्री अनवद्या (प्रियदर्शना) उसकी पत्नी थी। अन्य ऐसा कहते है कि ज्येष्ठा, सुदर्शना, अनवद्या ये जमालि की पत्नी के नाम हैं।

आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि वृत्ति, पत्रांक 405

अनुत्तर ज्ञानचर्या का तृतीय वर्ष

साहिल मिला भव्यों को

मन भाई मृगावती :

वैशाली[I] चातुर्मास में अनेक भव्यात्माओं को मोक्ष मार्ग पर समारूढ़ कर भगवान् महावीर वत्स देश में विचरण करने लगे। वत्स[II] देश की राजधानी कौशाम्बी उस समय की ऐतिहासिक नगरी थी, जहाँ राजा शतानीक धर्मानुरागी राजा चेटक का जँवाई था।

राजा शतानीक क्षत्रियोचित गुणों से शोभित, उत्तम कुलोत्पन्न, करुणा की प्रतिमूर्ति था। उसका राज्य-कोष अत्यन्त समृद्ध था। वह दुर्भिक्ष एवं महामारी के भय से रहित, निर्विघ्न राज्य का पालन करता था। एक दिन राजा शतानीक ने राज्यसभा में उपस्थित जनसमुदाय से पूछा–मेरे इस राज्य में आप लोगों को किस बात की कमी महसूस हो रही है? जनता ने कहा–यहाँ आपके राज्य में और किसी बात की कमी नहीं है, लेकिन एक चित्रशाला नहीं है। शतानीक ने कहा–शीघ्र ही यह कमी पूर्ण हो जायेगी।

तत्काल राजा शतानीक ने अनेक चित्रकार बुलाये और उन्हें सजीव चित्रों को बनाने की आज्ञा दी। अनेक चित्रकार अपने कलाकौशल से विचित्र चित्र बनाने लगे। वहाँ उपस्थित चित्रकारों में एक चित्रकार को यक्ष से वरदान मिला हुआ था। हुआ यों कि उस समय साकेतपुर नगर में सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था। उस यक्ष की प्रतिमा को जो भी चित्रकार चित्रित करता, वह उसको मार डालता था और यदि उस यक्ष की प्रतिमा को कोई चित्रित नहीं करता तो वह उस नगर में महामारी फैला देता। इस प्रकार प्रतिवर्ष एक चित्रकार की हत्या होने लगी। उस विकट परिस्थिति का अवलोकन कर अनेक चित्रकार शनैः-शनैः नगरी से पलायन करने की तैयारी करने लगे।

ऐसी स्थिति में साकेतपुर नरेश ने महामारी फैलने के भय से जाते हुए उन चित्रकारों पर रोक लगाई तथा एक व्यवस्था कर दी कि सभी चित्रकारों के नाम चिट्ठियों पर लिखकर घड़े में डाल दिये जाए। प्रतिवर्ष उस घड़े में से एक चिट्ठी निकालते। जिसके नाम की चिट्ठी निकलती, वह उस यक्ष की प्रतिमा को चित्रित करता था।

एक बार कौशाम्बी से एक चित्रकार चित्रकला सीखने के लिए साकेतपुर पहुँचा और एक वृद्धा स्त्री के घर उतरा। उस वृद्धा के एक पुत्र था, उसके साथ उस चित्रकार की मैत्री हो गई क्योंकि वृद्धा का पुत्र भी चित्रकार था। दोनों

मित्र बड़े प्रेम से रहने लगे। इधर यक्ष की प्रतिमा को चित्रित करने का समय आया और उस घड़े में से चिट्ठी निकाली। संयोग से चिट्ठी वृद्धा के पुत्र के नाम की निकली। जब वृद्धा को इस बात का पता चला, तो वह जोर-जोर से करुण विलाप करने लगी। तब उस कौशाम्बी के चित्रकार ने कहा—माताजी ! आप चिंता न करें, आपके पुत्र के स्थान पर मैं उस यक्ष की प्रतिमा को चित्रित कर दूँगा। वृद्धा ने कहा—बेटा ! तू भी तो मेरा ही पुत्र है। तब उस कौशाम्बी के चित्रकार ने कहा—मेरा भाई जाये, उससे अच्छा है मैं ही चला जाऊँ। ऐसा कहकर वह आगन्तुक चित्रकार चला गया।

यक्ष के मन्दिर में पहुँचकर उसने बेले की तपस्या का प्रत्याख्यान कर लिया। अपने शरीर को शुचिमय बनाकर चन्दन का विलेपन कर लिया और यक्ष की मूर्ति के पास चित्रांकन करने के लिए उपस्थित हुआ। चित्रांकन करने के पश्चात् यक्ष को मूर्ति की समक्ष अत्यन्त विनयभाव से निवेदन किया—हे देव! आपकी मूर्ति को चित्रित करने में अतिचतुर चित्रकार ही समर्थ हैं। मैं एक नन्हा गरीब बाल चित्रकार आपका सुन्दर चित्रांकन नहीं कर सका, लेकिन आप तो करुणा के सागर हो, मेरी त्रुटि को अवश्यमेव क्षमा प्रदान करने की कृपा करावें।

उसकी विनय-संपृक्त मधुर वाणी को श्रवण कर यक्ष प्रसन्न हो गया और प्रकट होकर बोला—वत्स ! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ, तू कोई वरदान माँग ले।

चित्रकार बोला—बस, यही एक विनति है कि आप अब आपकी प्रतिमा चित्रित करने वाले किसी चित्रकार को नहीं मारें।

यक्ष—यह तो मैंने तुम्हारे चित्रांकन करते समय ही प्रतिज्ञा कर ली थी। तुम और कोई वरदान माँगो।

चित्रकार—आप इतनी कृपा करना कि इस नगर में महामारी न फैले।

यक्ष—मैं महामारी भी नहीं फैलाऊँगा। लेकिन एक वरदान तुम स्वयं के लिए माँगो।

चित्रकार—मैं यह चाहता हूँ कि जिस किसी मनुष्य या तिर्यंच के शरीर का एक अंश भी देख लूँ, उसका सम्पूर्ण चित्र पूरा शरीर देखे बिना बना सकूँ।

यक्ष—वत्स ! आज के बाद ऐसा ही होगा।

वरदान प्राप्त कर वह चित्रकार लौट गया। उसे जीवित देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये। पूरा नगर हर्ष के वातावरण में हिलोरें लेने लगा और साकेतपुर नरेश ने भी उसे यथोचित उपहार दिया। वह चित्रकार उपहारादि लेकर पुनः कौशाम्बी लौट आया और यहीं चित्रकारी करने लगा।

राजा शतानीक के बुलाने पर वह चित्रशाला में आकर्षक चित्र बनाने के लिए आतुर था। उसने अनेक आकर्षक चित्र उस चित्रशाला में बना डाले। एक बार वह चित्र बना रहा था और महल के झरोखे की जाली से उसे शतानीक की महारानी मृगावती के पैर का अंगूठा मुद्रिका सहित दिखाई दिया। अंगूठा देखकर उसने विचार किया कि मुझे मृगावती महारानी का आकर्षक चित्र बनाना चाहिए। यह सोचकर वह मृगावती का चित्र बनाने लगा। मृगावती का पूर्ण चन्द्रवत् प्रहसता हुआ-सा मुख-मण्डल उसने अत्यन्त जीवंत बनाया। वह आकर्षक पलकों को चित्रित कर रहा था कि स्याही का एक बिन्दु मृगावती के चित्र की जंघा पर गिरा। उसने उस बिन्दु को पोंछ दिया, लेकिन पुनः दूसरा बिन्दु वहीं पर गिरा। उसे भी उसने पोंछ दिया तो तीसरा बिन्दु फिर वहाँ गिरा। तब यक्ष से वरदान प्राप्त चित्रकार समझ गया कि जरूर मृगावती की जंघा पर लांछन होगा। अब उसने उस बिन्दु को नहीं पोंछा और वह बिन्दु लांछन के रूप में परिवर्तित हो गया। उस चित्रकार ने मृगावती का सजीव चित्र बना दिया।

इधर मृगावती महारानी का सजीव चित्र बनने के पश्चात् राजा शतानीक एक दिन चित्रशाला में आया और मृगावती का चित्र देखते ही उसके होंठ फड़कने लगे, आँखें लाल हो गयी, भौंहें तन गयी और क्रोध से उस चित्रकार को बोला–अरे निर्लज्ज ! तूने छुपकर कहाँ महारानी को देखा है? मैं तुझे जान से मार डालूँगा।

तब अन्य सभी चित्रकारों ने कहा–राजन् ! यह चित्रकार शीलधर्म की मर्यादा पालने वाला है। इसने महारानीजी को नहीं देखा, लेकिन इसको यक्ष का वरदान प्राप्त है। यह जिस-किसी मनुष्य या तिर्यंच के एक अंग को देखता है उसको यथावत् चित्रित कर देता है। अभी भी इसने महारानी के पैर के केवल अंगूठे को झरोखे की जाली से देखा और पूरा चित्र बना दिया।

तब राजा शतानीक ने उस चित्रकार की परीक्षा लेने के लिए अपनी कुबड़ी दासी का मात्र मुख दिखलाया। चित्रकार ने उसका वैसा हूबहू रूप बना दिया और राजा शतानीक को दिखलाया। लेकिन राजा शतानीक का क्रोध अभी तक शांत नहीं हुआ था। क्रोध इंसान को बहरा, गूंगा, अंधा और विवेक-विकल बना देता है। क्रोध से प्रज्ञा मलिन हो जाती है। क्रोध की भूमि पर अनेक विकारों का जन्म होता है। वे विकार हमारे समस्त सद्गुणों को धो डालते हैं। यही स्थिति राजा शतानीक की हुई। उसने आवेश में आदेश दे दिया कि इस चित्रकार का दायें हांथ का अँगूठा काट डालो।

राजा का आदेश श्रवण कर चित्रकारों की मण्डली दंग रह गयी। इतनी मेहनत करके जिसने चित्रशाला को सजाया, सँवारा और उसको अत्यन्त आकर्षक

बनाया, आज उसी चित्रकार का अंग-भंग करने का यह कठोर आदेश। अहह!.......... कैसी क्रूर नियति? न जाने अशुभ कर्म कब उदय में आ जायें? और कब........... आदमी को भयंकर शोक-सागर में निमग्न कर दे। सभी चित्रकारों के चेहरे पर उदासी, लेकिन राजा का आदेश........... आखिर कलालों ने अंगूठे को काट ही दिया। चित्रकार का मन अत्यन्त ग्लानि से भर गया। वह विचार करने लगा–मैं एकदम बेकसूर इंसान........... कोई खता नहीं की........... फिर भी आज यह राजा........... चित्रकार आवेश में आ गया। वह भूल गया कि यह सब मेरे ही कर्मों की सजा है। कर्म अनन्तानन्त भवों तक साथ चलते हैं। न जाने किस जन्म के कर्म का फल किस जन्म में मिल जाता है ! अशुभ कर्म करना सरल है, लेकिन उनका फलभोग बड़ा दुष्कर है। आवेशित चित्रकार व्यथित हो सोचने लगा कि मुझे राजा से बदला लेना है। उसने मेरी कला छीनकर मेरे पेट पर लात मारी है। मैं भी उसको मजा चखाके रहूँगा। अब कहाँ जाऊँ........... कैसे करूँ........... दुःख की इस वेला में उसे उपकारी यक्ष का स्मरण आया।

दुःख इंसान को धर्मात्मा बना देता है। दुःख गुरुभक्त, प्रभुभक्त बनाता है। दुःख में व्यक्ति कृतज्ञ और नमकहलाल बन जाता है। वह चित्रकार भी दुःखी बनकर साकेतपुर नगर चला गया और सुरप्रिय यक्ष के यक्षायतन में उपवास करके उसकी समर्चा करने लगा, क्योंकि सुख में संगी साथ जन खूब साथ देते हैं, लेकिन दुःख में वे कोसों दूर चले जाते हैं। बात करना तो दूर रहा, लेकिन आँख भी नहीं मिलाते। दुःख में एकमात्र देव, गुरु, धर्म ही सहायक बनते हैं। वह भक्तिभाव में लीन होकर उपासना करने लगा। भक्ति से यक्ष प्रसन्न हो गया और प्रकट होकर बोला–चित्रकार, तुम चिंतित न बनो। मैं तुम्हारे मन की पीड़ा को जान गया हूँ। तुम जैसा चित्र दायें हाथ के अंगूठे से बनाते हो वैसा ही चित्र तुम अब बायें हाथ के अंगूठे से भी बना पाओगे।

यह वरदान प्राप्त कर चित्रकार संतुष्ट हो गया और संतुष्ट होकर उसने वस्त्राभूषणों से सुसज्जित मृगावती महारानी का नयनाभिराम चित्र बनाया। चित्र बनाने के पश्चात् विचार किया कि यदि इस चित्र को मैं स्त्री-लोलुप उज्जयिनी नरेश चण्डप्रद्योतन के पास ले जाऊँ तो वह इसे अवश्यमेव प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा और चण्डप्रद्योतन की विशाल सेना से शतानीक अवश्यमेव पराजित बन जायेगा। मुझे यही करना चाहिए। ऐसा विचार करके वह उज्जयिनी पहुँच गया और वहाँ जाकर राजा चण्डप्रद्योतन से मिलने की अनुमति द्वार-रक्षक से माँगी।

द्वारपाल ने जाकर चण्डप्रद्योतन राजा से कहा–महाराज की जय हो, एक विदेशी चित्रकार आपके दर्शन करना चाहता है।

राजा–ससम्मान उसे यहाँ लाओ।

द्वारपाल चित्रकार से कहता है–आपको राजा बुला रहे हैं।

राजा के बुलाने पर चित्रकार प्रविष्ट होकर बोला–महाराज की जय हो..........

राजा–तुम कहाँ से आये हो? और क्या विशेष वार्ता करना चाहते हो?

चित्रकार–राजन् ! मैं कौशाम्बी से आया हूँ और एक सुन्दर चित्र आपके लिए.......... सिर्फ आपके लिए बनाकर लाया हूँ।

महाराज–अच्छा, बताओ।

चित्रकार– (चित्र राजा के हाथ में सौंपते हुए) लीजिए राजन्।

राजा (चित्र देखकर)–अरे.......... यह सुन्दरी.......... परमसुन्दरी.......... चित्र देखते ही मेरा चित्त इसी में संलग्न हो गया है..........। यह कौन है?

चित्रकार–यह शतानीक की मृगावती महारानी जो वहाँ नहीं आपके राजभवन में सुशोभित होने लायक है।

राजा–मुस्कराकर, अगर तुम्हारी सद्भावना रही तो..........

चित्रकार–वैसा ही हो महाराज।

राजा–अच्छा ! यों कहकर चित्रकार को यथोचित इनाम देकर रवाना कर देता है।

चण्डप्रद्योतन के मन में खलबली मच गयी। उसके मन के विकारों ने उसे बेचैन बना दिया। वह काम-मूढ़ बना एक ही विचार करने लगा, बस मृगावती को प्राप्त करना है और इसी कारण उसने कौशाम्बी में अपने वज्रजंघ नामक दूत को भेजा। वह वज्रजंघ दूत कौशाम्बी पहुँचा और राजा शतानीक के दर्शन कर बोला–महाराज की जय हो।

राजा–अहो ! चण्डप्रद्योतन ने तुम्हें किस कारण भेजा है?

दूत–राजन् ! उन्होंने कहलवाया कि तुम बिना युद्ध के महारानी मृगावती को मुझे सौंप दो, क्योंकि वह मेरे योग्य है।

राजा–अरे ! तुम्हारा राजा स्त्री-लम्पट और बड़ा अधर्मी है। अपनी वासना के कीचड़ में शीलधर्म को खण्डित करना चाहता है? धिक्कार है उसे ! तुम्हें अभी मैं मार नहीं सकता, अन्यथा यहीं अपने भुजबल से परलोक पहुँचा देता, लेकिन तुम यहाँ से भाग जाओ। और ऐसा कहकर राजपुरुषों द्वारा उसका अपमान करवाकर उसे बाहर निकलवा देता है।

वह दूत कौशाम्बी से चलकर उज्जयिनी जाता है और वहाँ पहुँचकर

चण्डप्रद्योतन को सारी बात कह देता है। चण्डप्रद्योतन वार्ता श्रवण कर क्रोध से आग-बबूला होकर रणभेरी बजवा देता है। विशाल सेना अस्त्र, शस्त्र और अश्व, रथ, हस्ती आदि सहित तैयार हो जाती है।

चण्डप्रद्योतन स्वयं हस्ती स्कन्ध पर आरूढ़ होकर विशाल सैन्य समूह से परिवृत होकर उज्जयिनी से कौशाम्बी की ओर प्रस्थान कर देता है। उधर शतानीक को गुप्तचरों द्वारा समाचार मिलते हैं कि चण्डप्रद्योतन विशाल सैन्य-समूह लेकर कौशाम्बी पर चढ़ाई करने के लिए आ रहा है। शतानिक, जैसे गरुड़ को देखकर साँप भयभीत हो जाता है, वैसे ही अत्यन्त भयभीत हो जाता है और भय से अतिसार को प्राप्त कर, वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

महारानी मृगावती को जैसे ही यह समाचार मिलता है कि शतानीक की मृत्यु हो गयी, वह दुःख के भँवरजाल में फँस जाती है। इधर पति की मृत्यु का शोक और उधर शील की सुरक्षा का प्रश्न ! वह अत्यन्त खिन्न बनकर विचार करती है कि पति तो परलोक चले गये और अभी मुझे शत्रु से शील की सुरक्षा करना जरूरी है, अन्यथा मेरा समस्त जीवन व्यर्थ ही चला जायेगा।

सब धर्मों में शीलधर्म श्रेष्ठ धर्म है। जैसे मकान में आग लगने पर कुशल गृहपति रत्नों की सुरक्षा करता है, वैसे ही इस कामाग्नि में मुझे अपने शीलरत्न की रक्षा करनी है। पति का उसने राजकीय सम्मान सहित दाह संस्कार करवाया और चिंतन किया कि पति चला गया, पुत्र उदयन अभी नाबालिग है और स्त्री-लम्पट चण्डप्रद्योतन मुझे कलंकित करने ही वाला है, तब मुझे युक्तिपूर्वक कार्य करना चाहिए। ऐसा विचार करके उसने एक दूत चण्डप्रद्योतन की छावनी में भेजा।

वह दूत चण्डप्रद्योतन की छावनी में पहुँचा और बोला—महाराज की जय हो। मुझे महारानी मृगावती ने आपके पास भेजा है।

चण्डप्रद्योतन—ओह ! महारानी ने.............. महारानी ने.............. क्या कहलवाया है, महारानी ने?

दूत—महारानी ने कहा है, मेरा पति स्वर्गवासी हो गया है, मेरा पुत्र अभी बल-रहित बालक है। यदि आपके लिए अभी उसे छोड़ दूँगी तो एक तरफ पितृशोक, फिर माता का वियोग, तिस पर शत्रु उसे परास्त कर देंगे।

चण्डप्रद्योतन—मेरे रहते उसको कौन परास्त कर सकता है?

दूत—महारानी ने यह भी कहा है कि यद्यपि आपके रहते उसे कोई परास्त नहीं कर सकता, तथापि उज्जयिनी से कौशाम्बी बहुत दूर है और शत्रु राजा तो नजदीक रहते हैं। इसलिए यदि आप मुझे अपनाना चाहते हैं तो उज्जयिनी से

मजबूत ईंटें लाकर कौशाम्बी में एक मजबूत किला बनवा दो जिसमें रहकर उदयन अपनी रक्षा करेगा।

चण्डप्रद्योतन–तुम्हारी महारानी से कहो, हमें यह आदेश स्वीकार्य है।[1]

दूत चण्डप्रद्योतन के समाचार लेकर मृगावती के पास पहुँच गया। मृगावती को थोड़ी राहत मिली। वह अपने धर्म मार्ग में अग्रसर बनकर कष्ट का समय व्यतीत करने लगी।

उसने राज्य सिंहासन पर अपने नाबालिग पुत्र उदयन का राज्याभिषेक कर दिया और राज्य-धुरा का स्वयमेव संचालन करने लगी।

चण्डप्रद्योतन मृगावती को पाने की ललक लिए किला बनवाने की योजना करने लगा। इस हेतु उसने कौशाम्बी से उज्जयिनी के मध्य मार्गगत चौदह राजाओं से मैत्री सम्बन्ध संस्थापित कर लिया और उज्जयिनी से ईंटें मँगवाकर किला बनवाना प्रारम्भ किया।

अनेक कारीगर अपनी प्रखर, निपुण कला से उस भव्य किले का निर्माण कर रहे हैं और किला बन रहा है।[2]

जयन्ती की जिज्ञासा :

इसी बीच भगवान् महावीर मोक्ष के किले की सैर भव्यात्माओं को करवाने हेतु कौशाम्बी पधार गये और वहाँ के चन्द्रावतरण नामक उद्यान में तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

राजा उदयन को भी भगवान् के चन्द्रावतरण उद्यान में पधारने की सूचना मिली, जिसको श्रवण कर उसका रोम-रोम पुलकने लगा और प्रभु-दर्शन की तीव्र उत्कंठा उसके हृदय में जागृत हुई। कौशाम्बी नगर को स्वच्छ-सुथरा-सुरभित बनवाकर, स्नान-विलेपन आदि कर आकर्षक-सौम्य आभरण और परिधान से स्वयं को परिमण्डित कर, अनेक सुभटों से परिवृत होकर, धार्मिक-श्रेष्ठ रथ पर समारूढ़ होकर प्रभु महावीर की सन्निधि प्राप्त करने हेतु राजप्रासादों से निकल चला।

राजा उदयन की बुआ जयन्ति श्रमणोपासिका जीवाजीव के स्वरूप को जानने वाली थी। वह भगवान् महावीर के श्रावक एवं साधुओं को शय्या प्रदान करने वाली थी। जो भी साधक प्रथमबार कौशाम्बी आते वे सबसे पहले जयन्ती श्रमणोपासिका से बस्ती की याचना करते थे। साधुओं एवं श्रावकों को सर्वप्रथम शय्या देने से वह पूर्व शय्यातरी के नाम से प्रसिद्ध थी।[3]

इस जयन्ति श्रमणोपासिका को भी प्रभु के आगमन की सूचना मिली, जिसे श्रवण कर उसका हृदय बाँसों उछलने लगा। उसी समय अपनी भाभी मृगावती के समीप आकर कहने लगी–देवानुप्रिये ! धर्म के आदिकर, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी,

छत्रादि अतिशयसम्पन्न श्रमण भगवान् महावीर सुखपूर्वक विचरण करते हुए यहाँ पधारे हैं। वे यहाँ के चन्द्रावतरण उद्यान में विराज रहे हैं।

देवानुप्रिये ! उनका नाम-गोत्र श्रवण भी महाफलदायी है तब उनके सम्मुख जाना, वंदन-नमस्कार करना, प्रश्न पूछना और पर्युपासना करना और धार्मिक प्रवचन सुनना, यह तो अत्यधिक रूप से महाफलदायी है। यह हमारे इस भव-परभव के लिए हितकर, सुखकर, क्षेमंकर, निःश्रेयस्कर और शुभानुबंधी है। अपनी ननद जयन्ति श्रमणोपासिका के वचनों को श्रवण कर मृगावती का रोम-रोम हर्षित हुआ और दोनों वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर, धार्मिक रथ पर समारूढ़ होकर, कुब्जादि दासियों से परिवृत होकर भगवान् की ओर चली।

वे चन्द्रावतरण के बाहर रथ को रोकती हैं और उदयन को साथ लेकर भगवान् की सेवा में पहुँचती हैं। प्रभु को वंदन-नमस्कार करती हैं और उदयन को आगे करके उसके पीछे बैठकर धर्मोपदेश श्रवण करती हैं।

धर्मोपदेश श्रवण कर उदयन[4], मृगावती एवं परिषद लौट गयी। जयन्ति श्रमणोपासिका वहीं रुक गयी। उसके मन में अनेक जिज्ञासाएँ थीं, जिनका समाधान वह प्रभु से प्राप्त करना चाहती थी। अतएव अवसर देखकर भगवान् को वंदन-नमस्कार करती है और विनयावनत होकर पूछती है–भगवन् ! किस कारण से जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होता है?

भगवन्–जयन्ति ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्यपर्यन्त अठारह पापस्थान सेवन करने से जीव शीघ्र गुरुत्व (भारीकर्मा) को प्राप्त होता है।

जयन्ति–भगवन् ! किस कारण जीव शीघ्र लघुत्व (हल्केपन) को प्राप्त होता है?

भगवन्–प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से विरत होने से जीव शीघ्र लघुत्व (अल्पकर्मत्व) को प्राप्त होता है।

जयन्ति–भगवन् ! किस कारण जीव कर्म द्वारा संसार बढ़ाता है?

भगवन्–अठारह पाप-सेवन करने से जीव संसार बढ़ाता है।

जयन्ति–भगवन् ! जीव किस कारण संसार घटाता है?

भगवन्–जयन्ति ! अठारह पाप से विरत होने से जीव संसार घटाता है।

जयन्ति–भगवन् ! किस कारण जीव संसार दीर्घकाल वाला करता है?

भगवन्–जयन्ति ! अठारह पाप-सेवन से जीव संसार दीर्घकाल वाला करता है।

जयन्ति–भगवन् ! किस कारण से जीव संसार अल्पकाल वाला करता है?

भगवन्–जयन्ति ! अठारह पाप से निवृत्त होने पर जीव संसार अल्पकाल वाला करता है।

जयन्ति–भगवन् ! जीव किस कारण से संसार में बार-बार परिभ्रमण करता है?

भगवन्–जयन्ति ! अठारह पापों के सेवन से जीव बारम्बार संसार में परिभ्रमण करता है।

जयन्ति–भगवन् ! जीव किस कारण संसार-सागर से तिरता है?

भगवन्–जयन्ति ! अठारह पापों की निवृत्ति से जीव संसार-सागर से तिरता है।

जयन्ति–भगवन् ! जीवों का भवसिद्धिकत्व स्वाभाविक है या पारिणामिक?

भगवन–जयन्ति ! वह स्वाभाविक है, अर्थात् जीव अपने अनादिकालीन स्वभाव से ही भवसिद्धिक–मोक्ष जाने की योग्यता वाले होते हैं।

जयन्ति–भगवन् ! क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में जायेंगे?

भगवन–हाँ, जयन्ति ! सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में जायेंगे।

जयन्ति–भगवन् ! सभी भव्य जीव मोक्ष में जायेंगे, तो क्या यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जायेगा? क्योंकि जब सभी भव्य मोक्ष में जायेंगे तो एक दिन यहाँ ऐसा आयेगा कि इस संसार में एक भी भव्य जीव नहीं रहेगा।

भगवन्–नहीं जयन्ति, ऐसा नहीं होगा।

जयन्ति–भगवन् ! सभी भव्य जीव मोक्ष में भी जायेंगे और यह लोक भव्य जीवों से रहित भी नहीं होगा, ऐसा कैसे सम्भव है?

भगवन्–जैसे आकाश की श्रेणि अनादि-अनन्त है, उसमें से एक-एक परमाणु प्रतिदिन निकालें और अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालपर्यन्त निकालते रहें तो भी आकाश की श्रेणि खाली नहीं होगी। इसी प्रकार हे जयन्ति ! सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष चले जायेंगे तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा।

जयन्ति–भगवन् ! जीवों का सुप्त रहना अच्छा है, या जागृत रहना?

भगवन्–जयन्ति ! कुछ जीवों की सुषुप्ति अच्छी है, कुछ जीवों की जागृति अच्छी है।

जयन्ति–भगवन् ! आप किस कारण फरमाते हैं कि कुछ जीवों की सुषुप्ति श्रेष्ठ है और कुछ का जागरण श्रेष्ठ है?

भगवन्–जयन्ति ! जो जीव अधार्मिक, धर्मानुसार नहीं चलने वाले, अधर्मिष्ठ (श्रुत रूप धर्म जिन्हें इष्ट नहीं) और अधर्म में रँगे हुए, प्रसन्नतायुक्त धर्म नहीं करने वाले, अधर्म से जीविका चलाने वाले हैं, उनकी सुषुप्ति श्रेष्ठ है, क्योंकि वे जागृत रहते हुए अन्य जीवों को कष्ट पहुँचाते हैं।

इसके विपरीत जो जीव धार्मिक, धर्मानुसारी, धर्मप्रिय, धर्म का कथन करने

वाले, धर्मावलोकी, धर्मानुरंजित, धर्माचरणी और धर्मजीविका चलाते हैं, उन जीवों का जागृत रहना अच्छा है, क्योंकि ये जागृत रहकर आचार्य से लेकर साधार्मिकपर्यन्त सभी की वैयावृत्य में स्वयं को नियोजित करने से निर्जरा रूप परम धर्म लाभ को प्राप्त करते हैं।

जयन्ति–भगवन् ! जीवों की सबलता अच्छी है या दुर्बलता?

भगवन्–जयन्ति ! कई जीवों की सबलता अच्छी है, कई जीवों की दुर्बलता।

जयन्ति–भगवन् ! ऐसा किस कारण कहते हैं?

भगवन्–जयन्ति ! जो जीव अधार्मिक हैं यावत् अधर्म से आजीविका चलाते हैं, उनकी दुर्बलता अच्छी है क्योंकि वे दुर्बल होने से किसी प्राण[क], भूत[ख], जीव[ग] और सत्त्व[घ] आदि को दुःखादि नहीं पहुँचा सकते और जो जीव धार्मिक हैं, उनकी सबलता अच्छी है, क्योंकि वे सबल रहते हुए दूसरों की सहायता कर सकते हैं, उन्हें साता पहुँचा सकते हैं।

जयन्ति–भगवन् ! जीवों का दक्षत्व अच्छा है या आलसीपन?

भगवन्–जयन्ति ! कुछ जीवों का दक्षत्व अच्छा है, कुछ का आलसीपन।

जयन्ति–भगवन् ! ऐसा आप किस कारण फरमाते हैं?

भगवन्–जयन्ति ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म से जीविका चलाते हैं, उनका आलसीपन अच्छा है क्योंकि वे आलसी होंगे तो जीव मात्र को परिताप पैदा करने में प्रवृत्त नहीं होंगे और धार्मिक जीवों का दक्षत्व श्रेष्ठ है क्योंकि वे जागृत रहेंगे तो आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान[घ], शैक्ष[ङ], कुल, गण, संघ और साधार्मिक–इन दस की वैयावृत्य करेंगे, जिससे निर्जरा रूप परमलाभ को प्राप्त करेंगे।

(क) प्राण–बेन्द्रिय आदि

(ख) भूत–वनस्पति

(ग) जीव–पंचेन्द्रिय

(घ) सत्व–एकेन्द्रिय (पृथ्वी, अप, तेजस, वायु)

(ङ) ग्लान–रोगी

(च) शैक्ष–नवदीक्षित

जयन्ति–अहो भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के वशीभूत हुआ जीव क्या बाँधता है? क्या करता है? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है?

भगवन्–हे जयन्ति ! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय–इन पाँच इन्द्रियों के वशीभूत हुआ जीव आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म-प्रकृतियों को, जो शिथिल बंधन में बँधी हैं, उनको गाढ़-बंधन में बाँधता है। अल्पकालीन कर्मस्थिति को दीर्घकालीन करता है। अल्प कर्मरस को तीव्र रस में परिणत करता है। कर्म-प्रकृतियों के अल्प-प्रदेशों को बहु-प्रदेशी करता है। आयुकर्म कदाचित् बाँधता है, कदाचित् नहीं बाँधता। असातावेदनीय बारम्बार बाँधता है। अनादि-अनन्त संसार-अरण्य में अनवरत परिभ्रमण करता है। इस कारण वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं होता और न ही समस्त दुःख-परम्परा का अंत कर सकता है।

जयन्ति–भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय–इन एक से लेकर पाँच इन्द्रियों को वश में करने वाला जीव क्या बाँधता है? क्या करता है? किसका चय करता है? किसका उपचय करता है?

भगवन्–जयन्ति ! श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय को वश में करने वाला जीव आयुष्य कर्म के अतिरिक्त गाढ़-बंधन में बद्ध सात कर्म-प्रकृतियों को शिथिल बंधनबद्ध कर देता है। कर्मों की दीर्घ स्थिति को घटाकर ह्रस्व स्थिति कर देता है। तीव्र रस वाली कर्म-प्रकृतियों को मंद-रस वाली कर देता है और बहुत प्रदेशवाली कर्म-प्रकृतियों को अल्प प्रदेश वाली कर देता है। वह असातावेदनीय कर्म का बार-बार उपचय[क] नहीं करता। इस कारण वह अनादि-अनन्त-चतुर्गति रूप संसार-कांतार को पार कर सिद्ध बन जाता है, दुःख-परम्परा का अंत कर देता है।

जयन्ति श्रमणोपासिका प्रभु से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित हुई और उसके मन में विरक्तिपरक भावों का संचार हुआ। उसने प्रभु से निवेदन किया–भंते ! मैं आपकी अमृतोपम वाणी से सराबोर होकर श्रीचरणों में प्रव्रजित होना चाहती हूँ।

भगवान्–हे देवानुप्रिये ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन धर्म-कार्य में विलम्ब न करो।[5]

तब ईशानकोण में जाकर जयन्ति श्रमणोपासिका ने वस्त्रालंकार उतारे एवं

(क) उपचय – ग्रहण करके जमाना

पंचमुष्टि लोच करके प्रभु के चरणों में प्रव्रजित हुई। आर्या चन्दनाजी के सान्निध्य को स्वीकार कर ग्यारह अंगों का अध्ययन करने लगी।*

जयन्ति श्रमणोपासिका की दीक्षा के पश्चात् भगवान् ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वत्स-भूमि से उत्तरकोसल[iii] की तरफ पधारे। वहाँ अनेक स्थानों पर विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी पधारे और वहाँ के कोष्ठक चैत्य में विचरने लगे।[6]

कोष्ठक चैत्य में विराजकर प्रभु ने धर्मोपदेश की पावन गंगा प्रवाहित की, जिसे श्रवणकर अनेक गृहस्थों ने संयम व्रत एवं श्रावक व्रत ग्रहण किये। अणगार सुमनोभद्र एवं सुप्रतिष्ठित की दीक्षाएँ भी यहाँ सम्पन्न[7] हुई।**

कोसल प्रदेश से विहरण करते हुए भगवान् विदेह-भूमि पधारे और वहाँ के वाणिज्यग्राम नगर में ईशान कोण में स्थित दूतिपलाश चैत्य में तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे।[8]

आनन्द का आगार धर्म :–

उस समय वाणिज्यग्राम में जिन-धर्म पर श्रद्धा-समन्वित जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उसी वाणिज्यग्राम में आनन्द नामक धनाढ्य गाथापति (सम्पन्न गृहस्थ) रहता था। वह अत्यन्त प्रभावशाली और लोगों द्वारा अपरिभूत (अतिरस्कृत) रहता था।

वह आनन्द गाथापति बारह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का स्वामी था। उसकी चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ[iv] खजाने में थी, चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार में लगी थी, चार करोड़ [9]स्वर्ण मुद्राएँ[v] धन्य, धान्य, द्विपद[क], चतुष्पद[ख] आदि साधन-सामग्री में एवं गृहकार्यों में नियोजित[ग] थी।

उसके चार गोकुल[vi] थे। एक-एक गोकुल में दस-दस हजार गायें थी। इस प्रकार वह चालीस हजार गायों का एवं अन्य भैंस, भेड़, बकरी आदि पशुओं का पालक था।

उस आनन्द गाथापति का अत्यन्त वर्चस्व था। प्रज्ञा का धनी होने से अनेक राजा (मांडलिक राजा), ईश्वर (ऐश्वर्यशाली पुरुष), तलवर (राज- सम्मानित

---

*11 अंगों का अध्ययन कर विविध तपश्चरण कर इसी भव में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था को श्रीजयन्ति साध्वी ने प्राप्त किया।

** सुमनोभद्र ने बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर राजगृह के विपुलाचल पर अनशनपूर्वक मुक्ति प्राप्त की। सुप्रतिष्ठित मुनि ने भी 27 वर्ष पर्यन्त संयम पालनकर विपुलगिरि पर सिद्धि प्राप्त की।

(क) द्विपद– दो पैर वाले दासादि (ख) चतुष्पद– चार पैर वाले गाय भैंस आदि
(ग) नियोजित– लगी हुई

विशिष्ट नागरिक), माडंबिक (जागीरदार), कौटुम्बिक (बड़े परिवारों के मुखिया), इभ्य (वैभवशाली), श्रेष्ठिन्–सेठ, सेनापति, सार्थवाह (अनेक छोटे व्यापारियों को लेकर देशान्तर यात्रा करने वाले समर्थ व्यापारी) को वह अनेक कार्यों में, कारणों में, मंत्रणाओं में, पारिवारिक समस्याओं में, गोपनीय बातों में, एकांत विचारणीय विषयों में तथा परस्पर पूछने योग्य विषयों में सलाह देता रहता था। वह अपने सम्पूर्ण परिवार का मेढ़ीभूत[vii] मुखिया था। उसकी कार्यक्षमता विशिष्ट थी, इसलिए वह सभी का आधारभूत और मार्गदर्शक था। प्रामाणिक व्यक्तित्व वाला वह सब कार्यों को आगे बढ़ाने वाला था।

उसकी शिवानन्दा नामक पत्नी प्रतिपूर्ण इन्द्रियों वाली उत्तम [viii]लक्षण-व्यंजन-गुणसम्पन्न सर्वांग सुन्दरी थी। वह सौम्य, कमनीय और रूप-लावण्य की प्रतिमूर्ति थी। आनन्द गाथापति को इष्ट लगने वाली वह अपने पति के प्रति अत्यन्त अनुरागशील[ix] थी। वह आनन्द गाथापति के प्रतिकूल होने पर भी सदैव उनके अनुकूल[x] रहती थी। भर्ता की इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंधमूलक–पाँच प्रकार के सांसारिक भोगों को भोगती हुई रहती थी।

वाणिज्यग्राम के ईशानकोण में कोल्लाक नामक सन्निवेश था। वहाँ आमोद-प्रमोद के साधनों की प्रचुरता होने से वहाँ के नागरिक एवं अन्य आगन्तुक व्यक्ति प्रसन्न रहते थे। घनी आबादी वाले उस कोल्लाक सन्निवेश में अनेक खेत थे, जिनमें ईख, जौ आदि धान की फसलें लहलहाती थीं। गाय-भैंसादि की प्रचुरता के साथ शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने, वहाँ के चैत्य[क], दर्शकों का मन मुग्ध करने वाले थे। चुँगी आदि के कर-रहित वहाँ रिश्वतखोरों, जेबकतरों और चोरों का अभाव होने से सदैव शांति का माहौल रहता था। वहाँ साधुओं को भिक्षा सुखपूर्वक मिलती थी, इसलिए लोग वहाँ निवास करने में स्वयं को सुखी मानते थे। अनेक प्रकार के नृत्य, नाटक, बाजीगर आदि खेल-तमाशे दिखाने वाले वहाँ आजीविका कमाते थे। जगह-जगह बने हुए उद्यान, बावड़ियाँ आदि से सुशोभित वह नन्दन वन समान रमणीय लगता था।

चहुँओर कंगूरेमय तोरणों और द्वारों से परिमण्डित परकोटे से घिरे हुए उसके कपाट अत्यन्त सुदृढ़ थे, जिनके बंद होने पर शत्रु का प्रवेश असम्भव था। वहाँ के बाजार में अनेक प्रकार की दुकानें थी जिनमें विविध प्रकार की सामग्रियाँ उपलब्ध होती थीं। राजा की सवारी अकसर निकलने के कारण राजमार्गों पर भीड़ बनी रहती थी। वहाँ हाथी, घोड़े, यान और वाहनों का जमघट-सा रहता था। कमलों से सुशोभित जलाशयों का सुगंधित पानी मनमोहक था।

(क) चैत्य- यक्षायतन

उत्तम श्वेतवर्णी भवन निर्निमेष नेत्रों द्वारा प्रेक्षणीय, चित्ताकर्षण, दर्शनीय, अभिरूप (मन में अपने को रमाने वाले) तथा प्रतिरूप (मन में समाहित होने वाले) थे।

इस कोल्लाक सन्निवेश में आनन्द गाथापति के अनेक मित्र, ज्ञातिजन (समान आचार-विचार वाले अपनी जाति के लोग), निजक (माता, पिता, पुत्र, पुत्री आदि), स्वजन (बंधु-बांधवादि), सम्बन्धी (श्वसुर, मामा आदि), परिजन (दास-दासी आदि) निवास करते थे।

वे भी बड़े समृद्धिशाली और लोगों द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त थे। इस प्रकार वाणिज्यग्राम और कोल्लाक सन्निवेश में धनाढ्यों की बस्तियाँ थीं।

जब भगवान् महावीर इस वाणिज्यग्राम में पधारे तो राजा जितशत्रु स्वयं उनके दर्शन, वंदन एवं प्रवचन श्रवण हेतु घर से निकला, दूतिपलाश चैत्य में पहुँचकर प्रभु की पर्युपासना करने लगा।

जब आनन्द गाथापित को भगवान् के आगमन की जानकारी मिली तब वह भी भगवान् के दर्शन, वंदन एवं पर्युपासना हेतु जाने की तैयारी करने लगा। उसने स्नानादि कर मंगल परिधान धारण किया। वस्त्राभूषणों से परिमण्डित, कोरंट के पुष्पों की माला युक्त छत्र धारण कर, अनेक पुरुषों से घिरा हुआ पैदल ही दूतिपलाश चैत्य में पहुँचा। भगवान् को वंदन-नमस्कार कर उनकी पर्युपासना करने लगा।

भगवान् महावीर ने उस समय आनन्द गाथापति एवं विशाल परिषद को अर्धमागधी भाषा[xi] में धर्मोपदेश दिया—

लोक का अस्तित्व है और अलोक का भी अस्तित्व है। जीव, अजीव, बंध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, अर्हत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक, नैरयिक, तिर्यंच, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्ध भगवान्, सिद्धि आदि ये सब काल्पनिक नहीं हैं, इनका अस्तित्व है। प्राणातिपातादि अठारह पाप-स्थान का यथार्थ ज्ञान करके इनका त्याग करना चाहिए। प्रशस्त दान, शील, तप आदि उत्तम फल देने वाले हैं, जबकि अप्रशस्त पाप-कर्म दुःखमय फल देने वाले हैं। जीव पुण्य और पाप से शुभाशुभ कर्म का बंध करता है, जो कि निष्फल नहीं होता।

वस्तुतः इस लोक में निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य, सर्वोत्तम, अद्वितीय, सर्वभाषित, अत्यन्त शुद्ध, परिपूर्ण, न्यायसंगत, शल्य निवारक, सिद्धावस्था प्राप्त करने का उपाय, मुक्ति-मार्ग, निर्याण-मार्ग, निर्वाण-मार्ग, अवितथ—वास्तविक, अविसंधि—विच्छेद रहित, सब दुःखों को क्षीण करने वाला है। इसमें स्थित जीव बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त होकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। जिन मनुष्यों के एक भव धारण करना अवशेष रहा है, वे देवलोक में दीर्घायु एवं विपुल ऋद्धि के स्वामी होते हैं। वे देवशय्या में युवावस्था रूप में ही उत्पन्न होकर बहुमूल्य वस्त्राभरणों

से अलंकृत रहकर वहाँ की ऋद्धि का उपभोग कर मनुष्य भव प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

परिणामों की विषमता से जीव भिन्न-भिन्न आयु का बंध करते हैं। जीव अपने कलुषित परिणाम होने से नरकायु का बंध करता है। नरकायु बंध के चार कारण हैं, यथा– 1. महाआरंभ–घोर हिंसा के भाव रखना या घोर हिंसा करना, 2. महापरिग्रह–पदार्थों के प्रति अत्यधिक मूर्च्छा भाव रखना, 3. पंचेन्द्रिय वध–मनुष्य या तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का घात करना और 4. मांस-भक्षण।

चार कारणों से जीव तिर्यंच योग्य आयु का बंध करता है–1. माया करना, 2. अलीक वचन–असत्य भाषण करना, 3. अत्कंचनता–अपनी धूर्तता को छिपाना, 4. वंचनता–प्रतारणा या ठगी करना।

चार कारणों से जीव मनुष्य योग्य आयु का बंध करता है–1. प्रकृति भद्रता–भद्रिक–सरल प्रकृति का होना, 2. प्रकृति विनीतता–स्वाभाविक विनय प्रकृति होना, 3. सानुक्रोशता–दयाशील, करुणाशील प्रकृति होना, 4. अमत्सरता–ईर्ष्या का अभाव होना।

चार कारणों से जीव देवगति में उत्पन्न होता है–1. सराग संयम–सरागी साधु का संयम, 2. संयमासंयम–देशविरति श्रावक धर्म पालन, 3. अकाम-निर्जरा–बिना मोक्षाभिलाषा के अथवा विवशतावश कष्ट सहना, 4. बाल-तप–अज्ञानजनित तप करना।

इस प्रकार जीवन अपने ही परिणामों से एवं आचरणों से नरकादि गतियों में जाता है। नरक गति में जाने वाला भीषण नारकीय यातना को प्राप्त करता है। तिर्यंच योनि में जाने वाला अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख को प्राप्त करता है। मनुष्य-जीवन भी अनित्य है। उसमें व्याधि, वृद्धावस्था, मृत्यु और अनेक प्रकार की वेदनाओं सम्बन्धी बहुत कष्ट होते हैं। देवलोक में दिव्य ऋद्धि एवं दिव्य सुख का अनुभव करते हैं, लेकिन वहाँ भी राग-द्वेषजन्य दुःख-परम्परा बनी रहती है।

राग-द्वेष आदि कारणों से जीव बंधन को प्राप्त करते हैं और कषाय- विजयी बनकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। अनासक्त व्यक्ति दुःखों का अंत करते हैं और पीड़ा, वेदना एवं आकुलतायुक्त चित्त वाले दुःख-सागर को प्राप्त करते हैं। वैराग्य से कर्मदलिक ध्वस्त होते हैं, जबकि रागादि से कर्मों का फल-विपाक पाप-पूर्ण होता है। कर्म-रहित जीव ही मोक्ष में गमन करता है।

मोक्ष में गमन धर्म करने से होता है, वह धर्म दो प्रकार का है–1. आगार धर्म और 2. अणगार धर्म।

अणगार धर्म में सावद्य प्रवृत्तियों का परिपूर्ण त्याग कर, गृहवास त्याग कर,

मुण्डित होकर साधु बनता है। वह प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह एवं रात्रि भोजन का सर्वथा त्यागी होता है। इस प्रकार पंचमहाव्रत अंगीकार कर उनका पालन करने वाले साधु-साध्वी निर्ग्रन्थ धर्म के आराधक होते हैं।

आगार धर्म बारह प्रकार का है–पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। पाँच अणुव्रत–1. स्थूल (मोटे रूप में) प्राणातिपात का त्याग, 2. स्थूल मृषावाद विरमण, 3. स्थूल अदत्तादान से निवृत्ति, 4. स्वदार संतोष–परिणीता पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के साथ रतिक्रीड़ा का परित्याग, 5. अपरिग्रह–परिग्रह की सीमा करना।

तीन गुणव्रत–1. अनर्थदण्ड विरमण–आत्मगुण घातक निरर्थक प्रवृत्तियों का त्याग करना, 2. दिग्व्रत–छहों दिशाओं में जाने की मर्यादा करना, 3. उपभोग-परिभोग-विरमण। उपभोग–जिन्हें एक बार भोगा जा सके ऐसे पदार्थ, जैसे भोजनादि; परिभोग–जिन्हें अनेक बार भोगा जा सके ऐसे पदार्थ, जैसे वस्त्रादि; इनकी सीमा करना। चार शिक्षाव्रत–1. सामायिक–समत्व भाव की साधना के लिए 48 मिनिट तक सावद्य प्रवृत्ति का त्याग करना, 2. देशावकाशिक– दिशाओं की मर्यादा करना. 3. पौषधोंपवासवृत्त- धर्म एवं अध्यात्म को पुष्ट करने वाले विशेष नियम धारण करके उपवास सहित पौषध करना। 4. अतिथिसंविभाग–साधक या साधार्मिक को 14 प्रकार की वस्तुएँ आदरपूर्वक देना।

अन्तिम समय में संलेखणा संथारापूर्वक देह-त्याग का लक्ष्य रखना। यह गृहस्थ धर्म के बारह प्रकार हैं, जिनकी आराधना कर अनेक श्रमणोपासक, श्रमणोपासिकाएँ आज्ञा के आराधक होते हैं।

इस प्रकार भगवान् ने अपनी दिव्य देशना प्रवाहित की जिसे श्रवण कर कई मनुष्य अत्यन्त हर्षित एवं वैराग्यपरक भावों से ओत-प्रोत हुए। उन्होंने उसी समय गृहत्याग कर श्रमण धर्म अंगीकार कर लिया। कई मनुष्यों ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये।[10] शेष परिषद[xii] ने भी भगवान् को वंदन-नमस्कार करके भगवान् के यशोगान करते हुए कहा –

आपका हृदयस्पर्शी प्रवचन अन्तस्थल को छूने वाला है, आपने जो धर्मोपदेश दिया वह अनुत्तर (श्रेष्ठ) है। आपने कषाय त्याग कर, विवेक धारण कर, आगार और अणगार[क] धर्म ग्रहण करने हेतु जो ज्ञान-गंगा प्रवाहित की है, वह अन्य कोई श्रमण, ब्राह्मण प्रवाहित नहीं कर सकता। इस प्रकार भगवान् की यशःगाथा गाकर परिषद् और राजा पुनः लौट गये।

तब आनन्द श्रावक, जिसका हृदय हर्षातिरेक से प्रभु के प्रति समर्पित बन रहा था, उसने भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके

(क) अणगार- साधु

वन्दन-नमस्कार किया और कहा–भंते ! मैं अनेक ऐश्वर्यशाली राजा, महाराजा आदि की तरह गृहत्यागी बनकर, मुंडित होकर अणगार के रूप में प्रव्रजित होने में असमर्थ हूँ, अतएव मैं आपके सान्निध्य में पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहस्थ धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।

भगवान्–देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य में तनिक भी विलम्ब मत करो।

भगवान् के फरमाये जाने पर आनन्द प्रभु के मुखारविन्द से श्रावकव्रत ग्रहण करता है –

1. **स्थूल प्राणातिपात विरमण**–भगवन् मैं जीवनपर्यन्त दो करण–करना, कराना तथा तीन योग–मन, वचन एवं काया से स्थूल हिंसा का परित्याग करता हूँ। अर्थात् मैं मन, वचन, काया से स्थूल हिंसा न करूँगा न कराऊँगा।
2. **स्थूल मृषावाद विरमण**–मैं जीवनपर्यन्त मन, वचन एवं काया से स्थूल असत्य का न प्रयोग करूँगा, न कराऊँगा।
3. **स्थूल अदत्ता दान विरमण**–मैं जीवनपर्यन्त मन, वचन एवं काया से स्थूल अदत्त दान का त्याग करता हूँ।
4. **स्वदार संतोष**–मैं एक अपनी शिवानन्दा भार्या के अतिरिक्त अवशेष सर्वमैथुन-विधि का परित्याग करता हूँ।
5. **इच्छा परिमाण**–इच्छा परिमाण व्रत में आनन्द श्रावक ने स्वर्ण-रजत का इस प्रकार परिमाण किया –

मेरे कोष में रखी चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं, व्यापार में प्रयुक्त चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं एवं घर के उपकरणों में प्रयुक्त चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं[xiii] के अतिरिक्त मैं समस्त स्वर्ण मुद्राओं का परित्याग करता हूँ।

तदनन्तर आनन्द गाथापति ने चतुष्पद पशु सम्पत्ति का परिमाण किया।"

दस-दस हजार गायों के चार गोकुलों के अतिरिक्त मैं सभी चौपाया पशुओं के परिग्रह का त्याग करता हूँ।

तब उसने क्षेत्र वास्तु[क]-विधि का परिमाण किया कि सौ निर्वतन (भूमि का नाप-विशेष) के एक हल[12] के हिसाब से पाँच सौ हल[xiv] के अतिरिक्त मैं समस्त क्षेत्र वास्तु-विधि का परित्याग करता हूँ।

तत्पश्चात् शकट-विधि (गाड़ियों) के परिग्रह का परिमाण किया।

पाँच सौ गाड़ियाँ–बाहर यात्रा में, व्यापार आदि में प्रयुक्त तथा पाँच सौ

(क) वास्तु–मकान

गाड़ियाँ माल आदि ढोने में प्रयुक्त हैं, उनके अतिरिक्त मैं समस्त गाड़ियों के परिग्रह का त्याग करता हूँ।

तदनन्तर उसने वाहन-विधि जहाजों[13] का परिमाण किया।

चार वाहन दिग्यात्रा के लिए, चार वाहन (जहाज) माल ढोने के लिए उनके अतिरिक्त सभी वाहनों का त्याग किया।

उपभोग-परिभोग[xv]-परिमाण करते हुए आनन्दजी ने कहा –

1. उल्लणिया[xvi]-विधि–सुगंधित लाल, एक प्रकार के तौलिये, के अतिरिक्त सभी तौलियों का त्याग करता हूँ।
2. दंतण-विधि–हरी मुलहठी के अतिरिक्त सभी प्रकार के दंतौन का त्याग करता हूँ।
3. फल-विधि[xvii]–दूधिया आँवले के अतिरिक्त अवशेष फल-विधि का परित्याग करता हूँ।
4. अभ्भंगन-विधि–शतपाक[xviii] एवं सहस्त्रपाक[ixx] तेलों के अतिरिक्त सभी अभ्यंगन (मालिश के तेलों) का परित्याग करता हूँ।
5. उबटन-विधि–मैं एकमात्र सुगंधित गंधाटक (गेहूँ के आटे के साथ कतिपय सौगन्धिक पदार्थों के उबटनों) का परित्याग करता हूँ।
6. स्नान-विधि–पानी के आठ ओष्ट्रिक, जिनका मुँह ऊँट की तरह सँकड़ा, गर्दन लम्बी और आकार बड़ा हो, ऐसे घड़े के अतिरिक्त स्नानार्थ जल का परित्याग करता हूँ।
7. वस्त्र-विधि–दो सूती वस्त्रों के सिवाय सबका त्याग करता हूँ।
8. विलेपन-विधि–अगरु, कुमकुम और चन्दन के अतिरिक्त सभी विलेपन द्रव्यों का परित्याग करता हूँ।
9. पुष्प-विधि–श्वेत कमल और मालती कुसुम की माला के अतिरिक्त सभी प्रकार के पुष्पों का परित्याग करता हूँ।
10. आभरण-विधि–सोने के कुण्डल और अँगूठी के अतिरिक्त सभी प्रकार के आभरणों का त्याग करता हूँ।
11. धूप-विधि–अगर, लोबानादि धूप के अतिरिक्त सभी प्रकार के धूप का परित्याग करता हूँ।
12. पेज्ज-विधि–मूँग के रस अथवा घी में तले हुए चावलों से बने एक विशेष प्रकार के पेय के अतिरिक्त सभी पेय पदार्थों का परित्याग करता हूँ।
13. भक्ष्य-विधि–घृतपूर्ण घेवर और खाजे के अतिरिक्त सभी पकवानों का

परित्याग करता हूँ।

14. ओदन-विधि–कलम सालि (वासमती) चावलों के अतिरिक्त सभी प्रकार के चावलों का परित्याग करता हूँ।
15. सूप-विधि–मटर, मूँग और उड़द की दाल के अतिरिक्त सभी दालों का परित्याग करता हूँ।
16. घृत-विधि–शरद ऋतु के गोघृत के अतिरिक्त समस्त गोघृत[xx] का परित्याग करता हूँ।
17. शाक-विधि–बथुआ, लौकी, सुआपालक और भिण्डी इन चार के अतिरिक्त समस्त सब्जियों का त्याग करता हूँ।
18. माधुरक-विधि–पालंग माधुरक–शल्ल की वृक्ष के गोंद से बनाये हुए मधुर पेय के अतिरिक्त अन्य सभी मधुर पेयों का परित्याग करता हूँ।
19. व्यंजन-विधि–काँजी बड़े, खटाई युक्त मूँग की दाल के पकौड़े के अतिरिक्त सब प्रकार के चटपटे पदार्थों का परित्याग करता हूँ।
20. पाणिय-विधि–आकाश से गिरे वर्षा के पानी के अतिरिक्त सब प्रकार के पानी का परित्याग करता हूँ।
21. मुखवास-विधि–पाँच सुगंधित वस्तुओं सहित मुख को सुगंधित करने वाले सभी पदार्थों का परित्याग करता हूँ। यथा- इलाचयी, लोंग, कर्पूर, कंकोल, जायफल (शीतल चीनी)।[xxi]

अनर्थदण्ड–विरमण :

तदनन्तर आनन्दजी ने चार प्रकार के अनर्थदण्ड–अपध्यानाचरित, प्रमादाचरित, हिंस्रप्रदान और पापकर्मोपदेश का प्रत्याख्यान किया।[xxii]

तदनन्तर भगवान् महावीर ने श्रमणोपासक आनन्द से कहा–आनन्द ! जिसने जीवादि नौ पदार्थों को जान लिया, जो स्वयं पुरुषार्थी है, जिसे देव, दानव, मानव भी अपने धर्म से विचलित नहीं कर सकते, उसको सम्यक्त्व के पाँच प्रधान अतिचारों को जानना चाहिए, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए।

1. शंका–जिनेश्वर वचनों में संदेह रखना शंका है। इस शंका से श्रद्धा डोलायमान हो जाती है। यद्यपि जिज्ञासा बुद्धि से शंका करना अतिचार नहीं है, तथापि सदैव यही चिंतन रहना चाहिए कि वही सत्य और निःशंक है, जो भगवान् ने फरमाया है।
2. कांक्षा–बाहरी आडम्बर या दूसरे प्रलोभनों से प्रभावित होकर अन्य मत की ओर झुकना कांक्षा है। यह सम्यक्त्व को दूषित करने वाली प्रकृति है। इससे सदैव दूर रहना चाहिए।

3. विचिकित्सा–धर्म के फल में संदेह करना विचिकित्सा है कि मैंने इतना धर्म किया, अभी तक मुझे कोई फल नहीं मिला, आगे भी मिलेगा या नहीं? इस प्रकार की प्रवृत्ति से अनुत्साह बढ़ता है, कार्य सिद्ध नहीं होता। अतएव इसका परित्याग करना चाहिए।

4. **पर-पाषंड प्रशंसा**–पाषंड शब्द आज ढोंग अर्थ में प्रचलित है, जबकि पूर्वकाल में यह अन्यमतियों के लिए प्रयुक्त होता था। अन्यमत की प्रशंसा से तात्पर्य है कि अन्यमतियों के शौचमूलक आदि हिंसात्मक धर्म का सम्मान करना, इससे हमारी आत्मा का पतन होने की सम्भावना रहती है। इसलिए इसको सम्यक्त्व का अतिचार माना है।

5. **पर-पाषंड संस्तव**–हिंसात्मक धर्म मानने वाले आदि मिथ्यादृष्टियों के साथ परिचय रहने से मोक्षमार्ग से विचलन की स्थिति पैदा हो जायेगी। अतएव पर-पाषंड संस्तव भी अतिचार है।

इसके पश्चात् भगवान् ने फरमाया–आनन्द ! श्रमणोपासक को स्थूल प्राणतिपात-विरमण व्रत के प्रमुख पाँच अतिचारों को जानना चाहिए[xxiii], लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए। यथा –

1. बंध–पशु आदि को निर्दयतापूर्वक बाँधना। शास्त्र में दो तरह के बंध का निरूपण है। 1. अर्थबंध, 2. अनर्थबंध। प्रयोजनवश रोगी आदि को चिकित्सा के लिए अथवा सुरक्षा के लिए बाँधना अर्थबंध है और बिना किसी प्रयोजन बाँधना अनर्थबंध है। वह आठवें व्रत अनर्थदंड में निहित है। यहाँ किसी पशु-दासादि को प्रयोजनवश बाँधना बंध नहीं, लेकिन क्रूरता, कलुषितता आदि से बाँधना बंध नामक अतिचार है।

टीकाकारों ने अर्थबंध के दो भेद किये हैं –

1. सापेक्ष, 2. निरपेक्ष। जिस बंध से छूटा जा सके वह सापेक्ष है, जैसे किसी बाड़े में आग लग गयी। वहाँ साधारणतया बँधे पशु छूट जायेंगे, वह अतिचार नहीं। लेकिन पशु को ऐसे बंधन से बाँधा कि वह छूटेगा ही नहीं, मरण को प्राप्त हो जायेगा, वह अतिचार है।

2. वध–कलुषित भाव से ऐसा निर्दयतापूर्वक किसी को पीटना कि उसके अंग-उपांग खंडित हो जायें, वह वध नामक अतिचार है।

3. छविच्छेद–छविच्छेद का तात्पर्य शोभारहित करना है। क्रोधावेशादि में आकर किसी की चमड़ी आदि अंगों को काटना छविच्छेद नामक अतिचार है। यद्यपि करुणा की भावना से रोगी की चीरफाड़ करना छविच्छेद अतिचार नहीं है, लेकिन प्रयोग के लिए (सीखने के लिए)

निरपराधी प्राणी को चीर डालना छविच्छेद नामक अतिचार है।

4. अतिभार–पशु-दास-दासी आदि पर उनकी शक्ति से अधिक भार डालना अतिभार है। इससे मनुष्य एवं पशुओं के शरीर और मन को क्षति पहुँचती है और मन की निर्दयता ही प्रकट होती है। किसी अक्षम व्यक्ति पर योग्यता से अधिक भार डालना भी अतिभार-रोपण अतिचार है। जैसे नाबालिग बालक-बालिकाओं पर विवाह की जिम्मेदारी डालना, वृद्ध एवं अनमेल विवाह करना, प्रजा पर अधिक कर या चुंगी का आरोपण करना, अयोग्य व्यक्तियों पर संघ, समाज या शासन संचालन की जिम्मेदारी डालना आदि-आदि सभी अतिभार आरोपण के अन्तर्गत हैं।
5. भक्त-पान व्यवच्छेद–अपने आश्रित दास-पशु आदि के खान-पान में बाधा डालना, उनको समय पर भोजन नहीं देना। कर्मचारियों आदि को उचित समय पर उचित वेतन नहीं देना। गर्भवती स्त्री द्वारा उपवास करके गर्भस्थ जीव को भूखा रखना आदि इसी अतिचार में शामिल हैं।[15]

स्थूल मृषावाद के पाँच अतिचारों को जानना चाहिए लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए। यथा –

1. सहसा अभ्याख्यान–यकायक, बिना सोचे-समझे किसी पर झूठा आरोप लगाना, सहसा अभ्याख्यान है। तीव्र क्लेशयुक्त झूठ बोलने से तो अनाचार भी बन जाता है।
2. रहस्याभ्याख्यान–किसी की गुप्त बात को प्रकट करना या एकान्त में बैठे व्यक्तियों को बात करते हुए देखकर उन पर झूठा दोषारोपण करना रहस्याभ्याख्यान अतिचार है।
3. स्वदारमंत्र-भेद–अपनी स्त्री की गुप्त बात या मर्मकारी घटना प्रकट करना स्वदारमंत्र-भेद नामक अतिचार है, क्योंकि ऐसा करने से लज्जावश स्त्री आत्महत्या तक कर लेती है।
4. मृषोपदेश–दूसरों को झूठा उपदेश देना मृषोपदेश है। यथा–झूठ बोलने, चालाकी करने, तोल-माप में गड़बड़ी करने, ठगी-बेईमानी करने की प्रेरणा देना, ट्रेनिंग देना, प्रोत्साहित करना आदि इसी में सम्मिलित हैं।
5. कूटलेखकरण–झूठा लेख लिखना, दूसरों को ठगने के लिए झूठे, जाली कागजात तैयार करना। यह अतिचार प्रमादवश या अविवेक से झूठा लेख लिखने से लगता है। जानबूझकर करने पर तो यह अनाचार की कोटि में आता है।[16]

तदनन्तर भगवान् ने फरमाया–आनन्द ! अदत्तादान विरमण व्रत के पाँच अतिचारों को जानना चाहिए लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए। यथा –

1. स्तेनाहृत–स्तेन (चोर), आहृत (चुराई गयी) अर्थात् चोर द्वारा चुराई वस्तु, बहुमूल्य वस्तु सस्ते में खरीदना।
2. तस्कर प्रयोग–अपने व्यवसायिक कार्यों में चोरों को प्रेरणा देना, उनका उपयोग करना।
3. विरुद्ध राज्यातिक्रम–राज्य-विरुद्ध कार्य करना।
4. कूटतूल कूटमाप–कूड़ा तोल, कूड़ा माप करना अर्थात् बिना उपयोग के किसी से अधिक लेना और कम देना। संकल्पपूर्वक, जानबूझकर ऐसा करने से यह अनाचार बन जाता है।
5. तत्प्रतिरूपक व्यवहार–नकली वस्तु को असली और असली वस्तु को नकली बताना तत्प्रतिरूपक व्यवहार है। घी में चरबी मिलाना आदि भी इसी अतिचार में सम्मिलित हैं।[17]

तदनन्तर स्वदार संतोष-व्रत के पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं –

1. इत्वरिका परिगृहीता गमन–कुछ दिन या कुछ मास के लिए किराये पर रखी हुई स्त्री से मैथुन सेवन करना। यह अतिचार नियमों का आंशिक रूप से खंडन करने से लगता है।
2. अपरिगृहीता गमन–गणिका या किराये पर रखी हुई दूसरे की स्त्री से मैथुन सेवन करना। यह अतिचार व्रत के अतिक्रम से लगता है।
3. अनंगक्रीड़ा–रतिक्रीड़ा हेतु किसी परकीया के कुच-मर्दन, उदरादि का विकारी भावना से दर्शन, मुख-चुम्बन, हास्यादि कौतुहल करना। यह अतिचार पर स्त्री से मैथुन सेवन का त्याग होने से उसके साथ प्रेमालिङ्गन करने से लगता है।
4. पर-विवाह करना–अपनी संतान के अतिरिक्त दूसरों का विवाहादि करवाना।[18]
5. काम भोग की तीव्र अभिलाषा करना।

तदनन्तर इच्छा-परिमाण व्रत के पाँच अतिचार जानने चाहिए, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए –

1. क्षेत्र-वस्तु-परिमाणातिक्रमण[xxiv]–क्षेत्र (खुली भूमि), वस्तु (मकान)। व्रत ग्रहण करते समय जितनी खुली भूमि एवं मकानादि की मर्यादा की, उसका परिमाण बढ़ाने के लिए दूसरे क्षेत्र को, बाड़ आदि तोड़कर, पहले में मिला देना क्षेत्रप्रमाणातिक्रमण अतिचार है।
2. हिरण्य-सुवर्ण प्रमाणातिक्रमण–जितने सोने-चाँदी का परिमाण किया

निरपराधी प्राणी को चीर डालना छविच्छेद नामक अतिचार है।

4. अतिभार–पशु-दास-दासी आदि पर उनकी शक्ति से अधिक भार डालना अतिभार है। इससे मनुष्य एवं पशुओं के शरीर और मन को क्षति पहुँचती है और मन की निर्दयता ही प्रकट होती है। किसी अक्षम व्यक्ति पर योग्यता से अधिक भार डालना भी अतिभार-रोपण अतिचार है। जैसे नाबालिग बालक-बालिकाओं पर विवाह की जिम्मेदारी डालना, वृद्ध एवं अनमेल विवाह करना, प्रजा पर अधिक कर या चुंगी का आरोपण करना, अयोग्य व्यक्तियों पर संघ, समाज या शासन संचालन की जिम्मेदारी डालना आदि-आदि सभी अतिभार आरोपण के अन्तर्गत हैं।
5. भक्त-पान व्यवच्छेद–अपने आश्रित दास-पशु आदि के खान-पान में बाधा डालना, उनको समय पर भोजन नहीं देना। कर्मचारियों आदि को उचित समय पर उचित वेतन नहीं देना। गर्भवती स्त्री द्वारा उपवास करके गर्भस्थ जीव को भूखा रखना आदि इसी अतिचार में शामिल हैं।[15]

स्थूल मृषावाद के पाँच अतिचारों को जानना चाहिए लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए। यथा –

1. सहसा अभ्याख्यान–यकायक, बिना सोचे-समझे किसी पर झूठा आरोप लगाना, सहसा अभ्याख्यान है। तीव्र क्लेशयुक्त झूठ बोलने से तो अनाचार भी बन जाता है।
2. रहस्याभ्याख्यान–किसी की गुप्त बात को प्रकट करना या एकान्त में बैठे व्यक्तियों को बात करते हुए देखकर उन पर झूठा दोषारोपण करना रहस्याभ्याख्यान अतिचार है।
3. स्वदारमंत्र-भेद–अपनी स्त्री की गुप्त बात या मर्मकारी घटना प्रकट करना स्वदारमंत्र-भेद नामक अतिचार है, क्योंकि ऐसा करने से लज्जावश स्त्री आत्महत्या तक कर लेती है।
4. मृषोपदेश–दूसरों को झूठा उपदेश देना मृषोपदेश है। यथा–झूठ बोलने, चालाकी करने, तोल-माप में गड़बड़ी करने, ठगी-बेईमानी करने की प्रेरणा देना, ट्रेनिंग देना, प्रोत्साहित करना आदि इसी में सम्मिलित हैं।
5. कूटलेखकरण–झूठा लेख लिखना, दूसरों को ठगने के लिए झूठे, जाली कागजात तैयार करना। यह अतिचार प्रमादवश या अविवेक से झूठा लेख लिखने से लगता है। जानबूझकर करने पर तो यह अनाचार की कोटि में आता है।[16]

तदनन्तर भगवान् ने फरमाया–आनन्द ! अदत्तादान विरमण व्रत के पाँच अतिचारों को जानना चाहिए लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए। यथा –

1. स्तेनाहृत–स्तेन (चोर), आहृत (चुराई गयी) अर्थात् चोर द्वारा चुराई वस्तु, बहुमूल्य वस्तु सस्ते में खरीदना।
2. तस्कर प्रयोग–अपने व्यवसायिक कार्यों में चोरों को प्रेरणा देना, उनका उपयोग करना।
3. विरुद्ध राज्यातिक्रम–राज्य-विरुद्ध कार्य करना।
4. कूटतूल कूटमाप–कूड़ा तोल, कूड़ा माप करना अर्थात् बिना उपयोग के किसी से अधिक लेना और कम देना। संकल्पपूर्वक, जानबूझकर ऐसा करने से यह अनाचार बन जाता है।
5. तत्प्रतिरूपक व्यवहार–नकली वस्तु को असली और असली वस्तु को नकली बताना तत्प्रतिरूपक व्यवहार है। घी में चरबी मिलाना आदि भी इसी अतिचार में सम्मिलित हैं।[17]

तदनन्तर स्वदार संतोष-व्रत के पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं –

1. इत्वरिका परिगृहीता गमन–कुछ दिन या कुछ मास के लिए किराये पर रखी हुई स्त्री से मैथुन सेवन करना। यह अतिचार नियमों का आंशिक रूप से खंडन करने से लगता है।
2. अपरिगृहीता गमन–गणिका या किराये पर रखी हुई दूसरे की स्त्री से मैथुन सेवन करना। यह अतिचार व्रत के अतिक्रम से लगता है।
3. अनंगक्रीड़ा–रतिक्रीड़ा हेतु किसी परकीया के कुच-मर्दन, उदरादि का विकारी भावना से दर्शन, मुख-चुम्बन, हास्यादि कौतुहल करना। यह अतिचार पर स्त्री से मैथुन सेवन का त्याग होने से उसके साथ प्रेमालिङ्गन करने से लगता है।
4. पर-विवाह करना–अपनी संतान के अतिरिक्त दूसरों का विवाहादि करवाना।[18]
5. काम भोग की तीव्र अभिलाषा करना।

तदनन्तर इच्छा-परिमाण व्रत के पाँच अतिचार जानने चाहिए, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए –

1. क्षेत्र-वस्तु-परिमाणातिक्रमण[xxiv]–क्षेत्र (खुली भूमि), वस्तु (मकान)। व्रत ग्रहण करते समय जितनी खुली भूमि एवं मकानादि की मर्यादा की, उसका परिमाण बढ़ाने के लिए दूसरे क्षेत्र को, बाड़ आदि तोड़कर, पहले में मिला देना क्षेत्रप्रमाणातिक्रमण अतिचार है।
2. हिरण्य-सुवर्ण प्रमाणातिक्रमण–जितने सोने-चाँदी का परिमाण किया

उसकी सीमा का अतिक्रमण कर जाना।

3. **धन-धान्य प्रमाणातिक्रमण**–मणि, मोती आदि धन और चावल, मूँगादि धान्य, इनका जितना परिमाण किया उससे अधिक रखना।
4. **द्विपद-चतुष्पद परिमाणातिक्रमण**–नौकर, दास[xxv]-दासी आदि द्विपद और गाय, भैंस, घोड़ा आदि चतुष्पद का जितना परिमाण किया, उससे अधिक रखना।
5. **कुप्य प्रमाणातिक्रमण**–कुप्य–गृहोपयोगी वस्तुओं का प्रमाण-अतिक्रमण करना। जैसे जितनी थाली, कटोरी रखी है, उनको बिना उपयोग के अधिक रखना, या कारण-विशेष से संख्या पूरी हो जाये तो दो मिलाकर एक कर देना, जैसे थाली ज्यादा हो गयी तो दो को मिलाकर एक बड़ा थाल बना देना।

तदनन्तर छठे दिशिव्रत के पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण योग्य नहीं हैं। यथा –

1. **ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रमण**–ऊँची दिशा में जाने की मर्यादा का अतिक्रमण करना।
2. **अधोदिशि प्रमाणातिक्रमण**–नीची दिशा में जाने की मर्यादा का अतिक्रमण करना।
3. **तिर्यक्दिशि प्रमाणातिक्रमण**–तिरछी दिशा में जाने की मर्यादा का अतिक्रमण करना।
4. **क्षेत्रवृद्धि करना**–चार दिशाओं में सौ योजन रखी, उसको एक में बढ़ाकर 150 करना, दूसरी में पचास कर देना।
5. **स्मृत्यन्तर्धान**–दिशा की मर्यादा को भूल जाने से आगे अधिक जाना।[xxvi]

उपभोग-परिभोग व्रत दो प्रकार का कहा गया है–भोजन की अपेक्षा और कर्म की अपेक्षा।

1. **सचित्त आहार**–जिस सचित्त आहार का त्याग किया है या मर्यादा की, उसको प्रमादवश या मर्यादापूर्ण हुए बिना खाना।
2. **सचित्त पडिबद्ध आहार**–जिस सचित्त पदार्थ का त्याग है, उसको सचित्त से संलग्न खाना। जैसे सचित्त आम का त्यागी आम्रफल को गुठली सहित चूसे तो यह अतिचार लगता है।
3. **अपक्व औषधि भक्षणता**–अग्नि आदि से असंस्कारित शालि आदि औषधियों का बिना उपयोग भक्षण करना।

4. कुष्पक्व औषधि भक्षण–अर्धअपक्व औषधियों का पक्व बुद्धि से भक्षण करना।
5. तुच्छोषधि भक्षण–सार वस्तु कम और फेंकने योग्य अधिक हो, ऐसे सीताफल आदि का भक्षण।

जिन व्यवसायों से ज्ञानावरणादि कर्मों का प्रबलता से आदान ग्रहण होता है, वे कर्मादान हैं। कर्मादान में हिंसा की प्रचुरता रहने से भगवान् महावीर ने आनन्दजी से कहा–आनन्द ! पन्द्रह कर्मादान श्रावक को जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं। यथा –

1. इंगाल कर्म–कोयला बनाने का धंधा। अन्य भी ईंट, चूना, बरतन आदि पकाने का धंधा। अग्नि का आरम्भ करके करना अंगार कर्म अतिचार है।
2. वन कर्म–बड़े-बड़े जंगलों को ठेके से कटवाना एवं लकड़ियाँ बेचने का धंधा करना।
3. शकट कर्म–गाड़ी आदि वाहन बनाकर बेचने का धंधा करना।
4. भाटिक कर्म–ऊँट, घोड़ा, बैलादि पशु किराये पर देकर अति बोझ लादकर कमाना।
5. स्फोटक कर्म–कुदाल, हल आदि से भूमि खोदने का कार्य करना। खानें खोदना, पत्थर फोड़ना आदि स्फोटक कर्म हैं।[xxvii]
6. दंत वाणिज्य–हाथीदाँत, शंख, कोड़ी, गाय की खाल, बाल और जीवों के अंग बेचने का व्यापार कर आजीविका चलाना।
7. लाक्षा वाणिज्य–लाख आदि का व्यापार करना।
8. रस वाणिज्य–मदिरादि मादक रसों का व्यापार करना।
9. विष वाणिज्य–विष, शस्त्रादि प्राणघातक वस्तुओं का व्यापार करना।
10. केश वाणिज्य–केश वाले दास-दासी, अन्य द्विपद, चतुष्पद पशु-पक्षी आदि बेचने का व्यवसाय करना।
11. यंत्र पीड़न कर्म–यंत्रों से तिल, गन्ना आदि पीलने का व्यवसाय करना।
12. निलांछन कर्म–पशुओं को नपुंसक बनाने का काम करना।
13. दावाग्निदापनता–वन में आग लगाने का धंधा करना।

14. सरहदतडाग शोषणता–जलाशय, तालाब आदि को सुखाने का धंधा करना।
15. असतीजन पोषणता–दुष्ट, व्यभिचारिणी स्त्री का पोषण करके उसके व्यापार से आजीविका चलाना।

तदनन्तर आठवें अनर्थदंड व्रत के पाँच अतिचार श्रावक के जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं –

1. कंदर्प–काम-विकार पैदा करने वाले, राग-मोहोद्दीपक हास्यजनक वचन बोलना कंदर्प अतिचार है।
2. कौत्कुच्य–विकृत चेष्टाएँ करना।
3. मौखय–निर्लज्ज होकर व्यर्थ की बातें बनाना, बकवास करना और असत्य वचन बोलना मौखर्य है।
4. संयुक्ताधिकरण–ऊखल, मूसल, शस्त्रादि हिंसामूलक साधनों को इकट्ठा करना।
5. उपभोग-परिभोगातिरेक–उपभोग, परिभोग सम्बन्धी सामग्री को अनावश्यक एकत्रित करना।

अब सामायिक व्रत के पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं।

1. मनःदुष्प्रणिधान–सामायिक लेने के पश्चात् गृह सम्बन्धी शुभाशुभ कार्य का चिंतन करना।
2. वचन दुष्प्रणिधान–सामायिक में सावद्य कठोर वचन बोलना।
3. काय दुष्प्रणिधान–बिना प्रमार्जन किये बैठना आदि।
4. सामायिक स्मृत अकरणता–सामायिक का समय विस्मृत हो जाना कि मैंने सामायिक कब ली अथवा सामायिक ली या नहीं ली।
5. सामायिक अनवस्थित करणता–सामायिक का समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पार लेना अथवा बिना इच्छा सामायिक करना।

इन पाँच अतिचारों में से पहले के तीन अतिचार बिना उपयोग के कारण लगते हैं और अन्तिम दो प्रमाद की बहुलता से लगते हैं।

इसके अनन्तर दसवाँ देशावकाशिक व्रत है, जिसके पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, न कि आचरण योग्य हैं। यथा –

1. आनयन प्रयोग–जितनी भूमि की मर्यादा की है, उससे अधिक भूमि से सचित्तादि द्रव्य किसी से मँगवाना या संदेशा भेजकर मँगवाना।

2. प्रेष्य प्रयोग–मर्यादित क्षेत्र के बाहर के कार्यों को सम्पादित करने हेतु भेजकर आदेश करना कि वहाँ जाकर मेरी गाय ले आना या अमुक काम कर देना।
3. शब्दानुपात–मर्यादित क्षेत्र का कार्य ध्यान में आने पर पास में रहने वाले को खाँसी आदि करके सूचित करना।
4. रूपानुपात–मर्यादित क्षेत्र के बाहर का कार्य करने के लिए अपना रूप बनाकर अंगुली आदि से संकेत करना।
5. बाःहि पुद्गल प्रक्षेप–मर्यादित क्षेत्र के बाहर का काम करने के लिए कंकर आदि फेंककर दूसरों को सूचित करना।

तदनन्तर श्रमणोपासक के पौषध व्रत के पाँच अतिचारों को जानना चाहिए, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए।

1. अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्या-संस्तारक–शय्या (शयन का स्थान) और संस्तारक (बिछौना) बिना देखे या अच्छी तरह से न देखे गये स्थान और संस्तारक का पौषध में उपयोग करना।
2. अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित शय्या-संस्तारक–बिना प्रमार्जन किये या अच्छी तरह से प्रमार्जन नहीं किये गये शय्या-संस्तारक का पौषध में उपयोग करना।
3. अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित उच्चार-प्रस्रवण भूमि–बिना देखी या अच्छी तरह से न देखी उच्चार (मल प्रस्रवण मूत्र विसर्जन) भूमि का उपयोग करना।
4. अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित उच्चार प्रस्रवण भूमि–बिना पूंजे या अच्छी तरह से न पूंजी गयी उच्चार प्रस्रवण भूमि का उपयोग करना।
5. पौषधव्रत का सम्यक् अननुपालन–उपवास युक्त पौषध का सम्यक् रूप से पालन नहीं करना।[xxviii]

तदनन्तर अतिथि-संविभाग व्रत के पाँच अतिचार श्रमणोपासक के जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं। यथा –

1. सचित्त निक्षेपण–साधु को दान न देने की इच्छा से निर्दोष आहार को सचित्त आहार में रखना।
2. सचित्तापिधान–साधु को आहार न देने की इच्छा से आहारादि को सचित्त फलादि से ढँकना।
3. कालातिक्रम–साधुओं की भिक्षा का समय व्यतीत होने पर भिक्षा देने

की भावना रखना। ऊपर से दातार बनने का अभिनय करना किन्तु भीतर दान देने की भावना नहीं होना।

4. परव्यपदेश–दान न देने की भावना से स्वयं की वस्तु दूसरों की बतलाना।
5. मत्सरिता–दूसरों ने इस प्रकार का दान दिया तो क्या मैं कंजूस हूँ, जो इस प्रकार का दान नहीं दे सकता। इस प्रकार ईर्ष्याभाव से दान देना।

ये पाँच-पाँच अतिचार प्रत्येक व्रत के बतलाये हैं, य सब उपलक्षण भाव मात्र हैं। अतएव अतिचार के अनेक भेद संभव हैं। ये अतिचार मात्र प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से होते हैं क्योंकि सर्वविरति के लिए एकमात्र संज्वलन कषाय ही देशघाती है। शेष अनन्तानुबंधी आदि बारह कषाय तो सर्वघाती हैं, उनके उदय से मूल व्रत भंग हो जाता है।

तदनन्तर अपश्चिम मारणान्तिक संलेखणा झूषणा के पाँच अतिचारों को जानना चाहिए लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए।

अन्तिम समय में मारणान्तिक–मरणपर्यन्त संलेखना–शरीर और कषायों को कृश करके झूषणा, उसकी सेवना, आराधना करना संलेखना[xxix] है। उसके पाँच अतिचार हैं। यथा –

1. इहलोकाशंसा प्रयोग–मनुष्यलोक में सेठ, राजा, मंत्री आदि ऋद्धि वाले मनुष्य होने की इच्छा करना।
2. परलोकाशंसा प्रयोग–परलोक में देव, देवेन्द्र होने की अभिलाषा करना।
3. जीविताशंसा प्रयोग–संलेखणा संथारा लेने से लोगों में अत्यधिक यशकीर्ति होते देखकर सोचना कि मैं अधिक समय तक जीवित रहूँ तो अच्छा है।
4. मरणाशंसा प्रयोग–अपनी यशःकीर्ति नहीं होने से जल्दी मरने की इच्छा करना।
5. कामभोगाशंसा प्रयोग–मनुष्य सम्बन्धी दिव्य कामभोगों की अभिलाषा करना।

इस प्रकार प्रभु के मुखारविन्द से इन अतिचारों को श्रवण करके आनन्द श्रावक ने श्रावक के आचरण करने योग्य बारह व्रतों को ग्रहण किया और प्रभु को वंदन-नमस्कार करके वह भगवान् से कहने लगा –

भगवन् ! आज से निर्ग्रन्थ धर्मसंघ के अतिरिक्त अन्य संघों से सम्बद्ध पुरुषों को, उनके देवों को, उनके साधुओं को वन्दन-नमस्कार करना, उनके पहले बिना बोले उनसे बातचीत करना, उन्हें अशन–रोटी आदि, पान–पानी, दूधादि, खादिम–फल-मेवा आदि, स्वादिम–लोंग, इलायची, मुखवासादि वस्तुएँ धर्म समझ

कर नहीं दूँगा। किन्तु राजा, समुदाय, बलवान, देव, माता-पिता, गुरु की आज्ञा से और आजीविका के लिए धर्म मानकर दान देना पड़े तो मुझे आगार है।

मैं आज से श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादपोंछन, पीठ[क], फलक[ख], शय्या[ग], संस्तारक[घ], औषध[ङ] और भैषज[च] आदि वस्तुएँ दूँगा।[xxx] इस प्रकार का अभिग्रह आनन्द श्रावक ने स्वीकार किया। तत्पश्चात् उन्होंने भगवान् से कई प्रश्न पूछे और भगवान् द्वारा समाधान फरमाये जाने पर प्रभु को तीन बार वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके दूतिपलाश चैत्य से निकले, अपने रथ पर आरूढ़ हुए और आरूढ़ होकर अपने घर की ओर रवाना हो गये।

आनन्द व्रत ग्रहण करके अपने अन्तर में अत्यन्त प्रफुल्लित हो रहे थे और वे मार्ग में ही चिन्तन कर रहे थे कि आज का दिन कितना श्रेयस्कर है कि आज मैंने स्वयं भगवान् महावीर से श्रावक योग्य बारह व्रतों को ग्रहण कर धर्ममार्ग में अपने चरण गतिमान कर लिये। अब मेरी पत्नी शिवानन्दा, वह भी बहुत ही सरल स्वभाव वाली है, उसे भी कहूँ कि तुम भी व्रत ग्रहण कर लो, तब वह भी व्रत ग्रहण कर लेगी। अपने जीवन को धन्य बना ही लेगी। इसी प्रकार चिन्तन करते-करते वह अपने घर पहुँचा और घर पहुँच कर शिवानन्दा से कहा—देवानुप्रिय ! मैंने आज श्रमण भगवान् महावीर से आगार धर्म के बारे में सुना, वह मुझे इष्ट, कान्त, अत्यन्त रुचिकर लगा। अतएव हे देवानुप्रिय ! तुम भी भगवान् महावीर के पास जाओ, उनको वन्दन-नमस्कार करके उनका सत्कार, सम्मान करो क्योंकि वे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और ज्ञानरूप हैं। इस प्रकार तुम उनकी पर्युपासना करके श्रावक योग्य पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह व्रत स्वीकार करो।

आनन्द श्रमणोपासक के मुखारविन्द से निःसृत वाणी को देवानन्दा ने सुना ही नहीं, बल्कि अपने हृदय में धारण कर लिया और हृदय में अतीव आनन्द का अनुभव करती हुई सौम्य भावों से समन्वित हर्षातिरेक से हाथ जोड़कर आदरपूर्वक अपने पति से इस प्रकार बोली—आपका कथन यथार्थ है। मैं आपके वचनों का आदर करती हुई, जैसा आपने कहा है, वैसा ही करती हूँ।

इस प्रकार शिवानन्दा की स्वीकृति मिलने पर आनन्द ने अपने सेवकों को बुलाया और कहा—हे देवानुप्रियों ! तुम त्वरित गतिवाले, एक समान खुर एवं पूँछ वाले, रंग-बिरंगे चित्रों से चित्रित सींग वाले, गले में स्वर्ण के आभूषण और

(क) पीठ-पाटा (ख) फलक-बाजोट (ग) शय्या-ठहरने का स्थान
(घ) संस्तारक-दर्भादि का बिछौना (ङ) औषध-दवा (च) भैषज-अनेक वस्तुओं के संयोग

जोत धारण करने वाले, गले में चाँदी की घटियों सहित नाक में उत्तम सोने के तारों से मिश्रित पतली-सी सूत की नाथ से जुड़ी रास के सहारे वाहकों द्वारा सम्हाले हुए, नीलकमलों से बनी कलंगीयुक्त मस्तक वाले, दो युवा बैलों द्वारा खींचे जाते, अनेक प्रकार की मणियों और स्वर्ण की बहुत-सी घंटियों से युक्त, श्रेष्ठ लकड़ी के एकदम सीधे, उत्तम और सुन्दर बने हुए जुए सहित, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त, धार्मिक कार्यों में उपभोग में आने वाले श्रेष्ठ रथ को शीघ्र ही उपस्थित करो।

आनन्द श्रमणोपासक द्वारा यों कहे जाने पर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उसके कथनानुसार बैलों को सुसज्जित कर, धार्मिक यान[xxxi] को तैयार कर उपस्थित कर दिया।

तत्पश्चात् शिवानन्दा ने स्नान किया, बलिकर्म[क], कौतुक[ख], मंगल[ग] और प्रायश्चित[घ] किया। धार्मिक स्थल पर प्रवेश योग्य शुद्ध मांगलिक वस्त्रों को धारण किया, अल्पभार वाले बहुमूल्य आभूषणों को धारण किया और दासियों के समूह से घिरी वह धार्मिक रथ पर सवार हुई। धार्मिक रथ पर सवार होकर वह दूतिपलाश चैत्य पहुँच गयी। वहाँ जाकर धार्मिक रथ से नीचे उतरी और भगवान् महावीर के पास पहुँची। वहाँ पहुँचकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा कर, वन्दन-नमस्कार किया और भगवान् से न अति निकट, न अति दूर बैठकर, हाथ जोड़कर पर्युपासना करने लगी।

तब भगवान् महावीर ने उस विशाल जनभेदिनी को एवं शिवानन्दा को धर्मोपदेश दिया, जिसे श्रवण कर शिवानन्दा ने अपने हृदय में उतार लिया और उसने भगवान् महावीर से श्रावक योग्य बारह व्रत ग्रहण किये। व्रत ग्रहण करने के पश्चात् उत्तम रथ पर आरूढ़ होकर वह पुनः अपने घर लौट गयी।

आनन्द श्रावक के व्रत ग्रहण करने के पश्चात् इन्द्रभूति गौतम, जो भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य थे, उनके मन में एक जिज्ञासा समुद्भूत हुई और वे अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान् महावीर के चरणों में वन्दन-नमस्कार कर प्रभु से पूछने लगे–भंते ! श्रमणोपासक आनन्द क्या आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर प्रव्रजित होने में समर्थ है?

भगवान्–गौतम ! ऐसा संभव नहीं है। आनन्द श्रमणोपासक बहुत वर्षों तक श्रावक धर्म का पालन कर, ग्यारह उपासक प्रतिमा अंगीकार कर, एक मास का अनशन कर, आलोचना-प्रतिक्रमण कर अन्त समय में देह त्याग कर सौधर्म कल्प में अरुणाभ विमान में चार पल्योपम की स्थितिवाला देव बनेगा।

(क) बलिकर्म–नित्य नैमित्तिक कार्य
(ख) कौतुक–देह सज्जा की दृष्टि से आँखों में काजल आंजना
(ग) मंगल–ललाट पर तिलक लगाना
(घ) प्रायश्चित–दोष निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दधि और अक्षत से मंगल विधान किया।

गौतम गणधर की जिज्ञासा का समाधान होने पर वे प्रभु को वन्दन-नमस्कार करके तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगे।

भगवान् महावीर भी वाणिज्यग्राम निवासी एवं अन्य अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोध देकर उन्हें जिनेश्वर मार्ग पर आरूढ़ कर अपना वर्षावास वाणिज्य ग्राम में सम्पन्न करने लगे। भगवान् तो जयन्ति श्रमणोपासिका को दीक्षा देकर वहाँ से विहार कर गये लेकिन उनके उस वर्ष में अनेक नगरियों में अनेक घटनाएँ घटित हुईं। जो चण्डप्रद्योतन उज्जयिनी का सम्राट् स्त्री-लम्पट और पर-द्रव्यहरण में खूब आगे था, वह चौदह मुकुटबद्ध राजाओं के साथ स्वयं मिलकर मानों पन्द्रह परमाधामी धरती पर उतर आये हों। ऐसे विशाल बर्बर राजाओं सहित चतुरंगिणी सेना सजाकर वह मगध पर आक्रमण करने हेतु उज्जयिनी से चल पड़ा। मगध के गुप्तचरों को इस वार्ता का पता लग ही गया, तब उन्होंने सारा वृत्तान्त राजा श्रेणिक से आकर निवेदन किया।

राजा श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलवाया और सारी समस्या उसके सामने रखी। तब अभयकुमार ने कहा—इसमें क्या घबराना? मैं शस्त्रास्त्र के साथ प्रज्ञा से उसे जीतने का प्रयास करूँगा। अभय की बात श्रवण कर राजा श्रेणिक निश्चिंत-से बन गये।

अभयकुमार ने अपना कार्य करना प्रारम्भ किया। उसने जहाँ-जहाँ शत्रुओं की छावनी थी वहाँ-वहाँ गुप्तचरों को भेजकर छावनी एवं आस-पास की भूमि में लोटों में सोनैया भर-भर जमीन में गड़वा दी। गुप्तचर अपना काम करके यथास्थान लौटे और प्रद्योतन की सेना ने पूरी राजगृह नगरी को घेर लिया। उस समय एक पत्र अभयकुमार ने राजा प्रद्योतन को लिखकर भेजा कि –

पूज्य मौसाजी ! मैं मेरी प्रिय मौसी शिवादेवी और मातेश्वरी चेलना में किसी प्रकार का भेद नहीं मानता। अतः आप शिवादेवी के प्राणप्रिय भर्ता होने से मेरे सम्माननीय मौसा हैं। मैं तुम्हारा एकान्त हित करना चाहता हूँ इसलिए मैं मगध सम्राट् श्रेणिक के गुप्त षड्यंत्र को तुम्हें बतला रहा हूँ कि अभी श्रेणिक राजा ने आपके साथ क्या षड्यंत्र किया है। राजा श्रेणिक ने तुम्हारे साथ आने वाले सारे राजाओं के साथ समझौता कर लिया है और उनको स्वाधीन करने के लिए खूब सोनैया दी है, इससे वे अवसरानुसार तुम्हें बाँधकर मेरे पिताश्री को सौंप देंगे। राजा श्रेणिक ने उन राजाओं की खातिरदारी करने के लिए उनके वासगृह में सोनैया जमीन में छिपा रखी है, तुम भले ही उनको खुद खुदवाकर देख लो।"

जैसे ही प्रद्योतन ने यह पत्र पढ़ा, उसके नीचे की धरती मानों खिसक गई। उसने एक राजा के आवास के नीचे की भूमि खुदवाई तो वहाँ वस्तुतः खूब

सोनैया लोटे में गड़ी हुई मिली। तब प्रद्योतन बंदी बनाये जाने के भय से वहाँ से पड़ाव हटाकर बेतहाशा उज्जयिनी की ओर भागने लगा। प्रद्योतन को इस तरह भागते हुए देखकर अन्य मुकुटबद्ध राजा एवं महारथी भी भाग खड़े हुए। उन्हें केश सज्जा का अवकाश तक न मिलने के कारण उनके मुकुट भी जमीन पर गिर पड़े, लेकिन वे भयभीत हुए भागते ही जा रहे थे और भागते-भागते सभी उज्जयिनी पहुँच गये।

उज्जयिनी जाकर सब मिले तो प्रद्योतन ने उन राजाओं से पूछा कि क्या तुम मगध सम्राट् श्रेणिक को मुझे बंदी बनाकर सौंप रहे थे? तब उन्होंने कहा–"राजन् ! यह सर्वथा मिथ्या बात है। हमें ऐसा करना होता तो हम उज्जयिनी आते ही क्यों?" आखिर विचार-विमर्श करके वे इस निर्णय पर पहुँच गये कि यह सब अभयकुमार की ही माया है।

राजा प्रद्योतन अभयकुमार के इस कृत्य से अत्यन्त क्षुब्ध बन गया और उसके मन में प्रतिशोध की अग्नि निरन्तर जलने लगी।

उसके मन में निरन्तर अभयकुमार से प्रतिशोध लेने के भाव जागृत होते रहते थे। आखिरकार एक बार उसने अपनी सभा में घोषणा कर ही दी कि जो अभयकुमार को बाँधकर उज्जयिनी लायेगा, उसको मैं खुश करूँगा। इस पर उस सभा में एक गणिका ने हाथ ऊपर किया। प्रद्योतन राजा ने उस गणिका को आज्ञा प्रदान की और कहा–"तू जा और यह कार्य सम्पन्न कर दे।"

वह गणिका अब अभयकुमार को छलने की युक्ति सोचती है कि अभयकुमार अन्य किसी कार्य से हमारे वश में आने वाला नहीं है। अतएव धर्मछल करके ही उसे मैं वश में कर सकती हूँ। यह सोचकर उसने अपने कार्य की सफलता के लिए राजा से दो बुद्धिमती युवतियों की माँग की। प्रद्योतन ने गणिका को, दो बुद्धिमती युवतियाँ एवं पुष्कल द्रव्य देकर विदा किया। वह गणिका उन दो युवतियों को साथ लेकर बहुश्रुता साध्वी के पास पहुँची एवं आदरपूर्वक साध्वी की पर्युपासना करने से वे कुशाग्र बुद्धिशाली और बहुश्रुता बन गयीं। तत्पश्चात् वे राजगृह नगर के बाहर उद्यान में आई और वहाँ धर्म-उपासना करने लगी। सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषधादि से लोगों को आकृष्ट करने लगी।

उनकी उस उपासना की खबर अभयकुमार तक भी पहुँची। तब अभयकुमार स्वयं उनके पास आया और उनका परिचय पूछा कि तुम कौन हो?

उस गणिका ने, जो श्राविका बनने का पाखण्ड कर रही थी, अभयकुमार को बताया कि मैं उज्जयिनी के धनाढ्य व्यापारी की विवाहिता विधवा स्त्री हूँ। ये मेरी दोनों पुत्रवधुएँ भी क्रूर काल के जाल से विधवा बन गयी हैं। अब इनके मन में संयम लेने के भाव जगे हैं। चूँकि संयम सरल नहीं है, अतएव हम पहले

घूम-घूमकर संयमी जीवन का अभ्यास कर रही हैं।

तब अभयकुमार ने कहा–चलो, आज हमारा आतिथ्य स्वीकार करो।

गणिका–आज तो हमारे उपवास है।

अभयकुमार–कल आना।

गणिका–कल का कोई भरोसा नहीं।

अभयकुमार–चलो, मैं फिर कल आऊँगा। यों कहकर अभयकुमार लौट गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अभयकुमार उन्हें बुलाने के लिए चला गया। अभयकुमार के भावभरे निमंत्रण को उन्होंने स्वीकार किया और वे उसके साथ चली गयीं। उनका खूब सम्मान कर, भोजन खिलाकर, वस्त्रादि से सत्कार कर अभयकुमार ने उनको विदा किया तो उन्होंने अभयकुमार को भोजन का निमंत्रण दिया, जिसे अभयकुमार ने स्वधर्मी वात्सल्य भाव से स्वीकार कर लिया।

गणिका अपना जाल बिछाकर मन में आनन्द का अनुभव कर रही थी। वे दूसरे दिन भोजनादि विविध सामग्री तैयार कर अभयकुमार का इन्तजार कर रही थीं। अभयकुमार अपने वचनानुसार वहाँ पर आया। गणिका ने खूब सत्कार-सम्मान से उसे भोजन करवाया और मदिरायुक्त जल का पान कराया जिससे अभयकुमार को गहरी नींद आ गयी। तब गणिका ने उसको संकेत से रथ में सुलाकर उज्जयिनी पहुँचा दिया।

इधर अभयकुमार के महलों में न पहुँचने से राज्य में खलबली मच गयी। श्रेणिक राजा ने कर्मचारियों को अभयकुमार की खोज के लिए उन कपटी श्राविकाओं के पास भेजा, लेकिन वे कपटी श्राविकाएँ तो कहने लगी कि अभयकुमार हमारे यहाँ से तो भोजन करके कब के ही लौट गये। राजकर्मचारी यह उत्तर श्रवण कर चले गये और वे कपटी श्राविकाएँ अतिशीघ्र वहाँ से उज्जयिनी पहुँच गयी और वहाँ जाकर राजा प्रद्योतन को अभयकुमार को ले जाकर सौंप दिया।[25]

जब राजकुमार अभय प्रद्योतन के पास बंदी बनकर पहुँचा तो प्रद्योतन ने उपहास करते हुए अभयकुमार को कहा–"तेरे जैसे नीतिज्ञ मेधावी पुरुष को स्त्रियों ने बाँध दिया।"

तब अभयकुमार व्यंग्य-परिहास करते हुए बोला–अरे ! तुम इस जगत में एकमात्र ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति हो कि इस प्रकार की ऐसी बुद्धि से तुम्हारा राजधर्म वृद्धि पा रहा है।"

अभयकुमार के वचन श्रवण कर प्रद्योतन शर्मिन्दा हुआ और साथ-साथ आवेशित भी। उसने उस आवेश के क्षणों में भ्रमित बुद्धि से अभयकुमार को काष्ठ के पिंजरे में बंद कर दिया।[xxxii]

अभयकुमार पिंजरे में भी समाधिस्थ बना हुआ है और प्रद्योतन सगर्व राज्य का संचालन कर रहा है। उस समय प्रद्योतन के राज्य में चार रत्न माने जाते थे–अनलगिरि हस्ती, अग्निभीरु रथ, शिवादेवी रानी और लोहजंघ नामक दूत। राजा प्रद्योतन उस लोहजंघ को आदेश देकर बार-बार भृगुकच्छ भेजता था। उसके बार-बार आने से भृगुकच्छ के लोग परेशान हो गये। वे सोचने लगे–ये प्रतिदिन उज्जयिनी से 25 योजन चलकर भृगुकच्छ आता है और राजा के प्रतिदिन नये-नये आदेश लाता है, इससे हम अत्यन्त व्यथित हो गये हैं, अतएव इसको मार देना चाहिए। ऐसा विचार कर वहाँ के लोगों ने एक बार लोहजंघ के नाश्ते में विषमिश्रित लड्डू रख दिये जिन्हें लेकर वह वहाँ से रवाना हो गया।

मार्ग में चलते-चलते लोहजंघ ने सोचा कि मुझे भूख लग गयी है, इसलिए अब लड्डू खा लेने चाहिए। वह जैसे ही मोदक खाने बैठा कि उसे अपशकुन हुए। तब उसने लड्डू नहीं खाये। फिर आगे चला, लड्डू खाने बैठा, पुनः अपशकुन हुए। तब उसने लड्डू नहीं खाये। तीसरी बार खाने बैठा कि पुनः अपशकुन हुए, तो उसने लड्डू खाये नहीं, अपितु वह उन्हें लेकर उज्जयिनी में लौट गया और उसने सारी बात प्रद्योतन से कह डाली।

राजा प्रद्योतन सुनकर विस्मयान्वित हो गया और इसका निर्णय करने हेतु तत्पर हो गया। तभी उसे अभयकुमार का खयाल आया और राजा ने सारी बात अभयकुमार से कही। अभयकुमार ने वह लड्डू की कोथली मंगवाई और उसे सूंघकर बतलाया कि इस कोथली में तो उस प्रकार के द्रव्यों के संयोग से दृष्टिविष सर्प उत्पन्न हो गया है।[xxxiii] अतएव यदि लोहजंघ यह कोथली छोड़ भी देगा तो वह उस सर्प के प्रभाव से दग्ध हो जायेगा। इसलिए अब इस कोथली को अरण्य में छोड़कर मुँह फेर लो। अभयकुमार की पैनी प्रज्ञा से समाधान को प्राप्त कर लोहजंघ जंगल में गया। उसने वृक्ष के पास कोथली फेंककर तुरन्त मुँह फेर लिया। तब उस सर्प के प्रभाव से वृक्ष जल गया और लोहजंघ बच गया।[26] इससे प्रद्योतन का मन प्रफुल्लित हुआ और उसने अभयकुमार से कहा–"कैदमुक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई वरदान माँगो।"

अभयकुमार बोला–"आप इसे मेरी धरोहर के रूप में अपने पास रखो।"

महामंत्री का चयन

अभयकुमार तो प्रद्योतन के यहाँ कैद बना हुआ है लेकिन उसके अपहरण के पश्चात् राजगृह की व्यवस्थाएँ अव्यवस्थित होने लगी, क्योंकि वहाँ की समस्याओं का समाधान करना अब टेढ़ी खीर हो गया। राजा श्रेणिक भी बड़े चिन्तित थे कि कोई योग्य व्यक्ति मिल जाये तो उसे अभयकुमार का पद दे दूँ, लेकिन उन्हें

चारों तरफ दृष्टि फैलाने पर भी उसकी सानी का कोई योग्य व्यक्ति नजर नहीं आया। फलतः वे निरन्तर खोज कर रहे थे कि अचानक एक दिन उनका पट्टहस्ती सेचनक मदोन्मत्त होकर बेतहाशा भागने लगा। वह कहीं वृक्षों को उखाड़ रहा है, कहीं दुकानों को, कहीं मकानों को अस्त-व्यस्त कर रहा है। तब राजा श्रेणिक ने घोषणा करवाई कि जो इस हाथी को वश में करेगा उसको राजकीय सम्मान और यथेष्ट पुरस्कार दिया जायेगा।

उस समय राजगृह में रहने वाले धनसार श्रेष्ठी के पुत्र धन्ना ने जब यह घोषणा सुनी तो उन्होंने सेचनक को वश में करने का बीड़ा उठाया और बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् आखिरकार जब हाथी भाग-भागकर थक गया और एक वृक्ष से अपनी पीठ खुजलाने लगा, उस समय अवसर जानकर वृक्ष पर चढ़कर धन्ना उसकी पीठ पर बैठ गया और उसे वश में कर लिया। राजा श्रेणिक धन्ना के इस कार्य पर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी पुत्री सोमा से उनका विवाह सम्पन्न करवाया, बहुत-से रत्नाभूषण और एक हजार गाँव पुरस्कार में दिये। साथ-साथ उन्हें राजगृह का मंत्री पद भी।[27]

परिचय–

एक दिन सोमा ने कुसुमश्री से पूछा कि हमारे स्वामी क्या राजगृह के मूल निवासी हैं? कुसुमश्री ने कहा–नहीं?

सोमा–तब उनका आगमन कहाँ से हुआ?

कुसुमश्री–प्रतिष्ठानपुर से।

सोमा–प्रतिष्ठानपुर से आगमन यहाँ !

कुसुमश्री–लो सुनो, मैं सुनाती हूँ जीवन-वृत्तान्त। यों कहकर कुसुश्री ने धन्ना के जीवन-वृत्तान्त को सुनाना प्रारम्भ किया।

गोदावरी के कूल पर बसा प्रतिष्ठानपुर नामक नगर ऋद्धि-समृद्धि से परिपूर्ण व्यापार का केन्द्र था। यहाँ का जितशत्रु राजा, गुणसुन्दरी महारानी और राजकुमार शत्रुदमन प्रजावत्सलता के कारण कीर्ति प्राप्त थे।

अनेक सेठ-साहूकारों की इस नगरी में राजकीय सम्मान प्राप्त धनसार श्रेष्ठी एवं उनकी शीलवती नामक पत्नी अपने तीन पुत्रों–धनदत्त, धनदेव और धनचन्द्र तथा क्रमशः तीन पुत्रवधुओं–धनश्री, धनदेवी और धनचन्द्रा के साथ सुखपूर्वक निवास करते थे।

एक दिन शीलवती सेठानी ने अपने गृह-आँगन में एक हराभरा लहलहाता कल्पवृक्ष देखा जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने समय आने पर एक शिशु का प्रसव किया। शिशु का नाला गाड़ने जैसे ही दासी ने खड्डा खोदा कि स्वर्ण

मुहरों से भरा एक कलश निकला। सेठ ने खूब धूम-धाम से पुत्रोत्सव मनाया और पुत्र का नाम धन्य रख दिया। धन्यकुमार पाँच धायों द्वारा परिपालित होने लगा और घर के सभी सदस्य प्यार से उसे धन्ना कहने लगे। धन्ना अनेक प्रकार की कलाओं और विद्याओं में पारंगत बन गया। जब धन्ना ने युवावस्था में प्रवेश किया तो वह अपनी सुतीक्ष्ण मेधा से अनेक समस्याओं को निपटा दिया करता था। इससे धन्ना का सम्मान निरन्तर बढ़ने लगा। धन्ना के सम्मान को देखकर तीनों भाइयों के कलुषित हृदय में ईर्ष्या का जागरण हुआ और उन्होंने पिता से अनेक बार कहा कि आप परीक्षा लेकर देखो कि हम में से कौन बुद्धिमान है? पिता ने पुत्रों को समझाने का अनेक बार प्रयास किया और जब वे नहीं माने तो परीक्षाएँ भी ली, लेकिन हर बार धन्ना को ही सफलता मिली। तब ईर्ष्या की प्रबल आग में जलकर तीनों भाइयों ने धन्ना को मारने का षड्यंत्र रचा, लेकिन धन्ना को इस बात का पता चला तो वह रात्रि में ही घर से निकलकर चला गया। चलते-चलते नर्मदा के तट पर पहुँच गया और वहाँ विश्राम करने लगा। जब ब्रह्ममुहूर्त में वह उठा तब एक सियार बोल रहा था कि नदी में तैर कर जो शव आ रहा है उसकी जंघा में अमूल्य पाँच रत्न छिपे हैं। धन्ना यह श्रवण कर रहा था। वह नदी के किनारे खड़ा हो गया और उस शव में से पाँच रत्न निकाल लिये, जिन्हें लेकर धन्ना यात्रा करते-करते उज्जयिनी पहुँच गया। वहाँ के महामंत्री का पद खाली था और प्रद्योतन ने घोषणा कर दी थी कि सरोवर के बीच एक खंभा है, सरोवर के बाहर उसके सामने एक वृक्ष है, जो व्यक्ति सरोवर में बिना उतरे खंभे और वृक्ष को एक रस्सी से बाँध देगा वह महामंत्री पद पर प्रतिष्ठित होगा। तब धन्ना ने यह बीड़ा उठाया। उसने वृक्ष से रस्सी का एक छोर बाँधा और रस्सी का दूसरा छोर लेकर सरोवर की परिक्रमा की। फिर रस्सी को खींचा तो स्तम्भ और वृक्ष रस्सी से बंध गये। तब धन्ना को महामंत्री के पद पर प्रतिष्ठित किया।

इधर धन्ना के घर से जाते ही माता-पिता एवं भाइयों के हाल बेहाल हुए। धन्ना के भाइयों ने राजघराने से चुराई वस्तुएँ एक चोर से सस्ते भाव में खरीद ली। जब राजा को यह स्थिति ज्ञात हुई तब उसने धन्ना के घर और दुकान का सारा माल अपहरण करवा लिया। फलतः पूरा परिवार प्रतिष्ठानपुर नगर छोड़कर निकल गया। यत्र-तत्र मजदूरी करके उदर पोषण करते हुए उज्जियिनी पहुँच गये। जब एक बार धन्ना ने उन्हें उज्जियिनी में फटे हाल घूमते देखा तो उनको ससम्मान अपने महल में बुलाया और वहाँ रहने लगे।

इधर धन्ना ने शव की जंघा से प्राप्त हुए बहुमूल्य रत्न अपने पिता को दिखलाये, जिन्हें देखकर पिताजी अत्यन्त प्रमुदित हुए। जब भाइयों को इन रत्नों की जानकारी हुई तब वे पिता से कहने लगे कि ये रत्न धन्ना की कमाई

के नहीं हैं। ये तो पैतृक सम्पत्ति हैं, अतः इनका बँटवारा होना चाहिए। धन्ना ने देखा सम्पत्ति के कारण गृहकलह हो रहा है तो रत्न पिता को दे दिये और मंत्री पद त्याग कर वहाँ से बनारस की ओर प्रस्थान कर दिया।

बनारस में गंगा नदी के तीर पर बैठकर वह समनस्क बनकर महामंत्र नवकार का जाप करने लगा तभी गंगादेवी ने प्रकट होकर धन्ना को चिन्तामणि रत्न दिया, जिसे प्राप्त कर उसने राजगृह की ओर प्रस्थान किया। चिन्तामणि को लेकर जब धन्ना राजगृह के मेरे पिता के (श्रेष्ठी कुसुमपाल के) शुष्क उद्यान में गया और चिन्तन किया कि यह बाग हरा-भरा हो जाये तो कितना अच्छा ! बस, चिन्तन करते ही बाग हरा-भरा होकर फल-फूलों की सौरभ से महकने लगा। मेरे पिताजी को इस वार्ता का पता लगा तो वह धन्ना को अपने घर ले गये और मुझसे उसका विवाह तय किया। धन्नाकुमार ने भी नगर के बाहर चिन्तामणि रत्न के प्रभाव से महल बनाया और वहाँ से बरात सजाकर मेरे साथ पाणिग्रहण किया।

इस प्रकार धन्नाजी का प्रतिष्ठानपुर से राजगृह आना हुआ है। देखो अपने स्वामी अपने बुद्धि कौशल से राजगृह के महामात्य पद प्राप्त कर गये।

कुसुमश्री के मुख से अपने स्वामी का जीवन-वृत्तान्त श्रवण कर सोमा गद्‌गद हो गयी। वे दोनों अत्यन्त प्रेम से रहकर समययापन कर रही हैं और धन्नाजी अपनी योग्यता से राजकार्य का सकुशल संचालन।[28]

गोभद्र दीक्षा :

राजगृह नगर भी उस समय की प्रमुख नगरी थी जहाँ ऋद्धि-समृद्धि से सम्पन्न पुण्यवान सेठ-साहूकारों का बाहुल्य था। सम्पत्ति के साथ-साथ सद्संस्कारों से समन्वित वे परिवार सदैव देव, गुरु, धर्म के प्रति दृढ़ आस्थावान बने हुए थे।

न्याय-नीति से सम्पन्न वहाँ के लोग बहुत प्रामाणिकता से जीवनयापन करते थे। ऐसे श्रेष्ठीवर्यों में अग्रगण्य थे–गोभद्र सेठ, जिनके यहाँ ऋद्धि-सम्पत्ति की किसी प्रकार कोई कमी नहीं थी। उनकी भद्रा सेठानी शीलगुणसम्पन्न रूपयौवना मानो अप्सरा ही थी। स्वभाव से सौम्य प्रकृति वाली भद्रा सेठानी गोभद्र सेठ के साथ अनुरक्त रहकर उन्हीं के निर्देशानुसार चलने वाली थी। एक यामिनी में भद्रा सेठानी अपने शयन कक्ष में शयन कर रही थी। अर्धरात्रि के समय अर्धनिद्रित अवस्था थी। उस समय उसने स्वप्न में शालि (धान, चावल) का हराभरा लहलहाता खेत देखा जिसकी परिपक्व बालियाँ मन को आकृष्ट कर रही थी। स्वप्न देखकर भद्रा सेठानी जागृत हुई। उसने, जहाँ गोभद्र सेठ का शयन कक्ष था, वहाँ जाकर श्रेष्ठीवर्य को मधुर-मधुर शब्दों से जागृत किया। नींद में से जागृत होकर गोभद्र सेठ बोला–प्रिये ! इस समय तुम? ....तुम?

भद्रा–हाँ देवानुप्रिय ! मैं आज एक खुशखबर बताने हेतु आई हूँ।

गोभद्र–अर्धरात्रि में खुशखबर...........?

भद्रा–हाँ, आज अभी मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है।

गोभद्र–अच्छा, बताओ क्या देखा?

भद्रा–परिपक्व शालि खेत।

गोभद्रा–तुम वीर प्रसवा सन्नारी का पद प्राप्त करोगी।

भद्रा सलज्ज सिर झुकाये खड़ी रहती है।

गोभद्र–जैसे शालि का खेत धान्य से परिपूर्ण था, वैसे ही वीर संतान के आने से हमारा घर धन-धान्य से परिपूर्ण बनेगा। तुम्हारा यह स्वप्न अतिश्रेष्ठ है।

भद्रा–आपके वचन यथार्थ हों स्वामिन् ! यों कहकर स्वयं के शयन कक्ष की ओर लौट जाती है। अवशिष्ट रजनी शुभ भावनाओं के साथ व्यतीत करती है।

निरन्तर दान, शील, तप और सुन्दर भावनाओं से स्वयं का परिपोषण करती हुई भद्रा सेठानी समय आने पर सुकोमल शिशु का प्रसव करती है और स्वप्नानुसार उसका नाम शालिभद्र रखती है। शालिभद्र गोभद्र श्रेष्ठी के यहाँ पाँच धायों से परिपालित होकर शनैः-शनै वृद्धिंगत होने लगा। आठ वर्ष की उम्र में कलाचार्य से शिक्षा प्राप्ति हेतु गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ। तरुणाई की देहली पर कदम रखते बहत्तर कलाओं में निष्णात बन गया। युवावय के सम्प्राप्त होने पर बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओं के साथ माता-पिता ने पाणिग्रहण किया। बत्तीस श्रेष्ठ प्रासादों में बत्तीस रमणियों के साथ वह भोग भोगने लगा।[29]

शालिभद्र की एक अनुजा थी–सुभद्रा। यथानाम तथागुण-सम्पन्न सुभद्रा थी। युवावय में प्रवेश कर रूप और लावण्य से आकर्षक व्यक्तित्व को धारण किये हुए थी। गोभद्र सेठ स्वयं अपनी दुहिता के लिए योग्य वर की तलाश कर रहे थे। वे अपने ही समान खानदानी परिवार में ही पुत्री को देने के लिए कटिबद्ध थे, लेकिन अभी तक उनके ध्यान में ऐसा सुयोग्य युवक नहीं आया।

एक दिन गोभद्र सेठ अपनी बैठक में बैठा हुआ था कि एक एकाक्षी ठग व्यापारी पाँच पुरुषों के साथ वहाँ उपस्थित हुआ। उसने गोभद्र सेठ को अभिवादन किया और बोला–श्रेष्ठीवर्य ! ये एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ लीजिये और मेरी आँख मुझे पुनः लौटा दीजिये।

गोभद्र–तुम्हारी आँख.......... कैसी आँख...........?

ठग–अरे ! एक महीने के अन्दर ही विस्मृत हो गये।

गोभद्र–क्या पहेली बुझा रहे हो?

ठग–पहेली नहीं, हकीकत है।

गोभद्र–हकीकत !

ठग–हाँ हकीकत ! अभी मैं कुछ दिन पहले राजगृह नगर आया था। तब माल खरीदने में धन की कमी पड़ गयी थी, तो मैंने एक आँख गिरवी रखकर एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ आपसे उधार ली थी। अब मैं एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ लाया हूँ जिन्हें ग्रहण कर आप मेरी आँख मुझे पुन लौटा दीजिये।

गोभद्र–ये तुम क्या अनर्गल प्रलाप कर रहे हो? मैं आँख गिरवी रखने की वार्ता आज प्रथम बार तुम्हारे मुख से श्रवण कर रहा हूँ।

ठग–श्रेष्ठीवर्य ! चिकनी-चुपड़ी बातें न करो। मेरी आँख मुझे लौटा दो।

गोभद्र–अरे ! क्यों असत्य भाषण कर रहे हो। चले जाओ यहाँ से। नहीं तो श्रेणिक राजा तुम्हें दण्डित करेंगे।

ठग–दण्डित.......। अहा ! क्या बात करते हो? चलो मैं स्वयं चलता हूँ श्रेणिक राजा के दरबार में।

गोभद्र–अरे ! क्यों मौत के मुँह में जाना चाहते हो?

ठग–श्रेष्ठीवर्य, मृत्यु ! उससे तो कायर पुरुष डरते हैं। मुझे तो न्याय चाहिए।

गोभद्र–न्याय........... न्याय........... यह कैसा न्याय? न्याय के बहाने तुम मुझे नहीं ठग सकते।

ठग–तुम ठगी की बात करते हो? अब तो मैं न्याय करवाके ही छोड़ूँगा।

यों कहकर ठग उन पाँच पुरुषों को लेकर राजा श्रेणिक के दरबार की ओर रवाना हो जाता है।

राजा श्रेणिक के पास पहुँचकर वे कहते हैं–राजन् ! आपके नगर में आपके रहते हमारे साथ अन्याय हो रहा है।

श्रेणिक–अन्याय........... कैसा अन्याय...........?

ठग–राजन् ! आपके यहाँ एक बार मैं माल खरीदने आया तब रुपयों की कमी होने से मैंने गोभद्र सेठ के यहाँ एक आँख गिरवी रखी और एक लाख रुपये लिये। अब मैं पुनः रुपये देकर मेरी आँख लेने हेतु आया हूँ और गोभद्र सेठ देने से इनकार क़र रहा है। राजन् ! आप न्याय करके मेरी आँख मुझे पुनः दिलवाइये।

ठग की बात सुनकर राजा समझ गया कि यह धूर्त व्यक्ति छलने आया है। अभी अभयकुमार नहीं तो यह अवसर का लाभ कमाने आया है। अतएव समस्या को पेचीदा जानकर राजा ने धन्ना की ओर देखा। तब धन्नाकुमार ने ठग से कहा—यदि तुमने आँख गिरवी रखी है तो मिल जायेगी। मैं गोभद्र सेठ के खाते आदि देख लूँगा। तुम कल आना, तुम्हारा फैसला हो जायेगा।

दूसरे दिन वह ठग पाँच गवाह लेकर राजदरबार में उपस्थित हुआ और धन्नाजी ने गोभद्र सेठ को भी बुलवा लिया। अनेक लोग फैसला सुनने को उत्सुक थे। तब धन्नाजी ने ठग से कहा—देखिये, गोभद्र सेठ के यहाँ पर बहुत लोगों ने आँखें गिरवी रख रखी हैं इसलिए आपकी आँख का पता ही नहीं चल पा रहा है कि कौनसी आँख है। अस्तु आप अपनी दूसरी आँख भी निकालकर दे दीजिए ताकि मिलान करके आपकी आँख छाँटकर आपको दे देंगे। फिर आप दोनों आँखें यथास्थान लगा लेना क्योंकि आपके तो आँख निकालने का और लगाने का व्यापार है।

अब ठग व्यापारी बगलें झाँकने लगा। धन्ना ने उसे बहुत धमकाया और दण्ड देना चाहा लेकिन वह धन्ना के चरणों में सदा-सर्वदा के लिए ठगाई छोड़कर समर्पित बन गया। तब धन्ना ने उसका अपराध माफ कर दिया।

धन्ना के फैसले को देखकर गोभद्र सेठ अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसने अपनी पुत्री सुभद्रा का विवाह अत्यन्त आग्रह सहित धन्ना के साथ धूम-धाम से सम्पन्न कर दिया।

पुत्र शालिभद्र एवं पुत्री सुभद्रा का विवाह करने के पश्चात् गोभद्र सेठ के मन में अपार ऋद्धि का परित्याग कर संयम लेने के भाव जागृत हुए।

वे चिंतन करते हैं, यह नश्वर शरीर और क्षणिक ऋद्धि तो अवश्यमेव परित्याग योग्य है अतएव मुझे इस दुर्लभ मानव-तन का लाभ उठाना चाहिए। इसमें तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने अपनी पत्नी भद्रा एवं पुत्र शालिभद्र को कहा—मैं इस घर का भार तुम्हें सुपुर्द करता हूँ।

शालिभद्र—घर का भार.......... मैं समझा नहीं।

गोभद्र—मैं गृहत्याग कर मुनि बनना चाहता हूँ।

शालिभद्र—मुनि.......... ! क्या यह समय मुनि बनने का है?

गोभद्र—मैंने संसार के समस्त सुख भोग लिए हैं। अब आत्मिक सुख ही मेरा लक्ष्य है। इस समय मुनि न बनूँगा तो कब बनूँगा? क्योंकि निर्मम काल का भरोसा नहीं।

शालिभद्र मूक बन जाता है। तब गोभद्र सेठ भद्रा सेठानी को घर का सारा

भार सम्हलाते हुए कहते हैं–देवानुप्रिय ! शालिभद्र सरीखे पुत्र का खयाल रखना और समय आने पर तुम भी परमात्मा की शरण को स्वीकार करना।

भद्रा भी त्याग मार्ग के आगे नतमस्तक थी। गोभद्र सेठ समस्त कुटुम्बीजनों एवं नगरवासियों सहित भगवान् महावीर की शरण में पहुँचे। सब उच्च स्वर में कहने लगे–गोभद्र सेठ धन्य है, गोभद्र सेठ धन्य है। इनका जीवन सफल है, सुफल है। देखते ही देखते गोभद्र सेठ ने वस्त्राभूषण परित्याग कर पंचमुष्टि लोच किया और भगवान् के सानिध्य में पहुँचकर संयम अंगीकार किया।[31]

वासवदत्ता का हरण :–

राजगृह की व्यवस्था धन्ना अपनी योग्यता से सुचारु रूप से चला रहे हैं और अभयकुमार कैदखाने में अभी उज्जयिनी हैं। राजा चण्डप्रद्योतन का अन्तःपुर अनेक महारानियों से अलंकृत है। उनके महल में रूप और लावण्य की सीमास्वरूप अनेक महारानियाँ थीं। उनमें एक महारानी थी–अंगारवती। अंगारवती शीलगुणों से सम्पन्न सद्व्रता नारी थी। उसने समय आने पर एक नवजात बाला का प्रसव किया जिसका नाम वासवदत्ता रखा गया। वासवदत्ता रत्नाकर में से लक्ष्मी की तरह निरन्तर पाँच धायों द्वारा पालित की जाने लगी। सर्वलक्षणसम्पन्न, विनय गुणों की साक्षात् मूर्ति वह वासवदत्ता अनेक कलाओं में निष्णात बन गयी पर एक गंधर्व कला सिखाने वाला उसको कोई नहीं मिला।

राजा वासवदत्ता की प्रतिभा पर मंत्र मुग्ध था इसलिए वह उसे हर संभव गंधर्व कला सिखाने के लिए प्रयासरत था लेकिन उसे कोई भी कला सिखाने वाला नहीं मिला। तब एक बार राजा प्रद्योतन ने अपने मंत्री से पूछा–वासवदत्ता को गन्धर्व वेद की शिक्षा दिलवाऊँ तो इसका गुरु कौन होगा?

तब मंत्री ने कहा–वत्सराज उदयन की गंधर्व कला अतिशय सम्पन्न है। वह अपने गंधर्व गीत से विशालकाय गजेन्द्रों को मंत्रमुग्ध कर बाँध लेता है। यहाँ तक कि खूंखार जंगली हाथियों को भी अपने गीतों की ध्वनियों से आकृष्ट कर बंधनयुक्त कर देता है।

राजा–वत्सराज उदयन........... लेकिन उसको यहाँ कैसे लायें...........? यद्यपि उम्र में वह छोटा है लेकिन वीरता........... उसकी सानी नहीं है।

मंत्री–उसको वश में करने का एक उपाय है।

राजा–बताओ।

मंत्री–आप काष्ठ का एक ऐसा हाथी बनवाओ जो देखने से असली हाथी लगे। उस हाथी के शरीर में एक ऐसा यंत्र प्रयोग करवाओ जिससे वह चल सके। उस काष्ठधारी हाथी के शरीर में एक यंत्र चालक पुरुष को बिठा दो जो हाथी को गति

करवा सके। वह हाथी वत्सराज के समीपवर्ती जंगल में ले जाया जाये। जब उदयन उसे वश में करके उसके ऊपर चढ़े तक वह उदयन को बाँधकर यहाँ ले आये।

राजा–ओह ! बहुत सुन्दर उपाय तुमने बता दिया। ऐसा ही करता हूँ।

राजा ने काष्ठ का हाथी बनाने का कलाकारों को आदेश दिया। कलाकारों ने सच्चे हाथी से भी गुणों में श्रेष्ठ हाथी को तैयार किया। वह ऐसा दंतघात, सूँड उत्क्षेप, गर्जनादि करता जिससे वह कृत्रिम हाथी लगता ही नहीं था। उस हाथी में एक पुरुष को बिठाकर उन जंगलों में भेज दिया जहाँ वत्सराज उदयन ने वनचरों को निर्देश दे रखा था। जैसे ही वह हाथी शून्य अरण्य में प्रविष्ट हुआ, वनचरों ने उसकी सूचना राजा उदयन को दी। उदयन उसे बाँधने के लिए वन में आया। उसने अपने परिवार को दूर रखकर धीरे-धीरे वन में प्रवेश किया और किन्नरों को भी पराभव कर दे ऐसी मधुर वाणी से उच्च स्वर में गाने लगा। तब वह हाथी अपने अंगों को स्तब्ध करने लगा जिससे उदयन ने सोचा कि हाथी गंधर्व गीत से मुग्ध बन गया है। उदयन उस समय हाथी पर बैठा तब चण्डप्रद्योतन के सैनिकों ने उसे पकड़कर बाँध दिया और अवंति (उज्जयिनी) लाकर प्रद्योतन के सुपुर्द कर दिया।

प्रद्योतन ने वत्सराज उदयन से कहा–मेरी एकाक्षी दुहिता है, तुम उसे गंधर्व कला सिखाओ और मेरे घर पर सुखपूर्वक रहो, अन्यथा मैं तुम्हें बंधन में बाँध दूँगा।

उदयन (अवसर को जानकर)–ऐसा ही करूँगा।

प्रद्योतन–तुम उसको यदि देखने का प्रयास करोगे तो वह एकाक्षी होने से लजा जायेगी।

उदयन–नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगा।

प्रद्योतन (अपनी पुत्री वासवदत्ता के पास जाकर)–बेटी, तुम्हें गंधर्व विद्या सिखाने वाले गुरु आये हैं, लेकिन तू उनकी तरफ मत देखना क्योंकि वे कुष्ठी हैं।

वासवदत्ता–पिताश्री ! आपके आदेश का पालन करूँगी।

राजा प्रद्योतन ने एक परदा लगवा दिया। परदे के एक तरफ उदयन और दूसरी तरफ वासवदत्ता को बिठाया। वह अब गंधर्व कला सीखने लगी। बहुत अच्छे तरीके से सीखने-सिखाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। दोनों परदे की आड़ में अपने कार्य में व्यस्त थे। किन्तु मन अत्यन्त चंचल स्वभाव वाला है। उसमें न जाने कब वासना का अंकुर किस रूप में पैदा हो जाये और वह किस स्थिति में ले जाकर डाल दे ! इस वासना ने ही चरम शरीरी-रथनेमि के मन में ऊहापोह मचा दिया। अपनी भाभी राजीमति के रूप और लावण्य को देखकर योगी

भी भोगी बन गये। मन की उत्ताल तरंगें ठहर न पायीं और वह सती-साध्वी के समक्ष भी काम की भीख माँगने लगा। काम अंधा होता है। काम बहरा होता है। काम गूंगा होता है। काम अविवेक बुद्धि को पैदा कर देता है और राजसी वैभव में भी आदमी को भिखमंगा बना देता है। विजातीय का आकर्षण जबरदस्त होता है। भगवान् ने इस आकर्षण को समाप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य की नवबाड़ निरूपित कर दी और श्रमण-श्रमणी को उसकी अनुपालना के निर्देश दिये।

वासवदत्ता का मन लालायित है, नैत्र चंचल हैं वीणावादक उदयन का रूप देखने के लिए, लेकिन परदे के उस पार देखे कैसे? वह चिंतन कर रही है, क्या परदा हटा लूँ? ....इससे तो मेरी धृष्टता लगेगी........... तब क्या करूँ, कैसे देखूँ........... या मेरा अभीष्ट अनिर्दिष्ट रहने दूँ........... इन्हीं विचारों में शून्य मन वाली बन गयी और उदयन ने जो सिखाने का प्रयास किया वह सीख न पाई। तब झुंझलाकर उदयन बोला—अरे ! नेत्रहीना ! तू अमनस्क होकर गंधर्व कला को नहीं सीखने से गंधर्व कला का विनाश कर रही है।

वासवदत्ता (तुनक कर)—अरे कुष्ठी ! क्या तू नहीं देख रहा है कि मैं नैत्रहीन नहीं हूँ।

तब वत्सराज ने चिंतन किया कि ऐसा लगता है कि चण्डप्रद्योतन ने मुझे गुमराह किया है। यह लड़की एकाक्षी नहीं है। परदा हटा देना चाहिए। यकायक परदा हटने पर उदयन ने देखा, अरे ! सर्वांगसुन्दरी, मृगनयनी, चन्द्रवदना, अधर किसलय रागरूपा कृशांगी यौवन की देहली पर अत्यन्त रमणीय लग रही है।

वासवदत्ता ने देखा, रूप और सौन्दर्य में कामदेव को भी परास्त करने वाला, सर्वांगसुन्दर यह युवक अतिकमनीय लग रहा है। अतः वह क्षमायाचना करती है कि मैंने मेरे पिता के कहने से तुमको कुष्ठी कहा, अतः तुम क्षमा करना।

उदयन—मैंने भी तुम्हारे पिता के कहने से एकाक्षी कहा, तुम भी क्षमा करना।

वासवदत्ता—तुम कौन?

उदयन—मैं कौशाम्बी नरेश उदयन।

वासवदत्ता—उदयन ! उदयन ! तुम-सा और कोई मुझे कहाँ मिलेगा?

उदयन—धैर्य धारण करो। अभी कला तो सीख लो। यों कहकर कला सिखाने का कार्य प्रारम्भ करता है।

अब दोनों कला सिखाने-सीखने का कार्य कर रहे हैं, परन्तु वासवदत्ता का मन उदयन पर समासक्त है। वह उदयन के समक्ष पुनः-पुनः प्रणय निवेदन प्रस्तुत

करती है। तब एक दिन उदयन उसकी प्रणयवार्ता पर अनुग्रह करते कहता है–देवी! अभी तो यहीं रहना योग्य है, अवसर आने पर मैं तुम्हारा हरण करूँगा।

वासवदत्ता का मन आश्वस्त बन गया और वह मन की लालसाओं से उदयन के करीब होती चली गयी। उसकी विश्वासपात्र दासी कंचनमाला उनके इन सम्बन्धों को जानती थी, लेकिन वह उनको गोपनीय रखने में अत्यन्त सामर्थ्यवान थी।

सुखद समय निरन्तर व्यतीत हो रहा था। एक दिन उज्जयिनी के रत्न अनलगिरी हाथी के कपोलों से मद झरने लगा। वह उसमें इतना मदोन्मत्त बन गया कि उसने बंधन तोड़कर महावतों को गिरा दिया। वह तीव्रगति से बेतहाशा इधर-उधर दौड़ता हुआ नगरजनों को अतीव क्षुब्ध करने लगा। पूरे नगर में हाथी के कारण कुहराम मच गया। प्रद्योतन चिन्ताग्रस्त हो अभयकुमार के पास गया और बोला–अभयकुमार ! अनलगिरी हाथी बड़ा कुहराम मचा रहा है। पूरा नगर उसके आतंक से त्रस्त है, उसको वश में कैसे करूँ?

अभयकुमार–राजन् ! उदयन और वासवदत्ता हाथी पर बैठकर वीणावादन करेंगे, तो वह शीघ्र ही वश में हो जायेगा।

प्रद्योतन उदयन को आदेश देता है कि तुम वासवदत्ता के साथ हस्ती पर बैठकर वीणावादन से अनलगिरी को वश में करो।

उदयन और वासवदत्ता हाथी पर आरूढ़ होकर वीणावादन करते हैं जिससे लुब्ध बना वह हस्ती स्तब्ध बनकर शांत-प्रशांत बन जाता है। राजा अभयकुमार से कहता है–तुमने मेरे आपत्ति के मेघों को अपनी पैनी प्रज्ञा की मरीचियों से छिन्न-भिन्न कर दिया, अतः कैद रियायत के अतिरिक्त अन्य कोई वरदान माँगो। तब अभयकुमार कहता है, आप इसे धरोहर के रूप में सुरक्षित रखें।

प्रद्योतन शांत-प्रशांत बना राज्य संचालन में लग जाता है। एक दिन राजा प्रद्योतन नगर में उत्सव होने से अन्तःपुर-परिवार सहित महर्द्धिक नगर-जनों के साथ उद्यान में गया। वह वहाँ महोत्सव में आनन्द की डुबकियाँ लगाने लगा।

इधर राजा उदयन का मंत्री यौगन्धरायण उदयन की कैद मुक्ति का उपाय सोचने लगा और उसी उधेड़बुन में वह वेश बदलकर उज्जयिनी आ पहुँचा। प्रातःकाल उषा की किरण ने जैसे ही जमीन पर लालिमा बिखेरी उसने अपने बुद्धि वैभव से जान लिया कि आज मेरे राजा उदयन की कैद-मुक्ति हो जायेगी। अतएव वह जहाँ चण्डप्रद्योतन था, वहाँ आया और अपने भीतरी उद्वेग को वाहर निकालता हुआ बोला–"मृगनयनी स्त्री को मेरे राजा के लिए हरण करके न ले जाऊँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।" जैसे ही अजनबी व्यक्ति से यह सुना, चण्डप्रद्योतन ने तीक्ष्ण कटाक्ष से भौंहें तिरछी करके उसको देखा। तव यौगन्धरायण ने समझ लिया कि राजा कुपित हो गया है अतएव अपनी सुरक्षा के लिए उसने

वस्त्रादि खोलकर प्रेत चेष्टा आकृति बनाकर ऐसी चेष्टा की मानों वह पिशाच हो, तब राजा ने उसे पिशाचग्रसित जानकर अपना कोप शांत कर लिया।

चण्डप्रद्योतन उद्यान में चहुँ ओर सुरभित वातावरण देखकर चंचल चित्त वाला बन चुका था। उसने अब कामदेव रूपी उन्मत्त हस्ती को उत्तेजित करने के लिए गंधर्व गोष्ठी प्रारम्भ की और गंधर्व विद्या की नवीन कुशलता देखने हेतु राजा ने उदयन और वासवदत्ता को भी वहाँ आमंत्रित किया।

प्रद्योतन के आमंत्रण को प्राप्त कर वत्सराज उदयन ने वासवदत्ता से कहा—सुन्दरी ! आज वेगवती हथिनी के ऊपर बैठकर कौशाम्बी भाग जाने का समय आ गया है। वासवदत्ता अपने मनोवांछित शब्दों को श्रवण कर वेगवती हथिनी को श्रृंगारित करवा कर उसे बुलवाती है।

जब उस हथिनी को बाँधने लगते हैं तब वह हथिनी जोर से गर्जना करती है। उसी समय एक प्रज्ञाचक्षु ज्योतिषी वहाँ मौजूद था। हथिनी की गर्जना श्रवण कर वह कहता है कि यह हथिनी बाँधने से गर्जना कर रही है। अतः यह सौ योजन जाने के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी।

उदयन और वासवदत्ता को सौ योजनं ही जाना था। वे इस बात से आश्वस्त हो गये कि हथिनी सौ योजन तक चलेगी ही चलेगी। तब उदयन की आज्ञा से बसन्त महावत ने हथिनी के दोनों तरफ उसी के मूत्र के चार घड़े बाँध दिये और वत्सराज उदयन, घोषवती, वासवदत्ता, कंचनमाला धाय एवं बसन्त महावत—ये पाँचों जने वेगवती हथिनी पर आरूढ़ होकर, सभी को बोलकर जाने लगे कि हम वासवदत्ता का हरण करके ले जा रहे हैं क्योंकि वीर क्षत्रिय अपने भुजबल पर विश्वास रखते हैं। वे गुप्तरीति से भागकर नहीं जाते।

जैसे ही प्रद्योतन के कानों तक यह खबर पहुँची वह हाथ मलने लगा और उसने अनलगिरी हाथी को तुरन्त तैयार करवाकर उस पर महायोद्धा को बिठाकर उदयन के पीछे रवाना किया। इधर उदयन को पता था कि अनलगिरी हाथी आने वाला है, वह पहले से ही सतर्क था कि 25 योजन पार करने पर अनलगिरी हाथी, वेगवती हथिनी के नजदीक आ गया। उदयन ने अनलगिरी को देखा और हथिनी के मूत्र का एक घड़ा उसने पृथ्वी पर डाल दिया। अनलगिरी हाथी उसे सूंघने लगा। कई देर तक मशक्कत करने पर भी वह हाथी वहाँ से आगे नहीं गया। बड़ी मुश्किल से खूब देर के पश्चात् महावत ने उस हाथी को हाँका, फिर वेगवती हथिनी 25 योजन चली और अनलगिरी पास में आया तो उदयन ने एक घड़ा फिर फोड़ा, जिससे वह हाथी फिर उस मूत्र को सूंघता हुआ वहीं खड़ा रहा। इस प्रकार पच्चीस-पच्चीस योजन पर एक-एक घड़ा फोड़ कर अनलगिरी हाथी की गति को रोककर सौ योजन चलकर कौशाम्बी नगरी में

प्रवेश किया। वेगवती हथिनी ने वहाँ प्रवेश करने के पश्चात् प्राणों का उत्सर्ग किया। अनलगिरी से युद्ध करने के लिए कौशाम्बी की सेना आई जितने में महावत और वह महायोद्धा अनलगिरी हाथी को लेकर पुनः लौट गये।[xxxiv]

प्रद्योतन वासवदत्ता के लौटने का इंतजार कर रहा था लेकिन वह अनलगिरी हाथी को वासवदत्ता से रहित लौटते देखता है। वह यमराज जैसा अत्यन्त कोपायमान होकर युद्धभेरी बजवा देता है। तब कुलमंत्री राजा के पास आकर निवेदन करता है–राजन् ! अब युद्ध करने में क्या सार है? तुम्हें अपनी कन्या को किसी योग्य वर को ही देना था, तब वत्सराज से अधिक योग्य तुम्हें कौन मिल पायेगा? तिस पर भी तुम्हारी स्वयं की दुहिता ने वत्सराज का वरण किया है। अतएव युद्ध की बजाय वत्सराज को जमाता मान लेना उचित है। प्रद्योतन का आवेश यह सुनकर शांत हो गया और उसने उदयन को जँवाई मानकर बहुत भेंट भिजवाई।

अभय का राजगृह गमन :

एक बार उज्जयिनी में भयंकर महामारी फैलने लगी। उसकी शांति के लिए चिन्तित बने प्रद्योतन ने अभयकुमार से महामारी शांति हेतु उपाय पूछा, तब अभयकुमार ने बतलाया कि तुम अपने अन्तःपुर में जाओ और विभूषित हुई जो महारानी तुम्हारी दृष्टि जीत ले, उसका नाम मुझे बतलाओ। अभयकुमार के कहने पर चण्डप्रद्योतन ने वैसा ही किया, वहाँ जाने पर शिवादेवी ने उसकी दृष्टि को जीत लिया। तब प्रद्योतन ने आकर अभयकुमार को शिवादेवी का नाम बतलाया।

अभयकुमार ने कहा–महारानी शिवादेवी अपने हाथ के क्रूर (धान्य के बाकले) का बलिदान कर भूतों की पूजा करे। वे भूत सियाल के रूप में सामने आयें अथवा आकर बैठें।[xxxv] उनके मुख में शिवादेवी अपने हाथ से क्रूर बलि देवे तो महामारी तुरन्त शांत हो जायेगी।

तब प्रद्योतन ने महारानी शिवादेवी से वैसा ही करवाया और महामारी शांत हो गयी। तब प्रद्योतन ने अभयकुमार से कहा–वरदान माँगो। अभयकुमार ने वरदान माँगा–"राजन् ! तुम अनलगिरी हाथी पर महावत बनकर बैठो और मैं शिवादेवी की गोद में पीछे बैठूँ। तत्पश्चात् अग्निभीरु रथ को तोड़कर उसके लकड़ी की चिता बनाओ और आप और हम सब उसमें प्रवेश करें।

तब यह वरदान पूर्ण करने में प्रद्योतन सफल नहीं हुआ और उसने अभयकुमार को मुक्त करके राजगृह की तरफ विदा किया। विदा होते समय अभयकुमार ने प्रतिज्ञा की कि तुमने तो छल से पकड़कर मुझे बुलाया है, लेकिन मैं दिन-दहाड़े 'प्रद्योतन का हरण कर रहा हूँ'–ऐसा बोलता हुआ तुम्हारा हरण करूँगा। ऐसा कहकर अभयकुमार राजगृह नगर आया और बुद्धि से कितना ही समय व्यतीत किया।

एक दिन अभयकुमार वणिक् का वेश बनाकर गणिका की दो रूपवती पुत्रियों को लेकर उज्जयिनी आया और राजमार्ग पर एक घर किराये लेकर रहने लगा। एक दिन प्रद्योतन उस मार्ग से गुजरा। उसने विलासपूर्वक उन दो गणिका-पुत्रियों को देखा और उनके रूप पर मुग्ध हो गया। दूसरे ही दिन प्रद्योतन ने एक दूती उन दो रमणियों के पास भेजी। उस दूती ने उन दोनों रमणियों को प्रद्योतन के महल में चलने का अत्यन्त आग्रह किया, लेकिन दोनों गणिका-पुत्रियों ने उस दूती का तिरस्कार करके वहाँ से विदा कर दिया। दूती ने सारी बात प्रद्योतन से क़ह डाली। दूसरे दिन भी दूती को प्रद्योतन ने भेजा तो गणिका-पुत्रियों ने उनका कुछ कम तिरस्कार करके विदा कर दिया। तीसरे दिन भी दूती गयी और उसने खेदपूर्वक उन गणिका-पुत्रियों से मंगनी की तब उन्होंने कहा कि यह सदाचारी भ्राता हमारी रक्षा करता है। यह सातवें दिन यहाँ से बाहर जायेगा उस समय तुम्हारा राजा गुप्त रीति से यहाँ आये तो मिलन हो सकता है। दूती ने यह बात राजा से कही तो राजा प्रतिक्षण सातवें दिन का इंतजार करने लगा।

इधर अभयकुमार ने राजा जैसे रूप-लावण्य वाले एक मनुष्य को पागल बनाते हुए उसका नाम प्रद्योतन रख दिया और उसे अपना भाई बता दिया। वह उसका इलाज करवाने के लिए प्रतिदिन मचान पर बाँधकर वैद्य के घर ले जाता। रास्ते में वह व्यक्ति आँखों में आँसू बहाते हुए रोज चिल्लाता—मैं प्रद्योतन हूँ, मेरा यह हरण कर रहा है। लोग अभयकुमार से पूछते कि तुम इसे कहाँ ले जा रहे हो? तो वह बतला देता कि यह मेरा भाई पागल हो गया है, उसका इलाज करवाने वैद्य के ले जा रहा हूँ।

यों करते छः दिन व्यतीत हो गये। सातवें दिन प्रद्योतन गुप्त रीति से वहाँ मिलने के लिए आया और उस कामान्ध को अभयकुमार ने बाँध दिया और मचान पर बाँधकर वैद्य के घर ले जाने के बहाने से हरण करने लगा। तब दिन-दहाड़े हरण होने से वह प्रद्योतन चिल्ला रहा था कि मैं प्रद्योतन हूँ, मेरा हरण हो रहा है, परन्तु जनता ने पागल समझकर उस पर ध्यान नहीं दिया और अभयकुमार ने उसका हरण कर एक कोश पर जो रथ तैयार थे उसमें बिठाकर राजगृह पहुँचा दिया।

तब राजा श्रेणिक, जो प्रद्योतन से बड़े क्षुब्ध थे, तलवार खींचकर उसका वध करने लगे। इतने में अभयकुमार ने श्रेणिक से कहा कि बंधन में बँधे हुए का वध नहीं करना चाहिए। इस प्रकार समझा-बुझाकर शांत कर दिया और वस्त्राभरण से सुसज्जित कर ससम्मान प्रद्योतन को विदा किया।

इधर अभयकुमार के आने से राजगृह का भाग्य सितारा अपनी बुलन्दी पर हो गया। वहाँ खुशी की लहर-सी व्याप्त हो गयी।

अनुत्तरज्ञान चर्या का तृतीय वर्ष

टिप्पणी

I वैशाली

मुजफ्फरपुर जिला में जहाँ आज बेसाढ़पट्टी गाँव है, वहीं पहले महावीर के समय की विदेह देश की राजधानी वैशाली नगरी थी। वैशाली और वाणिज्यग्राम की निश्रा में भगवान् महावीर ने कुल बारह वर्ष चातुर्मास्य व्यतीत किये थे। वैशाली जैन धर्म के प्रमुख केन्द्रों में से एक थी। यहाँ का राजकुटुम्ब तथा नागरिकगण भी अधिकांश जैन थे। यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थकारों ने इस नगरी को "पाखंडियों का अड्डा" कहा है। नक्शे के अनुसार वैशाली चम्पा से वायव्य दिशा में साढ़े बारह मील और राजगृह से लगभग उत्तर में सत्तर मील की दूरी पर थी।

II वत्स

कोशल के दक्षिण और आधुनिक इलाहाबाद के पश्चिम तरफ का प्रदेश पूर्वकाल में वत्स देश कहलाता था। इसकी राजधानी कौशाम्बी जमुना नदी के उत्तर तट पर अवस्थित थी। यहाँ का राजा शतानीक और उसका पुत्र उदयन महावीर का भक्त था।

III उत्तरकोसल

फैजावाद, गौंडा, बहराइच, बाराबंकी के जिले तथा आसपास का कुछ भाग, अवध, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़ और जौनपुर जिलों का कुछ भाग उत्तर कोसल अथवा कोसल जनपद कहलाता है। महावीर के समय में इसकी राजधानी श्रावस्ती थी।

IV स्वर्णमुद्रा

सोनैया-सोलह मासा स्वर्णमान का होता था।

डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, प्रसिद्ध ऐतिहासिक जैन पुरूष और महिलाएँ, पृ. 22

V स्वर्णमुद्रा

उस समय हिरण्यनाम की मुद्रा प्रचलित होगी यह शुद्ध सोने की थी। इसका तौल 32 रत्ती होता था। उत्तरकाल में शको ने इसे ही दीनार रूप में प्रचलित किया।

उपासकदशांग, आचार्य श्री आत्माराजी म.सा.

VI गोकुल

दस हजार गायें रहती थी, उस स्थान को गोकुल कहते है।

VII मेढीभूत

मेढ़ी उस काष्ठदण्ड को कहते हैं, जो खलिहान के बीच गाड़ दिया जाता है और गेहूँ आदि धान्य निकालने के लिए बैल जिसके चारों ओर घूमते हैं।

आनन्द को मेढ़ी बताया गया है, वह समस्त कार्यों के लिए केन्द्रभूत था, उसी को मध्य में रखकर अनेक लौकिक अनुष्ठान किये जाते थे।

उपासकदशांग, आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा., पृ. 11

VIII लक्षण व्यंजन

लक्षण–सौभाग्य सूचक हाथ की रेखाएँ आदि।

व्यंजन – उत्कर्ष सूचक तिलक मिस आदि चिह्न।

IX अनुरागशील

यहाँ शिवानन्दा की योग्यता बतलाने के लिए सूत्रकार ने शब्द दिया है "अनुरक्ता" उसकी व्याख्या करते हुए कहा है–

"घर कम्म बावडा जा, सत्व सिणेहप्पवडढणी दक्खा।
छाया विव भत्तणुगा, अणुरत्ता सा समकखाया।"

जो स्त्री धर के काम–काज मे रहती है, सबका स्नेह बढाने वाली तथा चतुर होती है एवं छाया की तरह पति की अनुगामिनी होती है, उसे शास्त्रों में अनुरक्ता कहा गया है।

X अनुकूल

शिवनन्दा का दूसरा विशेषण दिया गया है, 'अविरक्ता'। इसकी व्याख्या करते हुए कहा है

पडिऊले विय भत्तरि, किंचिवि रूट्ठण जा टवइ।
जाउ मिउ भासिणी य, णिच्चं सा अविरत्तत्तिणिदिट्ठा।।

पति के प्रतिकूल होने पर भी जो स्त्री तनिक रोष नहीं करती, सदा मधुर वाणी बोलती है, अविरक्ता कही गयी है।

XI अर्धमागधी

अर्धमागधी की विशेषता बतलाते हुए कहा है :–

हृदय में विस्तृत होती हुई, कंठ में अवस्थित होती हुई तथा मूर्धा में परिव्याप्त होती हुई, सुविभक्त अक्षरों को लिए हुए पृथक–पृथक स्व–स्व स्थानीय उच्चारण युक्त अक्षरों सहित अस्पष्ट उच्चारण वर्जित हकलाहट रहित, वर्णो की व्यवस्थित श्रृंखला लिए हुए पूर्णता एवं स्वर माधुरी युक्त श्रोताओं की सभी भाषा में परिणत होने वाली वाणी द्वारा एक योजन तक पहुँचने वाले स्वर में अर्धमागधी भाषा में धर्म का आख्यान किया।

उपासकदशांग, युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म.सा.

XII परिषद्

परिषद् की परिभाषा करते हुए टीकाकारों ने कहा है – परिसर्वतोभावेन सीदन्ति – उपविशन्ति – गच्छन्ति वा जनाः यस्यां सा परिषत् अर्थात जिस स्थान पर लोग विचार, विनिमय करने के लिए जाते हैं, उसका नाम परिषद् है।

यह तीन प्रकार की होती है :–

1. **ज्ञा परिषद्** :– निपुण बुद्धि सम्पन्न, विचारशील, गुणदोष को जानने वाली दीर्घदर्शी एवं उचित अनुचित का विवेक करने वाली ज्ञा परिषद् होती है।
2. **अज्ञा परिषद्** :– अज्ञानी किन्तु विनयशील तथा शिक्षा मानने में तत्पर जिज्ञासुओं की सभा, अज्ञा परिषद् होती है।
3. **दुर्विदग्धा परिषद्** :– मिथ्या अहंकार से युक्त, तत्त्वबोध से रहित एवं दुराग्रही व्यक्तियों की सभा दुर्विदग्धा परिषद् कही जाती है।

XIII स्वर्णमुद्रा (कार्षापण)

कार्षापण प्राचीन भारत में प्रयुक्त एक सिक्का था। वह सोना–चाँदी व तांबा इन अलग–अलग तीन प्रकार का होता था। प्रयुक्त धातु के अनुसार वह स्वर्णकार्षापण, रजतकार्पाषण, ताम्रकार्षापण कहा जाता था। स्वर्ण कार्षापण का वजन 16 मासे, रजत कार्षापण का वजन 16 पण (तोल–विशेष) और ताम्र, कार्षापण का वजन 80 रत्ती होता था।

संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी–सर मोनियर विलियम्स, पृ. 176

XIV हल

हल उस समय का पारिभाषिक शब्द है। 40,000 वर्ग हस्त भूमि का एक निवर्तन होता है तथा 100 निवर्तन का एक हल। निवर्तन का अर्थ है, हल चलाते हुए बैलों का मुड़ना।

डॉ. जगदीशचन्द्र जैन ने "लाइफ इन एशेंट इण्डिया" पुस्तक में (पृष्ठ 90 पर) एक हल एक एकड़ के बराबर बतलाया है।

अभयदेवसूरि ने भी दो सौ हाथ लम्बी और दो सौ हाथ चौड़ी अर्थात् 200X200=40,000 वर्ग हस्त भूमि को एक निवर्तन बीघा कहा हैं तथा 100 निवर्तन एक हल होता है। लीलावती गणित शास्त्र में बतलाया है कि दस हाथ एक बांस और बीस बांस का एक निवर्तन होता है।

सर मोनियर विलियम्स ने संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी पृ. 560 पर भी 40,000 वर्ग हस्त का एक निवर्तन माना है।

XV उपभोग परिभोग

बार–बार सेवन किया जाये वह उपभोग–भवन, वस्त्र, वनिता आदि। परिभोग एक बार सेवन किया जाये वह परिभोग – आहार, कुसुम, विलेपनादि।

उपासकदशांग, अभयदेवसूरि, पत्रांक – 16

XVI उल्लणिया

उल्लणिया शब्द "द्रू" या "लू" धातु से बना है। "द्रू" का अर्थ है गीला

करना। उत् उपसर्ग लगने से अर्थ हो जाता है गीलेपन को हटाना। "लू" घातु का अर्थ हटाना या छीनना। इसी से लूपण, लूषक आदि शब्द बनते हैं। इस विषय में वृत्तिकार कहते हैं :– उल्लणियत्ति स्नान जलार्द्रशरीरस्य जललूषणवस्त्रम् अर्थात् स्नान के पश्चात् गीले शरीर को पोछने वाला तौलिया।

उपासकदशांग, अभयदेवसूरि, पत्रांक–16

XVII फलविधि

दूधिया आँवला जिसमें गुठली नहीं पड़ी हो। प्राचीन समय में इसका उपयोग सिर एवं आँखे धोने के लिए किया जाता था–

अभयदेववृत्ति, पत्रांक 16–17

XVIII शतपाक

1. जिस तैल को सौ वस्तुओं के साथ सौ बार पकाया जाये अथवा जिसका मूल्य 100 कार्षापण हो, उसे शतपाक कहते हैं।

IXX सहस्रपाक

1. जिस तैल को हजार वस्तुओं के साथ हजार बार पकाया जाये या जिसका मूल्य हजार कार्षापण हो उसे सहस्रपाक कहते हैं।

अभयदेववृत्ति, पत्रांक 17

XX घी

आनन्द श्रावक ने मात्र शरद ऋतु में गोघृत रखा शेष सबका परित्याग कर दिया। उसका मूल कारण स्वास्थ्य का दृष्टिकोण है। आयुर्वेद के अनुसार शरद ऋतु की किरणों से अमृत–जीवन रस टपकता है, जिससे वनस्पतियों में, घासादि में विशेष रस का संचार होता है। इस समय घासादि को चरने वाली घायों का घी गुणात्मक होता है।

ताजा घी पाचन में भारी होता है जबकि एक वर्ष पुराना घी गुणात्मक होता है। वह अखाद्य नहीं होता है। भावप्रकाश घृत वर्ग 15 में उल्लेख मिलता है कि एक वर्ष पुराना घी वात, पित, कफनाशक होता है। वह मूर्च्छा, कुष्ट, विष–विकार, उन्माद, अपस्मार तथा आँखों के सामने अंधेरी आना आदि दोषों का नाशक होता है। चरक संहिता में पुराना घी औषधि रूप में भी प्रयुक्त होता है, ऐसा लिखा है।

XXI 26 बोल

उपासकदशांग सूत्र में 21 बोल की मर्यादा का वर्णन है। वाहणविहि, उवाहणविहि, सयणविहि, सचित्तविहि और दव्वविहि ये पाँच बोल धर्मसंग्रह में श्रावक के 14 नियमों में है। श्रावक प्रतिक्रमण के सातवें व्रत में 26 बोलों की मर्यादा की परिपाटी है इसलिए 5 बोलों का विवेचन इस प्रकार जानना चाहिये:–

1. **वाहणविहि** – जिन पर चढ़कर भ्रमण या प्रवास किया जाता है,

ऐसी सवारियों की मर्यादा करना।

2. **उवाहणविहि** – पैर की रक्षा के लिए पहने जाने वाले जूते, मोजे आदि की मर्यादा करना।
3. **सयणविहि** – सोने और बैठने के काम में आने वाले शय्या, पलंग आदि पदार्थों की मर्यादा करना।
4. **सचित्तविहि** – सचित्त पदार्थों की मर्यादा करना।
5. **दव्वविहि** – खाने–पीने आदि के काम में आने वाले सचित्त या अचित्त पदार्थों की मर्यादा करना।

जो वस्तु स्वाद की भिन्नता के लिए अलग–अलग खाई जाती है अथवा एक ही वस्तु स्वाद की भिन्नता के लिए दूसरी वस्तु के संयोग के साथ खाई जाती है उसकी गणना भिन्न–भिन्न द्रव्यों में होती है।

धर्मसंग्रह अधिकार 2, प्र. 8, श्लोक 34 की टीका–उद्धृत जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, भाग 6, पृ. 227

XXII अनर्थदण्ड

अनर्थदण्ड की व्याख्या करते हुए अभयदेव सूरि ने कहा है कि धर्म, अर्थ और काम किसी भी प्रयोजन के बिना जो दण्ड अर्थात् हिंसा की जाती है उसे अनर्थ दण्ड कहते हैं। श्रावक को ऐसा अनर्थदण्ड नहीं करना चाहिये, जिसमें उसका कोई भी लाभ नहीं और व्यर्थ में ही दूसरों को हानि पहुँचे। यथा–

1. **अपध्यानाचरित** :– आर्त्तध्यान और रौद्र ध्यान का चिंतन करना अपध्यानाचरित है।
2. **प्रमादाचरित** :– प्रमादवश पाप रूप विकथा करना एवं तेल, घी, दूध, दही को ढकने में प्रमाद करना।
3. **हिंस्रप्रदान** :– हिंसाकारी शस्त्र चाकू, छुरी, मूसल आदि शस्त्र दूसरों को देना।
4. **पापकर्मोपदेश** :– अग्नि जलाओ, मारो इत्यादि पाप कर्म का उपदेश देना।

XXIII अतिचार

कोई शंका करता है कि अतिचार सर्वविरति के लिए है और देशविरति के लिये तो भंग ही हैं। कहा है कि "सर्वेऽपि चातिचारा संज्वलनानामुदयतो भवन्ति। मूलच्छेद्य पुनर्भवति द्वादशानां कषायाणाम् अर्थात् सब अतिचार संज्वलन कषाय के उदय से लगते है और प्रत्याख्यानादि बारह प्रकार के कषायों के उदय से तो मूलव्रत का भंग हो जाता है। इसका समाधान करते हैं कि उक्त गाथा सर्वविरति के अतिचार और भंग बतलाने के लिये है परन्तु देशविरति आदि के अतिचार और

भंग बतलाने के लिये नहीं है ऐसा इस गाथा की वृत्ति में कहा है–संज्वलन कषाय के उदय से सर्वविरति को अतिचार लगते है किन्तु व्रतभंग नहीं होता और प्रत्याख्यानावरण आदि कषायों के उदय में पश्चानुपूर्वी के क्रम से सर्वविरति आदि के व्रत का भंग होता है। इस प्रकार व्याख्या होने से देशविरति के व्रत का भंग नहीं होता है परन्तु अतिचार होते हैं। जैसे चतुर्थ संज्वलन कषाय के उदय में यथाख्यात चारित्र का भंग होता है परन्तु दूसरे चारित्र और सम्यक्त्व का भंग नहीं होता, परन्तु अतिचार होते हैं। जैसे–चतुर्थ संज्वलन कषाय के उदय में यथाख्यात चारित्र का भंग होता है परन्तु दूसरे चारित्र और सम्यक्त्व का भंग नहीं होता। किन्तु अतिचार होते हैं या निरतिचार भी हो सकता है। तीसरा प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से सर्वविरति के सरागचारित्र का भंग होता है परन्तु देशविरति के देशविरति और सम्यक्त्व का भंग न होकर ये दोनों सातिचार या निरतिचार होते हैं। दूसरा अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से देशविरति का भंग होता है परन्तु सम्यक्त्व भंग न होकर वह सातिचार या निरतिचार होता है। प्रथम अनन्तानुबंधीकषाय के उदय से सम्यक्त्व का भंग होता है इस प्रकार पूर्वानुक्रम से कषायों के उदय से व्रत का भंग और पश्चानुक्रम से सातिचार या निरतिचार होते हैं। यहाँ कोई शंका करता है कि सम्यक्त्वादि के एक–एक देश से भंग होने से अतिचारों का जपरूप प्रायश्चित कहा और सब कषायों के उदय से मूलव्रत का भंग कहा यह क्यों? अनन्तानुबंधी आदि बारह कषाय सर्वघाती है और संज्वलन कषाय देशघाती है इसलिये सर्वघाती के उदय से मूलव्रत का भंग और देशघाती के उदय से अतिचार कहा। यह कहना सत्य है परन्तु अनन्तानुबंधी आदि बारह कषाय सर्वघाती है यह सर्वविरति की अपेक्षा से है ऐसे शतक चूर्णिकार ने व्याख्या की है लेकिन सम्यक्त्व आदि की अपेक्षा से नहीं की है। कहा है कि "भगवत्प्रणीतं पंचमहाव्रतमयं अष्टादशशीलाङ्गसहस्त्र कालितं चारित्रं घातयन्तीति सर्वघातिनः" सर्वघाति कषाय श्रमण भगवान् से कहा हुआ पञ्चमहाव्रतरूप और अठारह हजार शीलांगयुक्त चारित्र का नाश करता है किन्तु यहाँ पर पहले कही हुई "यादयो यति भेदो" इत्यादि गाथा के सामर्थ्य से अतिचार और भंग ये देशविरति और सम्यक्त्व के लिए है, ऐसा समझना चाहिए।

शंका–व्रत में उपेक्षा करता हुआ व्रती क्रोधित होकर प्राणी को ताड़ना, तर्जनादि करे तो उसको अतिचार लगता है या नहीं? क्योंकि उसने व्रत तो जीव को जान से नहीं मारने का लिया है और ताड़न तर्जन आदि से प्राणी मरता नहीं है, तो अतिचार कैसे लग सकता है?

उसका समाधान करते है कि जीव प्राण से मुक्त न होने पर भी व्रती जब क्रोध युक्त होकर दया से रहित हो जाता है तब व्रत का एक देश भंग होता है, इसलिए अतिचार लगता है क्योंकि व्रत का एक देश भंग होना ही अतिचार है।

ऐसे सब व्रतों में इसी प्रकार से सुज्ञजन समझ लेवें।

उपासकदशांक, अभयदेव टीका, पृ. 27

XXIV "क्षेत्रवास्तु प्रमाणातिक्रम"

धान्योत्पत्ति की जमीन को क्षेत्र (खेत) कहते है। वह दो प्रकार का होता है :– सेतु और केतु

अरघट्टादि जल से जो खेत सींचा जाता है, वह सेतु क्षेत्र है। वर्षा का पानी गिरने पर जिसमें धान्य पैदा होता है, वह केतु क्षेत्र कहलाता है। घर आदि को वास्तु कहते हैं। भूमिगृह (भोंयरा) प्रासाद और भूमि के ऊपर बना हुआ घर या प्रासाद वास्तु है।

हरिभद्रीय आवश्यक, पत्रांक 826, धर्मसंग्रह, अधिकार 2, पृ.105 से 07

XXV दासों के नाम

निशीथ चूर्णि (11.3676) में गर्भदास, क्रीतदास अऋण (ऋण न दे सकने के कारण) दास, दुर्भिक्षदास, सापराध–दास और रूद्धदास (कैदी) के उल्लेख मिलते हैं।

XXVI दिग्व्रत–दिशाव्रत

यद्यपि व्रत ग्रहण के प्रसंग से दिग्व्रत एवं शिक्षाव्रतों के ग्रहण का उल्लेख नहीं है तथापि आनन्द श्रावक ने पूर्व में कहा था कि मैं बारह प्रकार के श्रावक व्रत ग्रहण करना चाहता हूँ और बाद में भी वर्णन मिलता है कि उसने बारह प्रकार के श्रावक व्रतों को ग्रहण किया। इसलिए उल्लेख न होने पर भी उनका ग्रहण समझना चाहिये।

सामायिक आदि शिक्षाव्रत एवं दिग्व्रत स्वल्पकालीन होने से प्रतिनियत समय में ही करने के है इसलिए व्रत लेते समय स्वीकृत नहीं किये, किन्तु बाद में अवश्य स्वीकार किया होगा।

उपासकदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 38

XXVII स्फोटनकर्म

धीरजलाल टोकर शी. शाह ने भी खेती को सर्वोत्तम व्यवसाय माना है, उसने खेती को व्यापार का आधार भी माना है।

महावीर के दस श्रावक, धीरजलाल टोकर शी. शाह

कृषि स्फोटन कर्म नहीं है क्योंकि खेती में भूमि कुरेदी जाती है, फोड़ी नहीं। कृष् धातु कुरेदने अर्थक विख्यात है। आनन्द आदि श्रावक स्वयं खेती करते। वह पन्द्रह कर्मादान का सर्वथा त्यागी था। अतएव शास्त्रीय प्रमाण से खेती कर्मादान नहीं है।

विशेष विवरण के लिए देखिये, जिणधम्मो, अहिंसा विवेक।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी कृषि को कर्मादान नहीं माना है उन्होंने अपने योग

शास्त्र में स्फोटन कर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि

सरः कूपादि खनन–शिला कुट्टन कर्मभिः।
पृथित्यारम्भ संभूते जीवनं स्फोट जीविका।

अर्थात् तालाब, कुएँ आदि खोदना, शिला कुट्टन आदि से पृथ्वीकाय का आरम्भ समारम्भ करना स्फोटन कर्म है।

XXVIII पौषध

पौषध के निमित्त दोष – (1) सरस आहार करना (2) अब्रह्म सेवन करना, (3) केश नख काटना, (4) वस्त्र धुलाना, (5) शरीर मण्डन करना, (6) सरलता से न खुलने वाले आभूषण पहनना।

पौषध ग्रहण करने के पश्चात् लगने वाले दोष :–

1. पौषध के पूर्व दिन ठूंस–ठूंस खाना। 2. पौषध में प्रवेश करने से पूर्व नख–केश आदि की सजाई करना। 3. पौषध के पूर्व दिन मैथून सेवन करना। 4. पौषध के विचार से वस्त्रादि धोना–धुलवाना। 5. पौषध करने के लिए शरीर की स्नानादि विभूषा करना। 6. पौषध की निमित आभूषण पहनना। 7. अविरती मनुष्य से अपनी सेवा करवाना। 8. शरीर का मैल उतारना। 9. बिना पूंजे खाज खुजलाना। 10. दिन में और प्रहर रात गये के पूर्व नींद लेना तथा रात्रि के पिछले प्रहर उठकर धर्म–जागरण नहीं करना। 11. बिना पूंजे परठना। 12. निंदा विकथा करना, हंसी–ठट्ठा करना–कराना। 13. सांसारिक विषयों की चर्चा करना। 14. स्वयं डरना या दूसरों को डराना। 15. क्लेश करना। 16. अयतना से बोलना। 17. स्त्री के अंगों–पांग निरखना, मोहक दृश्य देखना, मोहक राग सुनना, सुगन्ध सूंघना आदि। 18. सांसारिक सम्बन्ध से किसी को पुकारना। इन 18 दोषों से रहित पौषध करना चाहिये।

XXIX संलेखणा

संलेखणा आत्मघात नहीं है, क्योंकि आत्मघात क्रोधादि कषायों के उदय से होता है जबकि संलेखणा स्वेच्छापूर्वक किया गया समाधिमरण है। आत्मघात तो पुष्ट शारीरिक स्थिति में भी होता है जबकि संलेखणा शरीर के, जब टिकने की स्थिति नहीं लगती, तब होती है।

XXX दानयोग्य 14 वस्तुएँ

1.	अशन	–	खाये जाने वाले पदार्थ रोटी आदि।
2.	पान	–	पीने योग्य पदार्थ जल आदि।
3.	खादिम	–	मिष्टान्न, मेवादि सुस्वादु पदार्थ।
4.	स्वादिम	–	मुख की स्वच्छता के लिए लौंग, सुपारी आदि।

5.	वस्त्र	–	पहनने योग्य वस्त्र।
6.	पात्र	–	काष्ठ, मिट्टी, तुम्बे के बने पात्र।
7.	कम्बल	–	ऊनी वस्त्र।
8.	पादप्रोञ्छन	–	पैर पूंजने का वस्त्र, रजोहरण।
9.	पीठ	–	बैठने योग्य चौकी।
10.	फलक	–	सोने योग्य पाटा।
11.	शय्या	–	ठहरने के लिए मकान आदि।
12.	संस्तारक	–	बिछाने के लिए घासादि।
13.	औषध	–	एक वस्तु से बनी औषधि।
14.	भेषज	–	अनेक चीजों के मिश्रण से बनी औषधि।

इनमें से प्रथम आठ पदार्थ दान दाता एक बार लेने के बाद नहीं लौटाते शेष छः पदार्थ साधु उपयोग में लेकर पुनः लौटा भी देते हैं।

आवश्यकसूत्र

XXXI यान

शकट, रथ, यान (गाड़ी), जुग्ग (गोल देश में प्रसिद्ध दो हाथ प्रमाण चौकोर वेदी से युक्त पालकी जिसे दो आदमी ढोकर ले जाते हैं।) गिल्ली (हाथी के ऊपर की अंबारी जिसमें बैठने से आदमी दिखाई नहीं देता, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार डोली) थिल्ली (प्लाट देश में घोड़े की जीन को थिल्ली कहते हैं। कहीं दो खच्चरों की गाड़ी को थिल्ली कहते है) शिबिका (शिखर के आकार की ढ़की हुई पालकी) स्यन्दमानी (पुरुष प्रमाण लम्बी पालकी) आदि तात्कालीन यान है।

XXXII अभय का हरण

अभय कुमार का हरण कब हुआ, भगवान् के केवलज्ञान के पश्चात् किस वर्ष में हुआ, इसका उल्लेख नहीं मिलता। यद्यपि त्रिषष्टिशलाकाकार ने अभय कुमार के हरण का उल्लेख किया है लेकिन वहां काल का कोई उल्लेख नहीं तथापि त्रिषष्टिशलाकाकार ने जो वर्णन किया है उससे इतना स्पष्ट है कि जिस समय उदयन का हरण हुआ उस समय अभय कुमार का हरण हो चुका था।

वत्सराज उदयन का हरण कब हुआ इसके लिए हम महाकवि भास के नाटक प्रतिज्ञा–यौगन्ध रायणम का आश्रय ले सकते हैं। महाकवि भास के नाटक प्रतिज्ञा–योगन्धरायणम में उदयन के हरण का वही वृत्तान्त मिलता है जो त्रिषष्टिशलाकाकार पुरूषकार ने लिखा है। इस नाटक में भी ऐसा उल्लेख मिलता है कि नकली हाथी बना कर चण्डप्रद्योत ने वत्सराज उदयन का हरण करवाया था। यहां पर उदयन को सहस्रनीक का पौत्र, शतानीक का पुत्र और कौशाम्बी का राजा, गन्धर्व कला का विशारद, वत्सराज बतलाया है। उदयन के हरण के पश्चात राजमाता का विलाप इस बात को द्योतिक

करता है कि उस समय शतानीक की मृत्यु हो चुकी थी। सम्पूर्ण नाटक में शतानीक का कोई कार्य–कलाप सम्बन्धी उल्लेख नहीं है तथा उदयन को कौशाम्बी का राजा भी बतलाया है। इससे ध्वनित है कि शतानीक की मृत्यु के पश्चात् ही उदयन का हरण हुआ है। यहां भी अंगारवती की पुत्री वासवदत्ता बतलाई है तथा योगन्धरायण का वत्सराज के प्रति प्रेम यहां भी दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार शतानीक की मृत्यु के पश्चात् ही उदयन के हरण का समय मान सकते हैं। इतिहासज्ञ इस विषय में और खोज कर अनुगृहीत कर सकते हैं। तत्वं तु केवलिगम्यम्

XXXIII दृष्टिविष

जैन कथाएँ भाग 38 में उपाध्याय पुष्करमुनिजी ने लिखा है कि जब लड्डु के विषय में अभय कुमार से पूछा तब अभय कुमार ने लड्डुओं को सूंघा और सूंघकर बतलाया कि लड्डु में तो विष मिला हुआ है इनको आप पानी में मिलाकर देखो पता चल जायेगा उसी समय उन लड्डुओं को पानी में डाला तो पानी नीला हो गया। इस प्रकार अभय कुमार ने लोहजंघ के प्राण बचायें।

जैन कथाएँ–38, पृ. 96

XXXIV उदयन

प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में उदयन के लिए लिखा है कि वह सप्ततंत्री वीणा बजाने वाला था। उसकी घोषवती वीणा को सुनकर मत्त हाथी भी वश में हो जाते थे, कौशाम्बी उसकी राजधानी थी। मंत्री–श्रेष्ठ यौगन्धरायण अपनी पैनी प्रज्ञा के लिए प्रसिद्ध था।

इनके अनुसार भी नकली हाथी बनवाकर प्रद्योतन ने उदयन का हरण किया तथा अंगारवती से उत्पन्न वासवदत्ता को शिक्षा के लिए उदयन के पास भेजा, अनलगिरि हाथी को उदयन ने वश में किया। भद्रवती हथिनी पर बैठकर वासवदत्ता को ले भागा। यौगन्धरायण की वीरता का भी परिचय मिलता है।

ई.पू. चतुर्थ शताब्दी महाकवि–भास, विष्णुप्रभाकर (सम्पा.)

सस्ता साहित्य मंडल, प्रकाशन सन् 1961

इसमें शतानीक का वर्णन नहीं है। ऐसा लगता है कि उस समय शतानीक की मृत्यु हो चुकी थी।

XXXV शिवादेवी

जैन कथामाला भाग 38 पृ. 98–99 पर लिखा है कि जब अग्नि बुझाने के लिए प्रधोतन ने अभय कुमार से पूछा तब अभय कुमार ने बतलाया कि शिवा देवी यदि भीषण अग्नि पर जल के छींटे मारे तो अग्नि तुरन्त बुझ जायेगी। शिवा देवी ने वैसा ही किया अग्नि बुझ गयी।

अनुत्तरज्ञानचर्या का चतुर्थ वर्ष

अनुरागी मन बना वैरागी

गौतम पृच्छा :

भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम का वर्षावास सम्पन्न कर वहाँ के दूतिपलाश चैत्य से विहार कर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मगध देश पधार गये। वहाँ के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म-ध्यान, त्याग-तप की उज्ज्वल ज्योति प्रज्वलित कर प्रभु राजगृह[1] के गुणशील चैत्य में पधार गये। भगवान् का आगमन जानकर परिषद् धर्मोपदेश श्रवण करने हेतु आई और वीतराग प्रभु की अमृत देशना श्रवण कर पुनः लौट गयी।

तब भगवान् के प्रधान अन्तेवासी इन्द्रभूति गौतम के मन में जिज्ञासा प्रादुर्भूत हुई। वे समाधान हेतु प्रभु चरणों में समुपस्थित हुए, उन्होंने भगवान् के चरणों में वन्दन-नमस्कार करके पृच्छा की –

भगवन् ! शाली (कमल आदि जातिसम्पन्न चावल), ब्रीहि (सामान्य चावल), गोधूम (गेहूँ), यव (जौ) तथा यवयव (विशिष्ट प्रकार का जौ) इत्यादि अन्न-धान्य के कोठे में, बाँस के पल्ले (छबड़े) में, मंच (मचान) पर, माल (बर्तन) में डालकर रखे हों, गोबर से उनके मुख उल्लिप्त (विशेष प्रकार से लीपे हुए) हों, लिप्त हों, ढंके हुए हों, मुद्रित (छंदित) किये हुए हों, लांछित (सील लगाकर चिह्नित) किये हुए हों तो उन धान्यों की योनि (उत्पत्ति की शक्ति) कितने काल तक सचित्त रहती है?

भगवान्–हे गौतम ! उनकी योनि कम से कम अन्तर्मुहूर्त अधिक से अधिक तीन वर्ष तक सचित्त रहती है। उसके पश्चात् उन धान्यों की योनि म्लान, विध्वंसित, अचित्त, अबीज हो जाती है। इतने समय पश्चात् उस योनि का विच्छेद हो जाता है, उसमें उगने की शक्ति नहीं रहती।

गौतम–भगवन् ! कलाय, मसूर, तिल, मूँग, उड़द, बालोर, कुलथ, आलिसन्दक (एक प्रकार का चवला)[2], तुअर, पलिमंथम (गोल चना)[3] इत्यादि धान्यों की योनि कोठे इत्यादि में रखी हो तो कितने काल तक सचित्त रहती है?

भगवान्–गौतम ! कम से कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पाँच वर्ष तक सचित्त रहती है, उसके पश्चात् अचित्त, अबीज हो जाती है।[4]

गौतम–भगवन् ! अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, काँगणी, वरट, राल, सण, सरसों, मूलक बीज (एक जाति के शाक के बीज) आदि धान्यों की योनि कोठे इत्यादि में रखी हुई कितने काल तक सचित्त रहती है?

भगवान्–गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट सात वर्ष तक सचित्त रहती

है, उसके पश्चात् अचित्त, अबीज हो जाती है।

धान्य की योनि की सचित्तता और अचित्तता विषयक जिज्ञासा का समाधान प्राप्त कर गौतम गणधर के मन में काल सम्बन्धी जिज्ञासा प्रादुर्भूत हुई तब उन्होंने भगवान् से काल सम्बन्धी प्रश्न करते हुए पृच्छा कि –

भगवन् ! एक मुहूर्त के कितने उच्छ्वास कहे गये हैं?

भगवान्–असंख्यात समयों की एक आवलिका होती है। संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास और संख्यात उच्छ्वास का एक निःश्वास होता है। वृद्धावस्था रहित हृष्ट-पुष्ट प्राणी का एक उच्छ्वास और एक निःश्वास, इन दोनों को मिलाकर एक प्राण होता है। सात प्राणों का एक स्तोक, सात स्तोक का एक लव, 77 लवों का एक मुहूर्त होता है अर्थात् 3773 श्वासोच्छ्वास का एक मुहूर्त होता है।

तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है।
पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है।
दो पक्ष का एक मास होता है।
दो मास की एक ऋतु होती है।
तीन ऋतु का एक अयन होता है।
दो अयन का एक संवत्सर होता है।
पाँच संवत्सर का एक युग होता है।
बीस युग का एक सौ वर्ष होता है।
दस सौ वर्ष का एक हजार वर्ष होता है।
सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष होता है।
चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है।
चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है।
चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटितांग होता है।
चौरासी लाख त्रुटितांग का एक त्रुटित होता है।
चौरासी लाख त्रुटित का एक अउडांग होता है।
चौरासी लाख अउडांग का एक अउड होता है।
चौरासी लाख अउड का एक अववांग होता है।
चौरासी लाख अववांग का एक अवव होता है।
चौरासी लाख अवव का एक हूहूकांग होता है।
चौरासी लाख हूहूकांग का एक हूहूक होता है।
चौरासी लाख हूहूक का एक उत्पलांग होता है।

चौरासी लाख उत्पलांग का एक उत्पल होता है।

चौरासी लाख उत्पल का एक नलिनांग होता है।

चौरासी लाख नलिमांग का एक नलिन होता है।

चौरासी लाख नलिम का एक अछनिकुरांग होता है।

चौरासी लाख अछनिकुरांग का एक अछनिकुर होता है।

चौरासी लाख अच्छनिकुर का एक अयुतांग होता है।

चौरासी लाख अयुतांग का एक अयुत होता है।

चौरासी लाख अयुत का एक प्रयुतांग होता है।

चौरासी लाख प्रयुतांग का एक प्रयुत होता है।

चौरासी लाख प्रयुत का एक नयुतांग होता है।

चौरासी लाख नयुतांग का एक नयुत होता है।

चौरासी लाख नयुत का एक चूलिकांग होता है।

चौरासी लाख चूलिकांग का एक चूलिक होता है।

चौरासी लाख चूलिका का एक शीर्षप्रहेलिकांग होता है।

चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकांग की एक शीर्षप्रहेलिक होता है।

गौतम ! इतना गणित का विषय है। इसके आगे का औपमिककाल है।

गौतम–भगवन् ! औपमिककाल[ii] किसे कहते हैं?

भगवान्–औपमिक काल दो तरह का होता है, यथा–पल्योपम और सागरोपम।

गौतम–भंते ! पल्योपम और सागरोपम का क्या स्वरूप है?

भगवान्–गौतम ! सुतीक्ष्ण शस्त्र से भी जिसका छेदन-भेदन न किया जा सके, ऐसे परमाणु को केवली भगवान् समस्त प्रमाणों का आदिभूत प्रमाण कहते हैं।

अनन्त परमाणुओं का समुदाय एक उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होता है।

आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है।

आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका की एक ऊर्ध्वरेणु होती है।

आठ ऊर्ध्वरेणु की एक त्रसरेणु होती है।

आठ त्रसरेणु की एक रथरेणु होती है।

आठ रथरेणु का एक बालाग्र होती है।

आठ बालाग्र[iii] की एक लिक्षा होता है।

आठ लिक्षा की एक यूका होती है।

आठ यूका का एक यवमध्य होता है।

आठ यवमध्य की एक अंगुल होती है।

छह अंगुल का एक पाद होता है।

बारह अंगुल की एक बितस्ति (बेंत) होती है।

चौबीस अंगुल की एक रत्नि (हाथ) होती है।

अड़तालीस अंगुल की एक कुक्षि होती है।

छियानवें अंगुल का एक दण्ड, धनुष, युग, नालिका, यक्ष अथवा मूसल होता है।

दो हजार धनुष का एक गाऊ (कोश) होता है।

चार गाऊ का एक योजन होता है।

इस प्रकार एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा एक पल्य (कुआँ) हो, उसमें एक दिन, दो दिन, यावत् सात रात्रि के उगे हुए युगलिकों के बालाग्र ऊपरी किनारे तक ठूँस-ठूँसकर भरे हों। इतने ठूंस कर भरे हों कि अग्नि, जल और वायु तक भी उनमें प्रविष्ट न हो सके। वे बालाग्र सड़ते नहीं, नष्ट नहीं होते, शीघ्र दुर्गन्धित नहीं होते हैं। ऐसे बालाग्र भरे उस पल्य में से सौ-सौ वर्ष में एक-एक बालाग्र निकाला जाये, जितने समय में वह पल्य खाली हो जाये वह पल्योपम है। दस करोड़ पल्योपम को दस करोड़ पल्योपम से गुणा करने पर एक पल्योपम होता है। अर्थात्

दस कोटाकोटि पल्योपम का एक सागरोपम होता है।

चार कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा-सुषमा नामक पहला आरक होता है।

तीन कोटाकोटि सागरोपम का एक सुषमा नामक दूसरा आरा होता है।

दो कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा-दुषमा नामक तीसरा आरा होता है।

बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का दुषमा-सुषमा नामक चौथा आरा होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दुषमा नामक पाँचवाँ आरा होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दुषमा-दुषमा नामक छठा आरा होता है।

इन छः आरों के समुदाय को अवसर्पिणी काल कहते हैं। उत्सर्पिणी काल-चक्र में आरों की व्यवस्था इस प्रकार होती है —

इक्कीस हजार वर्ष का दुषमा-दुषम नामक प्रथम आरक होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दुषम नामक द्वितीय आरक होता है।

बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का दुषम सुषम नामक तृतीय आरक होता है।

दो कोटाकोटि सागरोपम का सुषम-दुषम नामक चतुर्थ आरक होता है।

तीन कोटाकोटि सागरोपम का एक सुषम नामक पंचम आरक होता है।

चार कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा-सुषमा नामक छठा आरक होता है।

इस प्रकार दस कोटा-कोटि प्रमाण अवसर्पिणी तथा दस कोटाकोटि प्रमाण उत्सर्पिणी मिलकर बीस कोटाकोटि सागरोपम का एक कालचक्र[iv] होता है।[5]

भगवान् से समाधान प्राप्त कर गणधर गौतम का अन्तःकरण बाग-बाग हो गया। वे श्रद्धाभिषिक्त होकर प्रभु को वन्दन कर तप-संयम में लीन बन गये।

राजगृह निवासियों का यह परम सौभाग्य था कि दो प्रवासों के पश्चात् पुनः प्रभु का राजगृह में शुभागमन हो गया। अनेक भव्य प्राणी उनके सान्निध्य का लाभ उठाकर अपने जीवन को धर्ममार्ग पर सन्निहित कर रहे थे। इसी नगर में रहने वाले महान ऋद्धिसम्पन्न सेठ गोभद्र[v] ने अपने जीवन को पूर्व में प्रभु चरणों में समर्पित कर दिया था।

वह गोभद्र सेठ सौधर्म[6] देवलोक का ऋद्धिशाली देव बन गया।[7] देव-शय्या पर जन्म लेते ही देवियों ने पूछा—अहो स्वामिन् ! आपने पूर्वभव में क्या ऐसा कार्य किया जिसके कारण आपको यह दिव्य देवर्द्धि सम्प्राप्त हुई? तब गोभद्र देव ने अपने पूर्वभव को अवधिज्ञान से जाना और कहा—मैंने भगवान् महावीर की सन्निधि में तप-संयम का आराधन किया, इस कारण मुझे यह महान ऋद्धि समुपलब्ध हुई है। उसी समय गोभद्र देव ने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव के परिवार को भी देखा और सोचा—मेरा पुत्र शालिभद्र ! वास्तव में कितना भद्रिक परिणामी.............. उसको मुझे ऋद्धि-समृद्धि से परिपूर्ण करना चाहिए। तब गोभद्र देव के प्रताप से खेतों में बहुत वृद्धि हुई। शालिभद्र एवं उसकी पत्नियाँ जैसे ही स्नान करके निवृत्त होती उसी समय देव ने गहनों और कपड़ों से भरी तेतीस पेटियाँ प्रतिदिन शालिभद्र के यहाँ प्रेषित करना प्रारम्भ किया। एक पेटी पर शालिभद्र एवं भद्रा का एवं बत्तीस पेटी पर बत्तीस पुत्रवधुओं का नाम अंकित रहता था। प्रत्येक पेटी में नौ-नौ आभूषण निकलते थे। उनमें शालिभद्र के लिए अनमोल सेहरा आता था जिसमें चमचमाती मणियाँ सूर्य के प्रकाश को विजित करती थीं। ये सारे वस्त्राभूषण एक बार पहनने के पश्चात् उतार दिये जाते थे। यदि कोई लेने के लिए आता तो उसको दे देते, अन्यथा सेहरा भण्डार में डाल दिया जाता था और आभूषणादि गृह वापिका में डाल देते थे। ये सब सुपात्र दान का सुप्रभाव था।[8]

शालिभद्र अपने महलों में राजसी ठाठ भोग रहा था। उसको सांसारिक ऋद्धि में किसी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं थी। इसी समय राजगृह नगर में

रत्न-कम्बल लेकर परदेश से व्यापारी आये और राजगृह के बाजार में अपनी रत्न-कम्बल बेचने की कोशिश करने लगे। भरसक कोशिश करने पर भी बेशकीमती वे कम्बलें व्यापारी बाजार में विक्रय नहीं कर सके। अंत में एक दलाल उनको राजा श्रेणिक के समीप ले गया। राजा श्रेणिक एवं उनकी नन्दा, चेलना आदि महारानियों ने उन रत्न-कम्बलों को देखा। देखते ही वे उन्हें खरीदने को तत्पर हुए। राजा ने सोलह ही कम्बल खरीदने के भाव से व्यापारियों को कम्बल का मोल पूछा, लेकिन उनकी कीमत बहुत अधिक होने से राजा ने उनको नहीं खरीदा।

व्यापारी राजा द्वारा कम्बल नहीं खरीदे जाने पर औदासीन्य भाव धारण कर पनघट में एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। इधर शालिभद्र की दासियाँ पानी भरने के लिए पनघट पर आईं और उन्होंने व्यापारियों को उदास देखा तो पूछा—आप लोग किस कारण उदास होकर बैठे हैं?

व्यापारियों ने कहा—आज हम बड़ी आशा से राजगृह नगर आये थे, लेकिन हमारी आशा निराशा में परिणत हो गयी।

दासियों ने पूछा—क्या हुआ?

व्यापारी—हम लोग धनाढ्यों की नगरी राजगृह में सोलह रत्न-कम्बल बेचने के लिए आये हैं। इन रत्न-कम्बलों में अत्यधिक विशेषता है कि इन्हें शीत ऋतु में ओढ़ने पर सर्दी नहीं लगती। ग्रीष्म ऋतु में धारण करने पर गर्मी नहीं लगती। ये कम्बल यदि मैली हो जायें तो इन्हें अग्नि में डाला जा सकता है। अग्नि में डालने पर ये जलेंगी नहीं, अपितु परिष्कृत बन जायेंगी। इन कम्बलों को हमने जीवन-भर परिश्रम करके बनाया है, लेकिन राजा श्रेणिक द्वारा भी नहीं खरीदे जाने पर हम अत्यन्त क्षुब्ध बने हुए हैं।

दासियों ने कहा—चलो, हमारे साथ भद्रा सेठानी तुम्हारी कम्बलों को खरीद लेगी। व्यापारी—जब राजा श्रेणिक नहीं खरीद सका तो भद्रा.............. भद्रा.............. क्या खरीद लेगी?

दासियाँ—आप चलो तो सही, स्वयं ही जान जाओगे। व्यापारी दासियों के साथ भद्रा के घर की ओर रवाना हुए। वे भद्रा के महल की छटा को देखकर स्तब्ध रह गये। ऐसा दिव्य महल उन्होंने भूमण्डल पर कहीं देखा नहीं था। दासियों के साथ व्यापारियों ने प्रथम मंजिल में प्रवेश किया। वहाँ की साज-सज्जा देखकर व्यापारी अत्यन्त विस्मित हुए। तब दासियों ने बतलाया कि यह मंजिल हम लोगों के रहने की है। यह सुनकर व्यापारी चित्रलिखित-से रह गये।

जब दूसरी मंजिल में प्रवेश किया तो उसकी रमणीयता प्रथम मंजिल से

विशिष्ट थी। दासियों ने बतलाया कि यहाँ मुनीम-गुमाश्ते रहते हैं। अब तृतीय मंजिल पर पहुँचे, जहाँ भद्रा सेठानी थी। दासियों ने भद्रा सेठानी से कहा—ये व्यापारी रत्न-कम्बल लेकर आये हैं, इनकी रत्न-कम्बलें बहुमूल्य होने से मगधेश श्रेणिक नहीं खरीद सके अतएव ये बहुत निराश हो गये हैं। इन्हें हम यहाँ आपकी सेवा में लाये हैं ताकि इनकी निराशा आप द्वारा अपगत हो सके।

भद्रा ने उन व्यापारियों से पूछा—तुम्हारे एक कम्बल का मूल्य क्या है?

व्यापारी—सवा लाख स्वर्ण मुहरें।

भद्रा—तुम्हारे पास कम्बल कितनी हैं?

व्यापारी—सोलह।

भद्रा—तब बत्तीस बहुओं को कैसे दूँगी? अच्छा, ऐसा करो इनके दो-दो टुकड़े कर दो।

व्यापारियों ने एक-एक कम्बल के दो-दो टुकड़े कर दिये और भद्रा ने बीस लाख स्वर्ण मुहरें देकर कम्बल खरीद लिये। व्यापारी दाँतों तले अंगुली दबाते हुए चले गये।

भद्रा ने एक-एक कम्बल का टुकड़ा एक-एक बहू को ओढ़ने के लिए दे दिया। उन्होंने वह कम्बल ओढ़ा और देवदूष्य पहनने वाली उन बहुओं के शरीर में वह चुभन पैदा करने लगा।

उन्होंने स्नान किया और स्नान करके उन कम्बलों को एक तरफ डाल दिया, नये देवदूष्य वस्त्र धारण कर लिये। प्रातःकाल भंगिन को कम्बल दे दिये।

इधर दूसरे दिन वह भंगिन उस रत्न-कम्बल को ओढ़कर राजा के यहाँ पहुँची। चेलना महारानी ने प्रासाद के गवाक्ष में से मेहतरानी को रत्न- कम्बल ओढ़े देखा तो वह चिन्तन करने लगी—अरे ! यह वही रत्न-कम्बल हैं जो राजा कल नहीं खरीद पाये थे, लेकिन इसके पास कहाँ से आई? रानी चेलना ने भंगिन को बुलाकर पूछा कि ये कम्बल कहाँ से लाई।?

भंगिन ने कहा—शालिभद्र के यहाँ से मुझे बत्तीस कम्बल मिले हैं।

जैसे ही महारानी ने यह श्रवण किया, उसके चेहरे की हवाइयाँ उड़ने लगी। वह सोचने लगी कि मुझे एक कम्बल नहीं मिला और यह बत्तीस कम्बल की मालकिन बन गई। यही सोचकर उसका अन्तर्हृदय व्यथित हो गया और वह कोपभवन में चली गयी।

राजा श्रेणिक को महारानी के कुपित होने का वृतान्त ज्ञात हुआ तो वह महारानी के अन्तःपुर में पहुँचकर उसके कुपित होने का कारण पूछते हैं। तब

महारानी कहती है–राजन् आप एक कम्बल नहीं खरीद सके और आपकी मेहतरानी के पास बत्तीस कम्बल हैं, क्या यह उचित है?[9]

तब राजा ने महारानी से सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर उन व्यापारियों को पुनः बुलाया। रत्न-कम्बल खरीदने के लिए। लेकिन व्यापारियों ने कहा कि हमने तो सोलह कम्बल भद्रा सेठानी को बेच दी। अब एक भी हमारे पास अवशिष्ट नहीं है। तब राजा ने एक सेवक भद्रा सेठानी के पास एक कम्बल लेने के लिए भेजा। वह भद्रा के पास पहुँचकर जब कम्बल माँगने लगा तो भद्रा ने कहा–मेरी बहुओं ने कम्बल ओढ़ लिये तो उनके ओढ़े हुए कम्बल राजा को कैसे दूँ? वे ओढ़कर निर्माल्य (काम में आई हुई अपवित्र वस्तु) कम्बल निर्माल्य भण्डार में डाल दिये हैं क्योंकि मेरी बहुएँ प्रतिदिन नवीन देवदूष्य ओढ़ती हैं और दूसरे दिन उन्हें उतार देती हैं, पहनती नहीं। तब उनको राजा को कैसे दे सकती हूँ?

यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि भद्रा को कम्बल भंगिन को देने की जानकारी न होने से उसने निर्माल्य भंडार में डालने की बात कही है।[10]

हेमचन्द्राचार्य ने त्रिषष्टिश्लाकापुरुष में ऐसा उल्लेख किया है कि जब राजा श्रेणिक का सेवक भद्रा सेठानी के पास रत्न-कम्बल लेने हेतु पहुँचा तो भद्रा ने कहा कि रत्न-कम्बलों के तो शालिभद्र की स्त्रियों ने पादप्रोञ्छन बना दिये हैं। इसलिए यदि काम में ली हुई रत्न-कम्बलों की आवश्यकता हो तो राजा श्रेणिक से पूछकर आ जाओ। वह सेवक राजा के पास पहुँचा और उसने भद्रा द्वारा कही गयी सारी बात राजा से कह डाली।

तब नृपति श्रेणिक के मन में शालिभद्र को देखने की समीहा समुत्पन्न हुई और शालिभद्र को राजमहलों में आमंत्रित करने हेतु उसी सेवक को भेजा। सेवक भद्रा सेठानी के समीप पहुँचा और कहा कि आपके पुत्र को महाराजा याद कर रहे हैं।

तब भद्रा सेठानी राजा श्रेणिक के पास पहुँची और उसने भूपति से निवेदन किया–महाराज ! मेरा पुत्र कभी भी घर से बाहर नहीं निकलता, इसलिए कृपा करके आप उसे देखने हेतु मेरा घर-आँगन पवित्र करो।[11]

जवाहर किरणावली के अनुसार शालिभद्र को बुलाने स्वयं अभयकुमार गये, लेकिन शालिभद्र के स्थान पर भद्रा स्वयं उनके साथ महाराजा से मिलने आई।[12]

राजा को भद्रा का घर देखने की जिज्ञासा थी ही, भद्रा का निमंत्रण प्राप्त कर उसने स्वीकृति प्रदान कर दी। महाराजा के घर आने की स्वीकृति प्राप्त कर भद्रा अतीव प्रमुदित हुई। वह उन्हीं हर्ष-भावों से घर गयी और राजमहल से लेकर घर तक का मार्ग विचित्र मणि-रत्नों आदि से परिमण्डित करवाया।

राजा श्रेणिक अभयकुमार के साथ मार्ग की शोभा निरखता-निरखता भद्रा के महल के बाहर पहुँच गया।

स्वर्ण स्तम्भों पर बना वह महल देदीप्यमान देव-विमान ही लग रहा था। इन्द्र नीलमणि के तोरण द्वारों पर खचित स्वस्तिक बने मोतियों की श्रेणियाँ, स्थान-स्थान पर दिव्य वस्त्रों के चंदोवे और सुगन्धित पदार्थों की महक से वह सुगंध-गंध-वट्टिकावत् प्रतीत हो रहा था।

भद्रा सेठानी ने महल के बाहर आकर महाराजा का स्वागत सत्कार किया और आदर सहित महल में प्रवेश कराया। पहली मंजिल में प्रवेश किया तब भद्रा ने बतलाया कि यह मंजिल तो दासियों के निवास योग्य है, सुनकर राजा का आश्चर्य सीमा पार कर गया।

दूसरी मंजिल पर प्रवेश करते ही प्रकाश के चकाचौंध में राजा की आँखें आँखमिचौनी खेलने लगी। तब भद्रा ने बतलाया यह मंजिल मुनीम-गुमाश्तों के लिए है। तीसरी मंजिल में पहुँचे तो भद्रा सेठानी ने बतलाया–यहाँ मेरा निवास स्थान है। चतुर्थ मंजिल पर जाकर राजा को थकान-सी होने लगी तब भद्रा सेठानी ने वहीं सिंहासन पर नृपति श्रेणिक एवं अभयकुमार को बिठलाया और निवेदन किया कि शालिभद्र सातवीं मंजिल पर है, उसे मैं आपकी सेवा में उपस्थित करती हूँ। ऐसा कहकर स्वयं भद्रा सेठानी शालिभद्र के पास पहुँचती है और शालिभद्र से कहती है–बेटा ! आज घर पर महाराजा पधारे हैं, तुम जल्दी नीचे चलो।

शालिभद्र–माताजी, आप सब जानते ही हैं, जो मूल्य देना है वह आप ही दे दो।

भद्रा–अरे! वह कोई खरीदने की वस्तु नहीं है। वे तो इस राजगृह नगर के स्वामी और हमारे नाथ हैं। उनके दर्शन हेतु तुम्हें नीचे चलना होगा।

शालिभद्र (खेद करता हुआ)–ओह ! मेरे इस नश्वर सांसारिक वैभव को धिक्कार है। मेरे सिर पर भी कोई नाथ है.............. नाथ है.............. तो मैं क्या अनाथ हूँ..............?

भद्रा–बेटा ! जल्दी करो, राजा तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।

माता के कहने से शालिभद्र स्त्रियों सहित नीचे उतरा और उसने राजा श्रेणिक को प्रणाम किया।

शालिभद्र का अपार सौन्दर्य देखकर राजा श्रेणिक के नैत्र स्तम्भित रह गये। उसे अपनी भुजाओं में अतीव वात्सल्य से पकड़ लिया और गोद में बिठाकर सिर पर हाथ फिराने लगा।

तब शालिभद्र चिन्तन करता है कि यह अनाथ समझकर मेरे सिर पर हाथ फिरा रहा है............... मुझे अनाथ नहीं, स्वयं का नाथ बनना है। यह सोचकर उसका कोमल वदन कुम्हलाने लगा।

नवीन पुष्प के समान शालिभद्र के वदन को कुम्हलाया हुआ दृष्टिगत कर भद्रा ने कहा–राजन् ! आप इसे महल में जाने की अनुमति दीजिये क्योंकि यह मनुष्य होते हुए भी मनुष्य की गंध से घबराता है।[13] इसके पिता देव हैं, वे इसके लिए वस्त्रालंकार भेजते हैं। इसलिए यह इस मानव-गंध को सहन करने में समर्थ नहीं है।*

तब राजा ने अनुमति प्रदान की एवं शालिभद्र स्वयं के महल में लौट गया।

शालिभद्र के लौटने पर भद्रा ने राजा श्रेणिक एवं अभयकुमार को भोजन करने का विनम्र निवेदन किया। उसके भावभरे निमंत्रण को स्वीकार करके राजा और अभयकुमार तैयार हो गये।

भद्रा ने अपने सेवकों से राजा और महामात्य के शरीर पर सहस्रपाक एवं शतपाक तेल की मालिश करवाई और सुगंधित गंधोदक से स्नान करने के लिए निमंत्रण दिया।

स्नान करते हुए एक मुद्रिका गृह वापिका में गिर गयी। जब भद्रा को मालूम चला कि राजा की मुद्रिका गिर गयी तब भद्रा ने दासियों को आज्ञा प्रदान की कि तुम वापिका का जल दूसरी ओर निकाल दो। तब उन दिव्य आभरणों के मध्य राजा ने अपनी मुद्रिका देखी और राजा ने साश्चर्य दासियों से पूछा–वापिका में इतने आभरण किसने डाले? चेटिकाओं ने बतलाया कि यहाँ शालिभद्र और उसकी पत्नियाँ एक दिन पहले पहने हुए आभूषण फेंक देते हैं।[14]

राजा श्रवण कर सोचता है कि वस्तुतः शालिभद्र धन्य है और मेरा भी महान पुण्योदय है कि राजगृह नगर में ऐसे धनाढ्य लोग रहते हैं। तत्पश्चात् राजा और महामात्य अभयकुमार ने भोजन किया और विचित्र वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर अपने राजमहल में लौट गये।

राजा श्रेणिक अभयकुमार के साथ राजभवन में लौट गया और शालिभद्र अपने महलों में विरक्त बनकर चिंतन कर रहा है कि मुझे स्वयं का ही नाथ बनना है, ये भोग तो अशाश्वत हैं, इनका भोग भोगते हुए मुझे पराधीन ही रहना पड़ेगा, मुझे तो आत्मशक्तियों को जागृत कर अपने भीतरी आलोक में रमण करना है। शालिभद्र गम्भीर मुद्रा में बैठा है, इतने में उसे समाचार ज्ञात होते हैं

*जवाहर किरणावली अनुसार अभयकुमार ने कहा–इसे महल में जाने की अनुमति दीजिए।

राजा श्रेणिक अभयकुमार के साथ मार्ग की शोभा निरखता-निरखता भद्रा के महल के बाहर पहुँच गया।

स्वर्ण स्तम्भों पर बना वह महल देदीप्यमान देव-विमान ही लग रहा था। इन्द्र नीलमणि के तोरण द्वारों पर खचित स्वस्तिक बने मोतियों की श्रेणियाँ, स्थान-स्थान पर दिव्य वस्त्रों के चंदोवे और सुगन्धित पदार्थों की महक से वह सुगंध-गंध-वट्टिकावत् प्रतीत हो रहा था।

भद्रा सेठानी ने महल के बाहर आकर महाराजा का स्वागत सत्कार किया और आदर सहित महल में प्रवेश कराया। पहली मंजिल में प्रवेश किया तब भद्रा ने बतलाया कि यह मंजिल तो दासियों के निवास योग्य है, सुनकर राजा का आश्चर्य सीमा पार कर गया।

दूसरी मंजिल पर प्रवेश करते ही प्रकाश के चकाचौंध में राजा की आँखें आँखमिचौनी खेलने लगी। तब भद्रा ने बतलाया यह मंजिल मुनीम-गुमाश्तों के लिए है। तीसरी मंजिल में पहुँचे तो भद्रा सेठानी ने बतलाया–यहाँ मेरा निवास स्थान है। चतुर्थ मंजिल पर जाकर राजा को थकान-सी होने लगी तब भद्रा सेठानी ने वहीं सिंहासन पर नृपति श्रेणिक एवं अभयकुमार को बिठलाया और निवेदन किया कि शालिभद्र सातवीं मंजिल पर है, उसे मैं आपकी सेवा में उपस्थित करती हूँ। ऐसा कहकर स्वयं भद्रा सेठानी शालिभद्र के पास पहुँचती है और शालिभद्र से कहती है–बेटा ! आज घर पर महाराजा पधारे हैं, तुम जल्दी नीचे चलो।

शालिभद्र–माताजी, आप सब जानते ही हैं, जो मूल्य देना है वह आप ही दे दो।

भद्रा–अरे! वह कोई खरीदने की वस्तु नहीं है। वे तो इस राजगृह नगर के स्वामी और हमारे नाथ हैं। उनके दर्शन हेतु तुम्हें नीचे चलना होगा।

शालिभद्र (खेद करता हुआ)–ओह ! मेरे इस नश्वर सांसारिक वैभव को धिक्कार है। मेरे सिर पर भी कोई नाथ है.............. नाथ है.............. तो मैं क्या अनाथ हूँ..............?

भद्रा–बेटा ! जल्दी करो, राजा तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।

माता के कहने से शालिभद्र स्त्रियों सहित नीचे उतरा और उसने राजा श्रेणिक को प्रणाम किया।

शालिभद्र का अपार सौन्दर्य देखकर राजा श्रेणिक के नैत्र स्तम्भित रह गये। उसे अपनी भुजाओं में अतीव वात्सल्य से पकड़ लिया और गोद में बिठाकर सिर पर हाथ फिराने लगा।

तब शालिभद्र चिन्तन करता है कि यह अनाथ समझकर मेरे सिर पर हाथ फिरा रहा है.............. मुझे अनाथ नहीं, स्वयं का नाथ बनना है। यह सोचकर उसका कोमल वदन कुम्हलाने लगा।

नवीन पुष्प के समान शालिभद्र के वदन को कुम्हलाया हुआ दृष्टिगत कर भद्रा ने कहा–राजन् ! आप इसे महल में जाने की अनुमति दीजिये क्योंकि यह मनुष्य होते हुए भी मनुष्य की गंध से घबराता है।[13] इसके पिता देव हैं, वे इसके लिए वस्त्रालंकार भेजते हैं। इसलिए यह इस मानव-गंध को सहन करने में समर्थ नहीं है।*

तब राजा ने अनुमति प्रदान की एवं शालिभद्र स्वयं के महल में लौट गया।

शालिभद्र के लौटने पर भद्रा ने राजा श्रेणिक एवं अभयकुमार को भोजन करने का विनम्र निवेदन किया। उसके भावभरे निमंत्रण को स्वीकार करके राजा और अभयकुमार तैयार हो गये।

भद्रा ने अपने सेवकों से राजा और महामात्य के शरीर पर सहस्रपाक एवं शतपाक तेल की मालिश करवाई और सुगंधित गंधोदक से स्नान करने के लिए निमंत्रण दिया।

स्नान करते हुए एक मुद्रिका गृह वापिका में गिर गयी। जब भद्रा को मालूम चला कि राजा की मुद्रिका गिर गयी तब भद्रा ने दासियों को आज्ञा प्रदान की कि तुम वापिका का जल दूसरी ओर निकाल दो। तब उन दिव्य आभरणों के मध्य राजा ने अपनी मुद्रिका देखी और राजा ने साश्चर्य दासियों से पूछा–वापिका में इतने आभरण किसने डाले? चेटिकाओं ने बतलाया कि यहाँ शालिभद्र और उसकी पत्नियाँ एक दिन पहले पहने हुए आभूषण फेंक देते हैं।[14]

राजा श्रवण कर सोचता है कि वस्तुतः शालिभद्र धन्य है और मेरा भी महान पुण्योदय है कि राजगृह नगर में ऐसे धनाढ्य लोग रहते हैं। तत्पश्चात् राजा और महामात्य अभयकुमार ने भोजन किया और विचित्र वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर अपने राजमहल में लौट गये।

राजा श्रेणिक अभयकुमार के साथ राजभवन में लौट गया और शालिभद्र अपने महलों में विरक्त बनकर चिंतन कर रहा है कि मुझे स्वयं का ही नाथ बनना है, ये भोग तो अशाश्वत हैं, इनका भोग भोगते हुए मुझे पराधीन ही रहना पड़ेगा, मुझे तो आत्मशक्तियों को जागृत कर अपने भीतरी आलोक में रमण करना है। शालिभद्र गम्भीर मुद्रा में बैठा है, इतने में उसे समाचार ज्ञात होते हैं

*जवाहर किरणावली अनुसार अभयकुमार ने कहा–इसे महल में जाने की अनुमति दीजिए।

कि नगर के बाहर चार ज्ञान के धारक धर्मघोष आचार्य पधारे हैं। वह उनके दर्शन के लिए जाता है। आचार्य भगवन् की धर्मदेशना श्रवण करने के पश्चात् शालिभद्र ने आचार्यश्री से प्रश्न किया कि किस कारण से मैं स्वामी बन सकता हूं ? तब आचार्यश्री ने कहा कि तुम संयम ग्रहण कर लो तो सम्पूर्ण जगत् के स्वामी बन जाओगे। शालिभद्र ने आचार्यश्री की बात सुनकर निश्चय किया कि मुझे घर जाकर माता से दीक्षा की अनुमति ग्रहण करनी है।[15]

विरक्ति के विचारों में अवगाहन करता हुआ वह घर आया और माता से निवेदन किया–मातेश्वरी ! मैं आज आचार्य भगवन् के श्रीमुख से वीतराग वाणी श्रवणकर आया हूँ। वह मुझे अत्यन्त रुचिकर हुई है।

माता भद्रा–बेटा ! तेरा सौभाग्य है।

शालिभद्र–माता ! मैं अब दीक्षा लेकर स्वयं का नाथ बनना चाहता हूँ।

माता–अरे ! यह क्या? अरे यह क्या............. सुनते ही धड़ाम से धरतीतल पर गिर पड़ी।

पंखे आदि से हवा करके भद्रा की मूर्च्छा दूर की। मूर्च्छा दूर होने पर वह रुदन करने लगी और शालिभद्र की बत्तीस ही पत्नियाँ, वे भी रुदन करने लगीं। कहने लगीं–नाथ ! तुमने हमारे साथ पाणिग्रहण करके हमें अपना बनाया है। हम तुम्हारे भरोसे यहाँ आईं हैं। आप हमें छोड़कर क्यों जा रहे हैं? हम यहाँ किसके साये में रहेंगी? आपके बिना हमारा जीना दुभर हो जायेगा। हम क्या करेंगी............. ।

भद्रा विलाप करती हुई कहती है–बेटा ! तू मेरा इकलौता पुत्र है, तू चला जायेगा तो मेरा क्या होगा............? मेरा सहारा तो तू ही है।

शालिभद्र–मातेश्वरी ! आज तक धर्म के अतिरिक्त कोई भी साथ नहीं निभा पाया है। ये सारे सांसारिक रिश्ते-नाते तो नश्वर हैं, ये तो अवश्यमेव त्यागने योग्य हैं, मुझे तो अपना नाथ बनना है इसलिए मातेश्वरी मैं संयम ग्रहण करूँगा।

पत्नियाँ–स्वामिन् ! हमारा क्या होगा?

शालिभद्र–तुम भी हमारे पथ का अनुसरण करना और त्याग मार्ग पर चलना। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है। मैं इस पथ से विचलित होने वाला नहीं हूँ।

माता भद्रा ने देखा कि अब मेरा लाल यहाँ रहने वाला नहीं तो कहा–बेटा! अच्छा, ऐसा कर कि तू थोड़ा-थोड़ा त्याग कर; जिससे तुझे अभ्यास हो जायेगा, फिर संयम ग्रहण कर लेना।

तब शालिभद्र अपनी माँ के वचनों को स्वीकार कर प्रतिदिन एक-एक स्त्री और एक-एक शय्या का त्याग करने लगा।

इधर शालिभद्र एक-एक पत्नी का त्याग कर रहा है और उधर उसका बहनोई धन्ना; वह आठ पत्नियों के साथ भोग भोग रहा है। वह तीसरा विवाह शालिभद्र की बहन सुभद्रा से कर चुका था।[16]

चतुर्थ विवाह कौशाम्बी नरेश शतानीक की पुत्री चेटक की दोहित्री सौभाग्यमंजरी से किया क्योंकि जब धन्ना राजगृह का मंत्री पद सम्हाल रहा था तभी उसके भाई और माता-पिता घूमते-घूमते वहाँ पहुँच गये। वहाँ भी भाइयों की ईर्ष्या के कारण वह गृह त्याग कर कौशाम्बी पहुँच गया। चिंतामणि के प्रभाव से वहाँ भी उसने अपना महल बना लिया और वहाँ रहने लगा। उस समय कौशाम्बी नरेश शतानीक के पास 'सहस्त्रकिरण' नामक अमूल्य रत्न था। पीढ़ियों से नरेश उसकी पूजा करता था लेकिन उसका मूल्य, गुणधर्म पता नहीं था। उसकी जानकारी के लिए राजा ने अनेक पारखी जौहरियों को बुलाया, लेकिन वे उस रत्न का मूल्यांकन नहीं कर सके। तब शतानीक ने घोषणा की कि जो कोई रत्न-पारखी इस रत्न की परीक्षा में उत्तीर्ण होगा उसे मैं पाँच सौ गाँव, पाँच-पाँच सौ हाथी, घोड़े और रथ दूँगा। साथ ही अपनी पुत्री सौभाग्यमंजरी भी।

धन्ना ने जब यह घोषणा सुनी तो वह राजदरबार में पहुँचा और बोला–मैं रत्न-परीक्षा करूँगा।

शतानीक भौंचक्के होकर धन्ना को देखने लगे और कहा–तुम.............. रत्न-परीक्षा...............

धन्ना–हाँ राजन् !

शतानीक–...............क्या तुम रत्नों के बारे में जानते हो?

धन्ना–हाँ राजन् ! हीरक, नीलम, मोती, माणक और मरकत–ये पाँच मुख्य रत्न हैं। पुखराज, वैडूर्य, विद्रुम और गोमेद–ये चार उपरत्न हैं। इन नौ रत्नों के आश्रित नौ ग्रह रहते हैं। पद्मराग–रवि, मोती–सोम, विद्रुम–मंगल, मरकत–बुध, पुखराज–गुरु, हीरा–भृगु, इन्द्रनील–शनि तथा गोमेद व वैडूर्य–राहु, केतु से सम्बद्ध हैं। स्फटिक रत्न के चार भेद हैं–सूर्यकान्त, शशिकान्त, कान्तजल और हंसगर्भ। इस प्रकार रत्नशास्त्र में रत्नों के साठ भेदोपभेदों का वर्णन है।

शतानीक–क्या चिन्तामणि के विषय में जानते हो?

धन्ना–चिन्तामणि रत्न तीन रेखाओं वाला, सवा छटाँक वजन का दिव्य रत्न मनवांछित वस्तु देने वाला है।

शतानीक–तुम वास्तव में रत्न-परीक्षा कर सकते हो, तब तुम्हें वह रत्न दिखाता हूँ। यों कहकर शतानीक ने वह रत्न निकालकर धन्ना को दिखाया जिसे देखकर धन्ना बोला–राजन् ! यह सहस्रकिरण रत्न है। जिसके पास यह रत्न होता है वह राजा युद्ध में कभी पराजित नहीं होता। इस रत्न के रहने पर व्यन्तरादि कृत उपसर्ग शीघ्र समाप्त हो जाते हैं। इसके द्वारा प्रक्षालित जल पीने पर सर्व रोग विनष्ट हो जाते हैं। यह रत्न सुख, शांति, समृद्धिदायक है।

राजा–कैसे जानें कि यह सहस्रकिरण रत्न है?

धन्ना–राजन् ! आप चावल के दानों से भरा हुआ एक थाल मंगवाओ और उसमें यह रत्न डाल दो और इसे छत पर रख दो। चावल के लोलुप पक्षी दाना चुगने आयेंगे लेकिन वे इसमें से एक दाना भी नहीं चुग पायेंगे।

शतानीक ने तुरन्त वैसा ही किया। एक बड़े थाल में चावल के दाने बिखेर दिये। उसमें वह रत्न रख दिया। पक्षी दाना चुगने आये, लेकिन रत्न के प्रभाव से एक दाना भी चुग नहीं पाये। रत्न हटाते ही दाना चुगने लगे।

तब राजा ने धन्ना को पाँच सौ गाँव, हाथी, घोड़े दिये और सौभाग्यमंजरी के साथ उसका विवाह कर दिया।

धन्ना ने कौशाम्बी के पास धनपुर नामक एक नगर बसाया और वहाँ सरोवर खुदवाना प्रारम्भ किया। इधर राजगृह में धन्ना के जाने के पश्चात् उसके परिवार की दुर्दशा होने लगी। तब धन्ना के माता, पिता, भाई, भाभी एवं सुभद्रा धन्ना को खोजते-खोजते धनपुर आये और वहाँ मिट्टी खोदने का काम करने लगे। धन्ना ने उन्हें पहिचान लिया, उन्हें घर ले गया और धनपुर में वे धन्ना के पास आनन्द से रहने लगे।

तभी राजगृह से राजा श्रेणिक का बुलावा आया धन्ना के लिए कि उन्हें राजा अतिशीघ्र बुलवा रहे हैं। तब धन्ना अपने माता-पिता, भाई-भाभी को धनपुर छोड़कर अपनी पत्नियों के साथ राजगृह की तरफ रवाना हुआ। तभी रास्ते में लक्ष्मीपुर नगर था, वहाँ के राजा जितारि की पुत्री गीतकला ने एक बार कुशल वीणा-वादन करते हुए जंगल के पशु-पक्षियों को एकत्रित कर लिया। वीणा-वादन बंद होने पर भी एक हरिणी मूर्तिवत् खड़ी रही। उस समय गीतकला ने एक मोतियों का हार उतार कर उसके गले में डाल दिया जिसकी आहट प्राप्त कर वह जंगल में भाग गई। तब गीतकला ने प्रतिज्ञा कर ली कि जो कोई इस हरिणी के गले से हार निकालेगा, वही मेरा पति होगा।

राजा जितारि हर संभव ऐसा वर खोज रहा था। धन्ना भी संयोग से वहाँ पहुँच गया। रांजा के दरबार में जब गया तब राजा ने स्वागत-सत्कार देकर उन्हें बिठाया और वार्तालाप चलने लगा। बात-बात में अपनी पुत्री की प्रतिज्ञा

भी राजा ने बतलाई। तब धन्ना राजा सहित जंगल में गया। वहाँ वीणा बजाई। वह हिरणी भी आई, उसके गले से हार निकाला। गीतकला की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। राजा जितारि ने धूम-धाम से उसका विवाह धन्ना के साथ सम्पन्न किया।

राजा जितारि का मंत्री था, सुबुद्धि। उसके एक कन्या थी सरस्वती। उसने भी प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो मेरी पहेलियों का उत्तर देगा उसी को मैं वरण करूँगी।

धन्ना की प्रतिभा को देखकर सुबुद्धि ने सरस्वती को धन्ना के समक्ष प्रस्तुत किया और कहा तू इनसे अपनी पहेलियाँ पूछ। तब उसने पहेली रखी–

दान दिया जाता गंगा में, लेने वाला मर जाता।

देने वाला घोर नरक में, पड़ा-पड़ा फिर पछताता।।

अर्थात्–गंगा में दान देते हैं तो लेने वाला मर जाता है और दान देने वाला घोर नरक में जाता है, इसका क्या तात्पर्य?

तब धन्ना उत्तर देते हैं –

लेने वाली दान मछलियां, दाता धीवर पल (मांस) का दान।

इसका जो फल होता, जान रहे सारे विद्वान्।।

अर्थात्–मछुआरा मछलियाँ पकड़ने के लिए गंगा में आटा आदि डालता है जिसमें काँटा रहने से खाकर मछलियाँ मर जाती हैं। इस कारण वह धीवर मरकर नरक में जाता है।

सरस्वती को पहेली का उत्तर मिल गया। अब धन्ना ने पूछा–ऐसी कौनसी वस्तु है जो नाक, कान और नारंगी में दूर रहती है जबकि निम्ब, तुम्ब और मामा में मिल जाती हैं?

सरस्वती उत्तर नहीं बता पाई, तब धन्ना कहते हैं–अधर एवं ओष्ठ।

सरस्वती के साथ धन्ना का छठा विवाह सम्पन्न हुआ।

इसी लक्ष्मीपुर नगर में एक सेठ रहता था 'पत्रामलक'। उसके चार पुत्र थे। वह मृत्युशय्या पर लेटा था तब उसने चारों पुत्र को कहा–तुम आपस में प्रेम से रहना, मैंने चार कलशों में तुम्हारा नाम लिखकर बराबर धन दिया है, तुम बाँट लेना। यों कहकर सेठ ने प्राण त्याग दिया।

तब चारों पुत्रों ने पिता का दाह संस्कार करके कलशे खोले। एक कलश में मात्र कागज और कलम निकले, दूसरे में मिट्टी-कंकर, तीसरे में हड्डियाँ और चौथे कलश में आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ, जिन्हें देखकर पुत्र दंग रह गये। वे राजा जितारि के पास न्याय माँगने गये। राजा भी आश्चर्यचकित रह गया। तब धन्ना ने कहा–देखो, मैं इसका रहस्य बतलाता हूँ। जिस पुत्र को कागज-कलम

दिया, उसका मतलब तुम दुकान और बही खाते सम्हालो और लेन-देन से आठ करोड़ मिल जायेंगे। दूसरा लड़का खेती द्वारा आठ करोड़ प्राप्त कर लेगा। तीसरा पशुधन से आठ करोड़ की आय करेगा और चौथा छोटा है अतः उसे आठ करोड़ नगद दे दिये। चारों फैसला सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और अपनी बहिन लक्ष्मी का धन्ना के साथ विवाह कर दिया। यह धन्ना का सप्तम विवाह था।

धन्ना का अष्टम विवाह लक्ष्मीपुर के धनपाल नामक कंजूस सेठ की पुत्री से हुआ। हुआ यों कि धनपाल के यहाँ कभी भी कोई याचक आता तो वह उसे कुछ भी नहीं देता था। एक बार किसी धूर्त ने भिखारी का वेश बनाकर धनपाल को खुश कर दिया। सेठ ने उसे कुछ देने का वचन दिया, लेकिन रोज-रोज टरकाता रहा। एक दिन वह धूर्त भिखारी जिद्द करके बैठ गया कि मुझे बताओ तुम किस दिन क्या दोगे?

सेठ ने कहा—अमुक दिन आना और तुम मेरी जिस वस्तु पर हाथ रख दोगे वह तुम्हें दूँगा। वह भिखारी चला गया।

इधर सेठ ने सोचा कदाचित् यह मेरी लड़की गुणमाला को माँग लेगा तो अनर्थ हो जायेगा। यह सोचकर सेठ ने उस भिखारी के पास जाकर कहा—तुम्हें चाहिए जो हीरे, पन्ने ले लो लेकिन वह नहीं माना। तब सेठ ने धन्ना को बुलाया। तब धन्ना ने कहा—निश्चिंत रहो। इधर भिखारी आया तो सेठ की लड़की छत पर खड़ी थी। चढ़ने के लिए नसैनी लगा रखी थी। भिखारी ने ज्योंही नसैनी के हाथ लगाया धन्ना ने कहा—नसैनी ले जाओ। तुम्हारी शर्त पूरी हुई। धूर्त देखता ही रह गया। सेठ ने अपनी पुत्री का विवाह धन्ना के साथ कर दिया। यह धन्नाजी का आठवाँ विवाह था।

इस प्रकार छः पत्नियों को लेकर धन्ना राजगृह पहुँचे। वहाँ पर कुसुमश्री व सोमा ने उसका खूब स्वागत-सत्कार किया। सुभद्रा की सेवा से प्रसन्न होकर धन्ना ने उसे पटरानी का पद दिया और धन्ना ने राजगृह का मंत्री पद सम्हाल लिया और अभयकुमार उज्जयिनी से कुछ दिनों पश्चात् आ गया। धन्ना और अभय मैत्री भाव से सब कार्य करने लगे।

इधर धन्ना के भाइयों ने ऐसा व्यवहार किया कि उनका सब-कुछ चौपट हो गया। वे वहाँ से माता-पिता और पत्नियों को लेकर भटकते-भटकते राजगृह पहुँचे। धन्ना से मिले। अब तीनों भाइयों का द्वेष समाप्त हो गया। तीनों ने धन्ना से क्षमायाचना की और सुखपूर्वक रहने लगे।

तभी राजगृह में केवलज्ञानी मुनि आये तब धन्ना ने मुनि से अपना पूर्वभव पूछा। तब मुनि ने पूर्वभव बताते हुए कहा –

प्राचीन काल में पइट्ठन नामक गाँव था। वहाँ पर कात्यान नामक विधवा

बुढ़िया रहती थी। उसके दत्त नामक पुत्र था। वह गाय-बछड़े चरा कर आजीविका चलाता था। एक दिन पर्व पर घर-घर खीर बनी। दत्त ने भी खीर खाने की जिद्द की। माता ने पड़ोसिनों से सब चीज माँगकर खीर बनाई। पुत्र को खीर परोस कर माता बाहर गयी, तब पारणे में मुनि आये, दत्त ने सारी खीर मुनि को बहरा दी। माता आई तब दत्त थाली चाट रहा था। माँ ने सोचा–पुत्र बहुत भूखा है, उसने हंडिया में बची खीर भी दे दी। खीर खाने पर पुत्र के पेट में दर्द हुआ और शुभ ध्यान करते हुए मरा और मरकर वह जीव धन्यकुमार धन्ना बना है। वह धन्ना तुम ही हो। जिन चार स्त्रियों ने तुम्हारी माँ को खीर बनाने की सामग्री दी एवं चार ने अनुमोदन किया, वे आठों मरकर तुम्हारी पत्नियाँ बन गयी हैं।

तब तीनों भाइयों का पूर्वभव पूछा। तब मुनि कहने लगे –

सुग्राम नामक नगर में तीन लकड़हारे थे। तीनों दोपहर जंगल में लकड़ी काटकर भोजन करने बैठे, इतने में मुनि आये। तीनों ने मुनि को भोजन बहरा दिया। शाम को तीनों घर गये तो उन्हें भोजन नहीं मिला। तब उन्होंने दान की निन्दा की कि ऐसे दान से क्या लाभ जिससे हमें भोजन भी नहीं मिला। इस प्रकार कुवचन कहकर वे मृत्यु को प्राप्त होने पर तुम्हारे भाई बने, लेकिन दान की निन्दा करने से उन्होंने महान कष्ट पाया। मुनि की देशना श्रवण कर तीनों भाई, भाभी, माता, पिता को विरक्ति आ गयी। उन्होंने संयम लेकर जीवन सफल किया।[17]

इधर धन्ना अब आठ पत्नियों के साथ भोग भोग रहा है और उधर सुभद्रा को पता चला कि मेरा भाई शालिभद्र प्रतिदिन एक-एक पत्नी का परित्याग कर रहा है तो सुभद्रा का मन भ्रातृ-वात्सल्य में निमज्जित हो गया। वह भाई का प्यार स्मृतिपटल पर लाकर आँसूओं से अपनी आँखों को नम करने लगी। उस समय सुभद्रा अपने पति को नहला रही थी और गरम-गरम आँसू की एक बूँद धन्ना की पीठ पर जा गिरी।

तब धन्ना ने सुभद्रा से पूछा–क्या बात है? आज तुम क्रंदन क्यों कर रही हो?

सुभद्रा–मेरा भाई संयम लेगा, वह प्रतिदिन एक-एक पत्नी का परित्याग कर रहा है। जब वह संयम ले लेगा तो मैं बिना भाई की बहन हो जाऊँगी।

धन्ना–अरे सजनी ! तेरा भ्राता कायर है। वह प्रतिदिन एक-एक पत्नी को त्यागता है। यदि शूरवीर होता तो एक साथ बत्तीस को त्यागता।

सुभद्रा–स्वामिन् ! कहना सरल है, लेकिन कर दिखलाना कठिन है।

धन्ना–अच्छा, लो अभी जाता हूँ, संयम लेने। तुमने मेरे भीतर का वीरत्व

जगा दिया, अब मैं संयम ही लूँगा।

सुभद्रा–अरे स्वामिन् ! यह क्या? यह तो मैंने विनोद में कहा था। आप मुझे माफ करदो। यों कहकर सुभद्रा चरणों में गिर कर रोने लगी।

धन्ना ने कहा–ऐसी ही अनुराग है तो तुम भी मेरे साथ संयम ग्रहण कर लो।

तब धन्ना के साथ आठों पत्नियाँ तैयार हो जाती हैं। उसी समय भगवान् भी राजगृह के वैभारगिरि पर्वत पर आये। धन्ना को भी ज्ञात हुआ तब वह अनेक दीन-हीनजनों को दान देकर स्त्रियों के साथ शिविका में बैठकर भगवान् के पास आया और विधिपूर्वक संयम ग्रहण किया। शालिभद्र को जब धन्ना और सुभद्रा की दीक्षा का पता चला तब वह भी शीघ्रता करके दीक्षा लेने श्रेणिक राजा के साथ भगवान् के पास आया और उसने भी भगवान् से संयम ले लिया।[18]

भगवान् ने अनेक साधुओं सहित वहाँ से विहार कर दिया।*

***टिप्पण**– धन्ना और शालिभद्र भगवान् के साथ विहार करके चले गये और बहुश्रुत बनकर पक्ष, मास, दो मास और चार मास की तपस्या करके पारणा करते थे। इस तपश्चर्या से उनके शरीर का मांस और रुधिर सूख गया। शरीर केवल हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया। बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर भगवान् महावीर के साथ वे दोनों मुनि राजगृह आये।

भगवान् के राजगृह पदार्पण से जनता में हर्ष की लहर व्याप्त हो गयी और लोगों के झुण्ड के झुण्ड प्रभु के दर्शन, वन्दन एवं वाणी श्रवण को आने लगे। धन्ना और शालिभद्र के मासक्षपण का पारणा था। वे भगवान् के पास भिक्षा की आज्ञा लेने के लिए पहुँचे। भगवान् ने शालिभद्र मुनि से कहा–तुम्हारी माता के हाथ से पारणा होगा। शालिभद्र मुनि ने प्रभु के कथन को स्वीकार किया एवं धन्ना और शालिभद्र मुनि भद्रा के घर पर गोचरी हेतु गये। दोनों मुनि भद्रा के गृहद्वार के पास खड़े रहे, लेकिन भद्रा तो संभ्रान्त चित्त वाली बन रही थी। क्योंकि वह तो चिंतन कर रही थी कि भगवान् महावीर के साथ धन्ना एवं शालिभद्र मुनि पुनः राजगृह नगर पधारे हैं और मुझे दर्शन करने जाना है। इसी उधेड़बुन में वह दर्शन हेतु तैयारी कर रही थी। धन्ना और शालिभद्र मुनि तप से अत्यन्त कृशकाय हो गये, अतएव कोई उन्हें पहचान ही नहीं पाया। भद्रा का तो उधर ध्यान तक नहीं गया। क्षण-भर खड़े रहकर मुनिद्वय पुनः भद्रा के महल से लौट गये। जब वे मार्ग में जा रहे थे तो शालिभद्र की पूर्वभव की माता धन्या दही और घी बेचने के लिए आ रही थी, वह सन्मुख मिली। शालिभद्र मुनि को देखते ही वह रोमांचित हो गयी। उसके उरोजों से पयस की धारा प्रवाहित होने लगी। उसने अत्यन्त भक्ति-भाव से शालिभद्र और धन्ना मुनि को दधि बहराया।

उस दही को लेकर दोनों मुनि भगवान् के पास पहुँचे और भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके पूछा–भगवन् ! आपने फरमाया था कि मासक्षपण का पारणा तुम्हारी माँ के हाथ से होगा तो उसके हाथ से पारणा क्यों नहीं हुआ? तब भगवान् ने फरमाया–जिस महिला ने तुम्हें दही बहराया, वह तुम्हारे पूर्वभव की माता है। उसका नाम धन्या है। वह धन्या पहले राजगृह के समीप शालिग्राम में आकर रहती थी। उसका सारा वंश नष्ट हो गया तो वह अपने पुत्र संगम को लेकर इस गाँव में रहने लगी। वह संगम भेड़-बकरियाँ आदि को चराकर अपनी आजीविका चलाता था। एक दिन पर्वोत्सव के समय घर-घर खीर बनी तब संगम ने भी अपनी माता से जिद्द किया कि तुम भी घर पर मेरे लिए खीर बनाओ। लेकिन धन्या के पास में सामग्री नहीं थी, अतः उसने पुत्र को बहुत समझाया, लेकिन पुत्र नहीं माना। तब वह अपने पूर्व वैभव का स्मरण कर जोर-जोर से रुदन करने

तब भद्रा मुनियों को वन्दन कर खिन्न मन वाली होकर अपने घर लौट गयी और श्रेणिक अपने महल मे। (त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र, पृष्ठ 217-224)

इधर धन्ना और शालिभद्र मुनि दोनों समाधिभाव में लीन हो गये। संथारा पूर्ण होने पर धन्ना मुनि सिद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था प्राप्त कर गये एवं शालिभद्र मुनि का आयुष्य सात भव कम होने से वे सवार्थसिद्ध विमान में गये। (शालिभद्रचारित्र, जवाहर किरणावलि, पृष्ठ-260)

अन्यत्र यह उल्लेख भी मिलता है कि धन्ना और शालिभद्र मुनि काल करके तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले सर्वार्थसिद्ध विमान में देव हुए। वहाँ से मनुष्य भव प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करेंगे।(त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र पृष्ठ 217-224)

लगी। उसके रुदन की आवाज को सुनकर पड़ोसी बहिनें आई और रुदन का कारण पूछा। धन्या ने कारण बतलाया तब सभी ने मिलकर दुग्धादि धन्या को दिये। तब धन्या ने खीर बनाई और पुत्र को थाल में खीर परोस कर स्वयं घर के कार्य में लग गयी। तभी एक मुनिराज मासक्षपण के पारणे में आये और संगम ने उदात्त भावों से वह खीर बहराई। मुनि तो खीर लेकर चले गये। इधर धन्या आई तो पुत्र संगम थाली चाट रहा था। तब धन्या ने खुद के लिये रखी खीर संगम को दे दी। संगम अतृप्त होकर सारी खीर खा गया और अजीर्ण होने से उसी रात्रि में मुनि को स्मरण करता हुआ मरण को प्राप्त हो गया। उसी संगम का जीव शालिभद्र के रूप में जन्मा। हे मुनि तुम पूर्वभव में संगम ही थे और दही बहराने वाली तुम्हारी माता धन्या है।

इस प्रकार दही से पारणा करके दोनों मुनि भगवान् की आज्ञा लेकर अनशन करने के लिए वैभारगिरि पर गये। वहाँ जाकर शिलातल की प्रतिलेखना की और वहाँ पादपोपगमन अनशन स्वीकार करके शरीर का व्युत्सर्ग कर दिया।

इधर शालिभद्र की माता भद्रा एवं श्रेणिक राजा भगवान् को वंदन करने आये। उन्होंने वहाँ धन्ना एवं शालिभद्र को नहीं देखा तो भगवान् से पूछा-भंते ! धन्ना और शालिभद्र कहाँ हैं?

भगवान् ने फरमाया कि वे आज मासक्षपण के पारणे के लिए तुम्हारे घर आये थे, लेकिन तुम्हें यहाँ आने की व्यग्रता थी, तुमने मुनियों को देखा तक नहीं, अतः वे मुनि तुम्हारे घर से लौट गये। रास्ते में शालिभद्र की पूर्वभव की माता धन्या ने उन्हें दही बहराया। वे दही से पारणा करके वैभारगिरि पर्वत पर अनशन करने गये हैं।

तब भद्रा श्रेणिक राजा के साथ तुरन्त वैभारगिरि[vi] पर पहुँची। वहाँ मुनियों को पाषाण की तरह सोये देखा तो भद्रा रुदन करने लगी-हे वत्स ! तुम घर पर आये परन्तु मैं तुम्हें पहिचान न सकी, परन्तु तुम मेरे पर इस बात से नाराज मत होना क्योंकि तुम तो गृहत्यागी अणगार हो। मैंने सोचा था कि संयम लेकर कभी तो तुम मेरे नेत्रों को तो आनन्द दोगे, लेकिन तुम तो शरीर का ही परित्याग कर रहे हो, तब मैं अब तुम्हारे दर्शन कैसे करूँगी। तुमने इतनी उग्र तपश्चर्या करके शरीर को कृश क्यों किया?

तब भद्रा का मातृ-वात्सल्य देखकर राजा श्रेणिक ने कहा-अरे ! तुम इस हर्ष के स्थान पर रुदन क्यों कर रही हो? तुम्हारा पुत्र कितना पराक्रमी है, जिसने अपार लक्ष्मी का परित्याग कर प्रभु के चरणों में संयम अंगीकार किया और भगवान् महावीर का वास्तविक शिष्य बनने हेतु कठोर तप किया। इस प्रकार राजा श्रेणिक ने प्रतिबोध देकर भद्रा का रुदन समाप्त करवाया।

अनुत्तरज्ञानचार्य का चतुर्थ वर्ष
टिप्पणी

I राजगृह

यह नगर महावीर के उपदेश और वर्षावास के केन्द्रों में सबसे बड़ा और प्रमुख केन्द्र था। इसके बाहर अनेक उद्यान थे किन्तु महावीर के समवसरण का स्थान गुणशिलक उद्यान था, जो राजगृह से ईशान दिशा में था। राजगृह राजा श्रेणिक के राज्य काल में मगध की राजधानी थी। यहाँ के सैकड़ों राजवंशी और अन्य नागरिक स्त्री–पुरूषों को महावीर ने अपने श्रमणसंघ में दाखिल किया था। हजारों मनुष्यों ने जैनधर्म को स्वीकार किया था। जैनसूत्रों में राजगृह में महावीर के दो सौ से अधिक बार समवसरण होने के उल्लेख हैं।

आजकल राजगृह "राजगिर" नाम से पहचाना जाता है, जिसके पास मोहागिरि पर्वतमाला के पाँच पर्वत है, जो जैनसूत्रों में वैभारगिरि विपुलाचल आदि नामों से उल्लिखित हैं। राजगिर बिहार प्रान्त में पटना से पूर्व–दक्षिण व गया से पूर्वोत्तर में अवस्थित हैं।

II औपमिककाल

जिस काल की संख्या रूप में गणना की जा सके, उसे गणित योग्य काल कहते हैं। काल का सूक्ष्मतम भाग समय होता है। असंख्यात समय की एक आवलिका होती है। 256 आवलिका का एक क्षुल्लक भव होता है। 17 से कुछ अधिक क्षुल्लक भव का एक उच्छवास निःश्वास होता है। इससे आगे की संख्या स्पष्ट है। सबसे अन्तिम गणनीय काल शीर्ष प्रहेलिका है जो 194 अंकों की संख्या है।

यथा 758263253073010241157973569975696406218966848080183296 इन चौपन अंकों पर 140 बिन्दियाँ लगाने से शीर्ष प्रहेलिका का प्रमाण आता है, इसके आगे का काल औपमिक है। अतिशय ज्ञानी के अतिरिक्त साधारण व्यक्ति उसको गिनती करके उपमा के बिना ग्रहण नहीं कर सकते इसलिए उसे औपमिक काल कहा है।

श्री अनुयोगद्वार चूर्णि, आ. हरिभद्रसूरि, पृ. 56–57

III बालाग्र

आठ रथरेणुओं के मिलने से देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से हेमवत, हिरण्यवत मनुष्यों का एक बालाग्र, हैमवत, हिरण्यवत के मनुष्यों के आठ बालाग्रों का पूर्वविदेह

मनुष्यों का एक बालाग्र, पूर्वविदेह मनुष्यों के आठ बालाग्रों से एक लिक्षा।

IV काल

यद्यपि भगवान् महावीर के चारित्र ग्रन्थों में काल का वर्णन पहले है और धान्य की योनि के लिए बाद में निर्देश है लेकिन भगवती सूत्र मूल पाठ में धान्य की योनि का कथन पहले एवं काल का वर्णन उसके बाद में होने से यही क्रम दिया है।

देखिये भग., अभयदेव, वही, पत्रांक 499–505

V गोभद्र

यद्यपि कई आचार्यों ने गोभद्र सेठ के बारे में ऐसा उल्लेख किया है कि शालिभद्र जब छोटा था तब उसके पिता गोभद्र ने दीक्षा ले ली (भ. महावीर एक अनुशीलन आ. देवेन्द्रमुनि) लेकिन चारित्र ग्रन्थों में शालिभद्र के विवाह के पश्चात् ही गोभद्र की दीक्षा हुई थी। ऐसा उल्लेख हुआ है। त्रिषष्टिशलाकाकार ने भी यही माना है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चारित्र, वही, सर्ग–10, पृ. 218

VI वैभारगिरी

यह पर्वत राजगृह के पाँच पर्वतों में एक है। महावीर के समय में इसके पास पाँच सौ धनुष लंबा एक गर्म पानी का ह्रद था, जिसका जैन सूत्रों में "महातपोपतीर" नाम से उल्लेख हुआ है और उसे "प्रस्रवण" अर्थात "स्त्रोत" कहा है। आज भी उसके पास गर्म जल के कतिपय कुण्ड हैं जो भीतर के उष्ण जलस्रोतों से हर समय भरे रहते हैं।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का पंचम वर्ष

राज्य का कहर

संयम की एक झलक :

राजगृह का ऐतिहासिक वर्षावास परिसमाप्त कर भगवान् ने चम्पा[1] की ओर विहार किया और ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् चम्पा पधार गये और उसके बाहर स्थित पूर्णचन्द्र यक्ष के यक्षायतन में पधार गये।

उस समय चम्पा नगरी का राजा दत्त जिनधर्मानुरागी था। जैसें ही उसने श्रवण किया कि भगवान् चम्पा में पधारे हैं, वह अत्यन्त हर्षित हुआ। अपनी धर्मप्रिया महारानी रक्तवती एवं सुपुत्र महाच्चन्द्र युवराज सहित प्रभु के दर्शन एवं धर्म-श्रवण हेतु गया। भगवान् महावीर ने अपनी गम्भीर गिरा से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध बना दिया। महाच्चन्द्र ने भगवान् की वाणी को हृदय में स्थान देते हुए श्रावक योग्य व्रतों को ग्रहण किया। भगवान् भी वहाँ से विहार कर गये। एक दिन अर्द्धरात्रि में पौषध में धर्म-जागरण करते हुए महाच्चन्द्र के मन में मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से वैराग्य भाव का जागरण हुआ और चिन्तन की चाँदनी में आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए भगवान् महावीर के सान्निध्य की आकांक्षा करने लगा कि यदि भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चम्पा नगरी पधारें तो मैं भी प्रभु के चरणों में प्रव्रजित बनूँगा।

इधर महच्चन्द्र दीक्षा अंगीकार करने का चिन्तन कर रहा है और चम्पा[क] नगरी वह भी अनेक धार्मिक-अनुराग रखने वालों की भव्यों की निवास दात्रीभूमि है। वहाँ रहने वाले अनेक धनाढ्य व्यक्ति मन में धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत होकर विकासोन्मुख जीवन जीने वाले हैं। वहाँ रहने वाला कामदेव गाथापति अठारह हिरणयकोटि मुद्राओं का स्वामी था। उसके छः हिरण्यकोटि निधान में थे, छः हिरण्यकोटि घर में और छः हिरण्य कोटि व्यापार में नियोजित थे। उसके दस-दस हजार गायों के छः गोकुल थे। वह चम्पा का प्रतिष्ठि व्यक्ति था। अनेक व्यक्ति समय-समय पर उससे मंत्रण करने हेतु आया करते थे।

भगवान् महावीर अपने ज्ञानालोक में महच्चन्द्र के भावों को जान रहे थे और अनेक भव्यात्माओं के मोक्ष मार्ग स्वीकृत करने के तथ्य की भी जान रहे थे। अतएवं उन सब पर अनुकम्पा करने के लिए भगवान् पुनः चम्पा पधारे। महच्चन्द्र प्रभु का आगमन जानकर हर्षोल्लास के साथ प्रभु चरणों में पहुंचा और माता-पिता से अनुमति प्राप्त कर प्रव्रजित हो गया है।[1]

कामदेव गाथापति को भी जब यह ज्ञात हुआ तब वह भी अपने रथ पर

(क) चम्पा- जिस समय भगवान् दुवारा चम्पा पधारे उस समय वहाँ का राजा जितशत्रु था क्योंकि कामदेव के वर्णन में जितशत्रु का उल्लेख मिलता है।

समारूढ होकर धर्मदेशना श्रवण करने गया।

भगवान् की अर्थ-गाम्भीर्य युक्त संसार तिराने वाली वाणी को श्रवण कर उसका रोम-रोम पुलकने लगा और उसने प्रभु से निवेदन किया कि मैं इनता सामर्थ्य तो नहीं रखता कि गृहवास छोड़कर आपके चरणाम्बुजों में मुण्डित बन जाऊँ लेकिन मैं अभी आपके मुखारबिन्द से श्रावक के ग्रहण योग्य बाहर व्रतों को स्वीकार करना चाहता हूँ।

तब भगवान् ने उसके निर्मल भावों को जानकार श्रावक योगय बारह व्रतों को स्वीकार करवाया। वह भी गृहस्थ धर्म की अनुपालना करता हुआ अपने जीवन को कल्याण मार्ग पर अग्रसर करने लगा। भगवान् भी महच्चन्द्र की दीक्षा एवं कामदेव के व्रत अंगीकार करने के पश्चात् ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।*

प्रतिबोध प्रभावती का :

उस समय में सिंधुसौवीर जनपद की राजधानी [2]वीतिभय[ii] नगर थी, वहाँ का राजा उदायन उस युग का परम प्रतापी नरेश हिमगिरि-सी शोभा का वरण कर रहा था। राजा उदायन सिंधुसौवीर प्रमुख सोलह जनपद के वीतिभय आदि तीन सौ त्रेसठ नगर का स्वामी था। वह महासेन आदि दस मुकुटबद्ध राजा तथा अन्य बहुत-से राजा, ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि पर आधिपत्य करता हुआ राज्य का संचालन कुशलतापूर्वक कर रहा था।[3]

उसकी प्रभावती नामक पटरानी कमनीय अंग-प्रत्यंगों वाली, मृगनयनी, हास-परिहास से मन को मंत्र-मुग्ध करने वाली वैशाली गणराज्य के अधिपति चेटक की दुहिता थी।महारानी प्रभावती ने समय आने पर एक शिशु का प्रसव किया जिसका नाम अभीचिकुमार रखा गया। अभीचिकुमार युवराज प्रदेशी राजा के राज्य (शासन), राष्ट्र (देश), बल (सेना), वाहन (रथ, हाथी, अश्वादि), कोष, कोठार (अन्न भंडार), पुर एवं अन्तःपुर की स्वयं देखभाल करता था। राजा उदायन की सहोदरा भगिनी के भी एक पुत्र था, जिसका नाम केशीकुमार था।[4]

प्रभावती देवी पितृ-गृह के संस्कारों से समन्वित जिनधर्म के प्रति दृढ़ आस्थावान थी[5], लेकिन राजा उदायन तापसों का भक्त था।[6] महारानी प्रभावती उदायन को जिनधर्मानुरागी बनाने में सदैव तत्पर रहती थी, लेकिन उसको अपने प्रयासों में सफलता नहीं मिली। फिर भी उसने अपने पुरुषार्थ का परित्याग नहीं किया। एक बार राजा उदायन वीणा बजा रहा था और प्रभावतीदेवी नृत्य

*महावीर कथा के अनुसार कामदेव ने महच्चन्द्र के साथ ही चम्पा नगरी में गृहस्थ धर्म स्वीकार किया था।

– महावीर कथा, गोपालदास जीवाभाई पटेल, पृष्ठ-307

कर रही थी, तब राजा उदायन को सिररहित प्रभावती का धड़ दिखाई दिया जिसे देखकर वह किंकर्तव्यविमूढ़ बन गया। उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल पड़ गये और हाथों से वीणा छूट गयी। तब महारानी ने पूछा—राजन् ! आप वीणा बजा रहे थे और यकायक यह क्या हुआ? तब उदायन मौन धारण किये बैठा रहा, लेकिन प्रभावती ने जब बार-बार पूछा तो उदायन ने बता ही दिया कि मैंने अभी तुम्हारा सिररहित धड़ नाचते देखा है, अतएव अब तुम्हारी आयु बहुत कम अवशिष्ट है। अपनी मृत्यु को नजदीक जानकर प्रभावती उदासीन नहीं हुई, अपितु आनन्दमग्न हो गयी, क्योंकि उसने सोचा कि मुझे जीवन की चन्द घड़ियों का उपयोग संयम ग्रहण करने में करना है। इस प्रकार चिंतन कर वह अन्तःपुर में गयी और उसने राजा से प्रव्रज्या की आज्ञा माँगी, लेकिन राजा ने आज्ञा नहीं दी।

एक समय रानी ने दासी से देव-पूजा के लिए वस्त्र मंगवाये। दासी वस्त्र लाई, उस पर प्रभावती को लाल छींटे दिखाई दिये। तब प्रभावती महारानी ने कहा—ऐसे क्या अशुभ वस्त्र लाई है। यों कहकर क्रोध से आवेशित होकर उसने अपने हाथ में रहा हुआ दर्पण दे मारा, जिससे तत्क्षण दासी की मृत्य हो गयी। तब महारानी घोर पश्चात्ताप करने लगी कि अहो ! आज मेरा अहिंसा अणुव्रत भी खण्डित हुआ और पंचेन्द्रिय घात-जन्य भयंकर पाप भी लगा। ओह ! जब अन्य पंचेन्द्रिय घात भी नरक का कारण है तब स्त्री की हत्या............... अरे, वह तो घोर नरक का कारण है। अब तो चारित्र अंगीकार करना मेरे लिए श्रेयस्कर है। यह सोचकर महारानी ने राजा से दीक्षा हेतु अनुमति माँगी कि मेरा अब चन्द घड़ियों का जीवन है और मैंने एक दासी की हत्या का घोर पाप भी कर डाला। इससे मेरे मन में भीषण पश्चात्ताप हो रहा है। स्वामिन् ! मैं संसार से विरक्त बनकर संयम ग्रहण करना चाहती हूँ, आप अनुग्रह करके अनुज्ञा प्रदान कीजिये।

महारानी की अतीव विरक्ति देखकर राजा ने कहा—मैं तुम्हारे मार्ग का कंटक नहीं बनना चाहता, लेकिन एक बात अवश्य कहूँगा कि तुम देव बनो तो मुझे प्रतिबोधित करना। महारानी प्रभावती ने कहा—राजन् ! ऐसा ही करूँगी। ऐसा कहकर चारित्र ग्रहण कर लिया। कुछ समय संयम पर्याय का पालन कर अंत समय में अनशन कर मृत्यु का वरण कर प्रथम देवलोक का महर्द्धिक देव बन गयी।*

---

*टिप्पणी-त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र में प्रभावती के देव बनने का उल्लेख है जबकि भगवती सूत्र के वर्णनानुसार प्रभावती राजा उदायन की दीक्षा के समय मौजूद थी क्योंकि जब भगवान् वीतभय नगर पधारे तो प्रभावती प्रमुख रानियों के भगवान् के समीप जाकर धर्म कथा सुनने का उल्लेख मिलता है। अतएवं प्रभावती के देव बनने का कथानक बाद में जोड़ा गया है ऐसा संभव है (तत्त्वं तु केवलिगम्यम्) साथ ही यहाँ पर प्रभावती और उदयन के कथानक में प्रतिमा पूजन का उल्लेख त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र ने किया है लेकिन भगवतीसूत्र में उदायन के वर्णन में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है अतः प्रतिमा पूजन का वर्णन प्रक्षिप्त लगता है।

देव बनने के पश्चात् प्रभावती ने राजा को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिबोधित करने का प्रयास किया, लेकिन नृपति प्रतिबुद्ध नहीं हुआ। तब देव ने विचार किया कि उदायन नरेश ऐसे ही संबोधि प्राप्त करने वाला नहीं है। इसलिए उसने नरेश को प्रतिबुद्ध करने के लिए अवधिज्ञान से उपाय सोचा। उपाय जानकर उसने तापस का रूप बनाया और हाथ में दिव्य अमृतफल भरे हुए पात्र को ग्रहण कर राजा उदायन के समीप गया। तत्पश्चात् राजा को अमृत फल से संभृत पात्र भेंट दिया। ऐसी सुन्दर भेंट प्राप्त कर राजा फूला नहीं समाया। उसने तापस से पूछा—ये अपूर्व अमृत-फल तुम कहाँ से लाये हो?

तापस—इस नगर के समीप 'दृष्टि-विश्राम' (दृष्टि को आनन्द मिले ऐसा) उद्यान है, उसमें ऐसे दिव्य फल हैं।

राजा—चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ, मुझे वो आश्रम बता दें।

तापस—चलिये! यों कहकर दोनों साथ-साथ चलते हैं। थोड़ी दूर जाकर तापस रूपी देव ने नन्दनवन जैसा एक उद्यान निर्मित किया। उसमें अनेक तापस एवं प्रफुल्लित मनोरम अमृतफल नेत्रों को लुब्ध बना रहे थे, जिनकी शोभा दृष्टिगत कर राजा अपने-आपको रोक ही नहीं पाया और वह फल लेने के लिए लपका कि तपस्वी साक्षात् प्रेत के समान नृप का संहार करने के लिए दौड़े। तब राजा भी भयभीत होकर चोर की तरह बेतहाशा भागने लगा। तब भागते-भागते उसने जैन साधुओं को सन्मुख देखा। उस समय साधुओं ने राजा से कहा—राजन्! भयभीत मत बनो। तब राजा उन साधुओं की शरण को स्वीकार कर लेता है। संकट से मुक्त बनकर वह जैनधर्म का अवलम्बन ग्रहण करता है। देव, गुरु और धर्म के प्रति उसकी दृढ़ आस्था जागृत हो जाती है और समय आने पर बारह व्रत-धारी श्रावक बन जाता है।[7]

कुब्जा का हरण :

उदायन राजा के यहाँ पर अनेक दास-दासी-भृत्यादि थे, उनमें एक देवदत्ता नामक कुब्जा[क] दासी भी थी। एक बार गांधार नामक पुरुष गांधार देश से वैताढ्य पर्वत पर आया और उस गिरिमूल[ख] में उपवास करके साधना करने लगा। उसकी भक्ति से प्रभावित होकर शासनदेवी ने उसके मनोरथ पूर्ण किये। उसको वैताढ्य गिरि की तलहटी में छोड़ा और मनोरथ पूर्ण करने वाली एक सौ आठ गोलियाँ दीं।

तब उसने एक गोली मुँह में रखी और सोचा कि मुझे वीतिभय नगर जाना है। तब वह वीतिभय नगर पहुँच गया। वहाँ उसका शरीर व्याधिग्रस्त हो गया। उस समय उस देवदत्ता नामक कुब्जा दासी ने अत्यन्त समर्पण भाव से उसकी

(क) कुब्जा-कुबड़ी

(ख) गिरिमूल-पर्वत की तलहटी

सेवा की। तब उस पुरुष ने अपना अवसानकाल[क] समीप जानकर कुब्जा दासी को गोलियाँ दे दीं और कहा कि तुम जिस मनोरथ की कामना से गोली मुँह में रखोगी, वह मनोरथ तुम्हारा पूर्ण होगा। दासी अत्यन्त हर्षित हुई और उस पुरुष ने अपना अन्तिम जीवन सुधारने के लिए संयम स्वीकार कर लिया।[8]

गोलियाँ प्राप्त कर कुब्जा दासी ने सोचा कि इनका प्रयोग करके देखना चाहिए। उस समय उसने एक गोली मुँह में रखी और चिंतन किया कि मैं रूप और लावण्य में अप्सरा के समकक्ष बन जाऊँ। तब तत्काल ही वह दिव्यरूप-धारिणी देवी के समान बन गयी। उसके अंग-प्रत्यंगों से सुवर्ण जैसी कान्ति फूट कर बहने लगी। तब लोगों ने उसका नाम सुवर्णगुलिका (गुटिका) रख दिया।

एक बार उसके मन में वासना की उत्ताल तरंगें तरंगित हुई कि रूप तो अत्यन्त आकर्षक बन गया लेकिन बिना उपभोक्ता के वह व्यर्थ है। मैं इस समय किसको अपना जीवन-साथी बनाऊँ। यहाँ का राजा उदायन तो वृद्ध भी है और जनकतुल्य भी। तब अन्य ही युवक का भर्ता रूप में चयन करना चाहिए। किसको अपना जीवन-सर्वस्व सौंपूँ, किसके चरणों में समर्पित बनूँ, यों सोचते-सोचते उसका ध्यान उज्जयिनी[iii] के नृपति चण्डप्रद्योतन की ओर गया और मन में संकल्प कर लिया कि चण्डप्रद्योतन को ही पति बनाना है। यही संकल्प करके उसने दूसरी गोली खा ली।

उस गुटिका के प्रभाव से उसका अधिष्ठायक देव चण्डप्रद्योतन के पास पहुँचा और उसके सामने स्वर्णगुलिका के असीमित रूप-सौन्दर्य का वर्णन किया। तब चण्डप्रद्योतन ने एक दूत को कुब्जा के पास प्रणय-प्रस्ताव लेकर भेजा। कुब्जा ने भी उस दूत के साथ अपनी प्रणय-निवेदना प्रस्तुत की। तब चण्डप्रद्योतन राजा अनिलगिरि हस्ती पर आरूढ़ होकर रात्रि में वीतिभय नगर आया और स्वर्णगुलिका के प्रणय से प्रभावित होकर उसका हरण करके उसे उज्जयिनी ले गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा उदायन अश्वशाला का निरीक्षण करता हुआ हस्तिशाला में आ पहुँचा। हस्ति निरीक्षण करता हुआ वह आश्चर्यचकित हो गया कि हाथियों का मद सूख क्यों गया है? वह इसी तलाश में आगे बढ़ रहा था कि उसको गजरत्न के मूत्र की गंध आई। तब उसने तत्काल ही जान लिया कि यहाँ निश्चय ही कोई गंधहस्ती आया है। वह गंधहस्ती चण्डप्रद्योतन के सिवाय अन्य किसी के पास नहीं है। फिर उसने अधिकारियों से यह भी जान लिया कि स्वर्णगुलिका दासी गायब है। निश्चय ही वह स्त्री-लम्पट उसे भी चुरा ले गया है।[9]

(क) अवसानकाल-मृत्यु का समय

तब उदायन ने चण्डप्रद्योतन पर चढ़ाई करने का निश्चय किया परन्तु मंत्रियों ने कहा–राजन्! चण्डप्रद्योतन कोई सामान्य नृपति नहीं है। उसका अपार सैन्य-बल है। अतएव एक दासी के लिए उसके साथ युद्ध करना बुद्धिमानी नहीं है।

राजा उदायन ने कहा–अन्याय एवं अत्याचार को सहन करना अधर्म है। इसका प्रतिकार करना ही चाहिए। इसके लिए उदायन ने दस मित्र राजाओं को युद्ध के लिए तैयार किया और उनकी विशाल सेना सहित उज्जयिनी पर धावा बोल दिया।

दोनों पक्षों की सेनाओं में घमासान युद्ध होने लगा। कहीं किसी का सिर कट कर गिर रहा है, कहीं धड़, कहीं हाथ और कहीं पैर। तीरों की बरसात से रक्त की नदियाँ बहने लगी। स्वयं चण्डप्रद्योतन भी युद्ध-स्थल पर अनिलगिरि हस्ती पर सवार होकर शत्रुओं को थर्राता हुआ चला आया, चण्डप्रद्योतन का हाथी तीव्रगति से मण्डलाकार घूमता हुआ विरोधी दल को कुचलता हुआ उद्दण्डता से आगे बढ़ रहा था। उसके मद की गंध से विरोधी सेना के हस्तियों में भगदड़-सी मच गयी। राजा उदायन को उस स्थिति का पता चला तब उसने गंधहस्ती के पैर को तीक्ष्ण शर से बींध डाला। उदायन के तीक्ष्ण बाण की असह्य पीड़ा से वह धराशायी बन गया और चण्डप्रद्योतन जमीन पर गिर पड़ा। राजाओं ने उसको बंदी बनाकर उदायन को सौंप दिया। उदायन ने उसके सिर पर "मम दासी-पति" का पट्टा बाँध दिया।

उदायन बंदी बने चण्डप्रद्योतन को लेकर उज्जयिनी से वीतिभय की ओर रवाना हुआ। कुछ मार्ग तय किया कि रास्ते में ही **संवत्सरी**[क] का पर्व आ गया। तब राजा उदायन ने एक दिन पहले यात्रा को स्थगित कर अपना पड़ाव दशपुर नगर में ही डाल दिया। संवत्सरी की पूर्वसंध्या में ही उन्होंने चण्डप्रद्योतन को कहलवा दिया कि वे कल उपवास करेंगे अतएव तुम अपनी स्वेच्छानुसार भोजन तैयार करवा लेना।

चण्डप्रद्योतन ने सोचा कि शायद उदायन नरेश भोजन नहीं करने के बहाने मुझे विष देना चाहता है, अतएव उसने भी कह दिया कि मैं भी कल उपवास करूँगा। उदायन राजा **अष्टप्रहर**[ख] पौषध का प्रत्याख्यान कर सांवत्सरिक आराधना करने लगा। सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् उदायन राजा ने 84 लाख जीव-योनियों से क्षमायाचना करते हुए चण्डप्रद्योतन से भी क्षमायाचना का प्रसंग उपस्थित किया। तब चण्डप्रद्योतन ने कहा–"मम दासी-पति" के कलंक का पट्टा उतारो तभी वास्तविक क्षमायाचना होगी। उस समय तो उदायन ने पौषध में

(क) संवत्सरी–वर्ष भर में एक बार मनाया जाने वाला जैन त्यौहार यह चातुर्मास लगने के 50वें दिन मनाया जाता है।
(ख) अष्टप्रहर–सम्पूर्ण दिन रात

उस राजकीय कार्य को नहीं किया, लेकिन दूसरे दिन प्रातःकाल पौषध पार कर उसको बंदीपन से रिहा कर दिया, उसे सत्कार-सम्मान देकर मम दासी-पति का पट्टा हटाकर राज्य वापिस लौटा दिया एवं स्वर्णगुलिका को दहेज में दे दिया।[10]

उदायन का आरोहण :

राजा उदायन निरन्तर धार्मिक आराधना करते हुए श्रावक के बारह व्रतों का पालन कर रहा था। एक दिन वह पौषधशाला में पौषध करके बैठा हुआ था और अर्धरात्रि में धर्म-जागरण करते हुए इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए कि वे ग्राम[क], आकर[ख], नगर[ग], खेड़[घ], कर्बट[ङ], मडम्ब[च], द्रोणमुख[छ], पत्तन[ज], आश्रम[झ], संवाह[ञ] एवं सन्निवेश[ट] धन्य हैं, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विचरण करते हैं। वे राजा, तलवर, सार्थवाह आदि धन्य हैं जो परमपिता परमेश्वर प्रभु महावीर के सौम्य वदन के दर्शन कर उन्हें श्रद्धाभिषिक्त होकर वन्दन-नमस्कार करते हैं, उनकी पर्युपासना करते हैं। मेरे नेत्र भगवान् के दिव्य दीदार को देखने के लिए तरस रहे हैं, उनकी गम्भीर गिरा को श्रवण करने हेतु लालायित हैं, मन उनके सान्निध्य की समीहा में संपृक्त है, प्रभु से दूरीकरण मेरे लिए असहनीय है। अब मैं इस विरहाग्नि की तपन से त्रस्त हुआ सौम्य समागम की आकांक्षा संजो रहा हूँ। भगवान्............... वे तो घट-घट के ज्ञाता हैं, मेरी भावोर्मियों का प्रत्यक्षीकरण कर रहे हैं। वे यदि विचरण करते हुए यहाँ पधार जायें तो मैं उनके सान्निध्य में अपना सर्वस्व समर्पण कर डालूँ, अपने जीवन की घड़ियों को समुज्ज्वल बना डालूँ। इस प्रकार मिलन की पिपासा संजोये रजनी ने विदाई कब ली, पता ही नहीं चल पाया। भूपति उदायन पौषध पाल कर घर चले गये। शरीर से वे मिट्टी के घरौंदे में और भावों से स्वयं के घर में आने को समुद्यत हैं।

(क) ग्राम-जहां अठारह प्रकार का कर लिया जाता है।
(ख) आकर-लोहे आदि धातुओं की खानों में काम करने वालों के लिए बसा हुआ ग्राम।
(ग) नगर-जहां पर अठारह प्रकार का कर नहीं लिया जाता है।
(घ) खेड़-जहाँ मिट्टी का परकोटा हो, वह खेड़ या खेड़ा कहा जाता है।
(ङ) कर्बट-जहाँ अनेक प्रकार के कर लिये जाते है, ऐसा छोटा नगर या कस्बा।
(च) मडम्ब-जिस गाँव के चारों ओर अढ़ाई कोस तक अन्य कोई ग्राम नहीं हो।
(छ) द्रोणमुख-जहाँ जल एवं स्थल मार्ग से माल आता है, ऐसा नगर दो मुँह वाला होने से द्रोणमुख कहलाता है।
(ज) पत्तन-जहाँ जल पार करके माल आता हो, वह जल पत्तन तथा जहाँ स्थल मार्ग से माल आता हो वह स्थल पत्तन कहा जाता है।
(झ) आश्रम-जहाँ संयासी तपश्चर्या करते हो वह आश्रम एवं उसके आस-पास वसा हुआ गाँव भी आश्रम कहलाता है।
(ञ) संवाह-खेती करने वाले कृषक
(ट) सन्निवेश-यात्री के मुसाफिरी में रहने का स्थान

भीषण यात्रा :

भगवान् महावीर ने भी ज्ञानालोक में उदायन राजा के भावों को हस्तकमलवत्[क] देखा और अनुकम्पा से अनुरंजित होकर चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य से विहार कर सिंधुसौवीर जनपद के वीतिभय नगर की ओर स्वयं के चरण गतिमान कर दिये।

चम्पा से वीतिभय नगर सात सौ कोस[11] था और मौसम भी गर्मी का प्रारम्भ हो गया था। उस ग्रीष्मकालीन समय में मरीचिमाली अपनी उत्तप्त मयूखों से भूमण्डल को उत्तप्त बना रहा था। ताप से तपी हुई धरती मानो अंगार-सी जलने लगती थी। मार्ग में भीषण जंगल, दूर-दूर तक कोई गाँव परिलक्षित नहीं होता। कहीं झुग्गी-झोंपड़ी तक भी दिखाई नहीं देती और न ही तरुओं की कोई शीतल छाँव ही मिल पाती। उस मरुप्रदेश की भीषण गर्मी को सहन करना अत्यन्त असह्य था। ऐसी भीषण गर्मी में निरन्तर उग्र विहार प्रभु कर रहे थे। वे तो अतुल बलशाली और परम सहिष्णु थे, लेकिन उनके साथ गमन करने वाले साधक, वे भीषण गर्मी से संभ्रान्त चित्त वाले बन रहे थे। उन तप्त सड़कों पर नंगे पाँव चलने से पैर ऐसे जल रहे थे मानो अंगारों पर ही कदम रख रहे हों। दिनकर की उष्ण किरणों से लुंचन किया हुआ सिर तवे की तरह गरम हो रहा था। कंठ शुष्क बन रहे थे। प्यास मन को संत्रस्त कर रही थी, लेकिन दूर-दूर तक प्रासुक[ख] पानी मिलने का स्थान तक नजर नहीं आ रहा था। एक-एक क्षण पानी के बिना रह पाना अत्यन्त कठिन लग रहा था। क्षुधा ने भी अपना रूप दिखाना प्रारम्भ किया। भूख के मारे सारा गात्र शिथिल हो रहा था और एक कदम भी चलने का साहस जुटा पाना मुश्किल था। ऐसा लगता था कि अधिक समय तक इस प्रकार रहने से प्राण टिकना भी मुश्किल है। ऐसे समय में अणगारों के मन में ऐसा चिंतन चल रहा था कि कहीं प्रासुक अन्न-जल मिल जाये तो अपनी क्षुधा-पिपासा को शांत कर अपने प्राणों की रक्षा करलें।

उत्सर्ग का आश्रयण :

उसी समय तिल से भरी हुई अनेक गाड़ियाँ उन्हें आती हुई दृष्टिगत हुईं। शनैः-शनैः गाड़ियाँ एकदम सन्निकट आ गयी। उन गाड़ी वालों ने अणगारों की तरफ अपनी दृष्टि दौड़ाई और उन्होंने अनुकम्पा की दृष्टि से उनके चेहरे पढ़ लिये। भूख से क्लान्त वदन देखकर उन्होंने अणगारों से निवेदन किया—हमारी गाड़ियों में तिल भरे हुए हैं, आप इन तिलों को ग्रहण कीजिए।

अणगारों ने भगवान् महावीर से पूछा—भंते ! भूख से बेहाल बने हम प्राणों को धारण करने में समर्थ नहीं हैं। क्या हम इन तिलों को ग्रहण कर लें?

(क) हस्तकमलवत्-हाथ में रखे हुए आँवलों की तरह (ख) प्रासुक-अचित्त, जीव र

भगवान् यद्यपि जान रहे थे कि गाड़ी में भरे तिल अचित्त हैं, लेकिन फिर भी भगवान् ने अणगारों को तिल ग्रहण करने की अनुज्ञा नहीं दी, क्योंकि भगवान् जानते थे कि यदि मैं आज तिल ग्रहण करने की अनुज्ञा दे दूँ तो मेरा अवलम्बन लेकर मेरे शिष्य-प्रशिष्य भविष्य में सचित्त् तिलों को भी ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार व्यवहार नय को बलवान प्रख्यापित[क] करने हेतु भगवान् ने उन्हें तिल ग्रहण करने की आज्ञा नहीं दी।

समीप में अचित्त जल का ह्रद[ख] भी भरा था। प्यास से तड़फते हुए, प्राण के जाने के भय से अणगारों ने उस तालाब का पानी पीने हेतु भी भगवान् से अनुज्ञा माँगी, लेकिन भविष्य में सचित्त् जल-सेवन की परम्परा अणगारों में न हो जाये, इस हेतु उन्होंने उस तड़ाग का जल सेवन करने की भी अनुज्ञा नहीं दी।[12]

फलस्वरूप भूख-प्यासादि परीषहों से बाधित अनेक मुनि उस मार्ग में कालधर्म को प्राप्त हो गये[13], परन्तु उन्होंने "अपवाद मार्ग[ग]" का आश्रय नहीं लिया। संयम को प्रधानता देते हुए असंयम का पोषण करने की बजाय संयम में मरण श्रेष्ठ है, इस उच्च आदर्श को ख्यापित किया जो आज भी आकाशदीप की भांति साधुओं का पथ प्रशस्त कर रहा है।

कृषक दीक्षा :

संयम की अनुपालना का अनुशासनबद्ध तरीके से पालन करते हुए भगवान् महावीर वीतिभय की ओर बढ़ रहे थे। उग्र विहार करते हुए, भीषण परीषहों को सहन करते हुए निरन्तर प्रवास कर रहे थे।

एक दिन भगवान् की विहार-यात्रा चल रही थी। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक कृषक खेत की जुताई कर रहा था। उसकी गाड़ी में क्षीणकाय, जर्जरित शरीर वाले वृद्ध बैल जुते थे। अत्यन्त क्षीणकाय होने से वे सम्यक् तरह से हल नहीं चला पा रहे थे। इस कारण वह कृषक उन बैलों को अतीव निर्दयतापूर्वक पीट रहा था। इतना पीटता जा रहा था कि उन बैलों की चमड़ी भी छिल गयी और जबरदस्त मार से वे असह्य पीड़ा का अनुभव कर रहे थे।

करुणासागर भगवान् महावीर का हृदय करुणा से आप्लावित हो गया। उन्होंने अपनी करुणा बरसाते हुए गणधर गौतम से कहा—गौतम ! यह कृषक अत्यन्त रौद्ररूप धारण करके बैलों को पीट रहा है, तुम उसे जाकर प्रतिबोधित करो। भगवान् का आदेश प्राप्त कर गणधर गौतम उस खेत में पहुँचे, जहाँ किसान निर्ममता से बैलों को पीट रहा था। गौतम गणधर ने अत्यन्त मधुर

(क) प्रख्यापित–बतलाना (ख) ह्रद–तालाब
(ग) अपवाद–विशेष आपत्ति में ग्रहण योग्य मार्ग

शब्दों से किसान को सम्बोधित करते हुए कहा– भद्र ! तू कितनी निर्दयता से इन वृद्ध बैलों पर प्रहार कर रहा है ! इनको कितनी जबरदस्त पीड़ा हो रही है!

कृषक–अरे बाबाजी ! मैं जानता हूँ कि इनको अत्यन्त कष्ट हो रहा है। परन्तु ये जब चलते ही नहीं तब मैं काम कैसे करूँ? मेरे पास इतना पैसा भी नहीं कि मैं दूसरे बैल खरीद सकूँ। इनको नहीं जोतूँ तो मेरे परिवार का भरण-पोषण कैसे करूँ?

गौतम–अपने परिवार के सदस्यों के लिए मूक पशुओं पर प्रहार.............. कभी ये भी तुम्हारे पारिवारिक सदस्य थे.............. ये असहाय, दीन, मलिन हैं, तुम इन पर जरा करुणा तो रखो। ये करुण नेत्रों से दया की गुहार[क] कर रहे हैं। इन्होंने घास खाकर भी तुम्हें कितना धान्य, फल और फूल दिये हैं। ताप सहकर भी युवावस्था में दौड़-दौड़कर तुम्हारा काम किया है। ये वृद्धावय में आ गये, इनके स्कन्ध शिथिल पड़ गये, चमड़ी ढीली हो गयी, शक्ति अल्प हो गयी, तब इन पर तुम प्रहार कर रहे हो। तुम जरा सोचो तो सही। इनकी करुण दशा देखो तो सही। एक पेट पालने के पीछे इतना घोर पाप?

कृषक–तो तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ?

गौतम–अब तुम जीव मात्र पर दया करो।

कृषक ने गौतम गणधर की आँखों में झाँककर देखा तो वात्सल्य का सुषुप्त सागर उमड़ पड़ा। वह करुणा छलकते नेत्रों से देखता ही रहा और सोचने लगा–मैं भी इनके साथ चला जाऊँ तो.............. अच्छा रहेगा। हाँ, श्रेष्ठ रहेगा। यही सोच किसान बोला–भगवन् ! क्या मैं आप जैसा संत-जीवन अपना सकता हूँ?

गौतम–हाँ, जरूर। तब तुम समस्त जीवों के रक्षक बन जाओगे।

किसान–तब तुम मुझे दीक्षा दे दो।

गौतम गणधर ने उसे वहीं आर्हती[ख] दीक्षा प्रदान की और कहा–चलो, अब मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य के समीप।

किसान–मेरे तो धर्मगुरु आप ही हैं, अब किसके पास जाना है।

गौतम–तुम्हारे और मेरे, सबके वास्तविक गुरु भगवान् महावीर हैं। वे अनन्त ज्ञानी हैं। वे संसार के समस्त दृष्ट-अदृष्ट पदार्थों के ज्ञाता हैं। वे अतिशय प्रभाव वाले, जन-जन के नयन-सितारे हैं। अब उन्हीं के पास चलते हैं। ऐसा कहकर दोनों ने वहाँ से प्रस्थान किया।

चलते-चलते भगवान् के समीप पहुँच जाते हैं, लेकिन यह क्या.............. जैसे ही नवदीक्षित मुनि ने भगवान् को देखा, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी, मुँह

(क) गुहार–पुकार (ख) आर्हती–अरिहंतो द्वारा बतलाई गयी

का तेज निरस्त होने लगा मानो चन्द्र को राहु ने ग्रसित कर लिया हो। रोम-रोम कम्पित होने लगा, आँखें भयग्रस्त होकर चुंधिया गयीं और रोमकूपों से पसीना चूने लगा। अब क्या करूँ.............. कहाँ जाऊँ.............. मैं.............. मैं यहाँ नहीं रह सकता.............. एक क्षण भी नहीं.............. तब कैसे बोलूँ, क्या कहूँ.............. लेकिन बिना बताये जाना कायरता होगी.............. तब.............. तब.............. मेरे धर्मगुरु को कहता हूँ.............. (धीरे से गौतम गणधर के पास जाकर) मैं.............. मैं.............. इनके.............. पास नहीं जाऊँगा।

गौतम–ये तो मेरे धर्माचार्य हैं।

किसान–नहीं, मैं यहाँ नहीं रह सकता। मैं जाता हूँ.............. मैं जाता हूँ। यों कहकर वह भयक्रान्त होकर वहाँ से खिसक गया।[14] गौतम गणधर ने उसको समझाने के लिए पीछे देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये कि वह तो अपने खेत की ओर बेतहाशा भाग रहा था, जैसे नील गाय मानव को देखकर भागती है। तब गणधर गौतम प्रभु के पास आये और वन्दन-नमस्कार करके प्रभु से पृच्छा करने लगे–भंते ! आप जैसे अतिशयसम्पन्न महापुरुष को देखकर हर आत्मा खिंची चली आती है, जो भी आपश्री के चरणों में एक बार आता है वह परम शांति का अनुभव करता है। क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी आपके दर्शनों से शांत-प्रशांत बन जाता है। जन्मजात वैर-बंधन भी विनष्ट हो जाता है, लेकिन मुझे अत्यन्त आश्चर्य है कि जिस किसान ने प्रतिबोधित होकर संयम ग्रहण किया, वह किसान आपका मुखमण्डल देखते ही भयभीत होकर भाग गया। इसका क्या कारण?

भगवन्–यह सब कर्मों का ही खेल है। इस किसान के जीव की तुम्हारे साथ पूर्वबद्ध प्रीति है इसलिये तुम्हें देखते ही इसके मन में अनुराग पैदा हो गया और इसको सुलभबोधित्व[क] की प्राप्ति हुई। लेकिन मेरे प्रति अभी इसके मन में पूर्ववैर एवं भय की स्मृतियाँ अवशिष्ट हैं, इसलिए मुझे देखकर यह भयाक्रान्त बन गया।

गौतम–भगवन् ! यह आपके प्रति वैर और मेरे प्रति अनुराग किस भव से सम्बन्धित है।

भगवन्–गौतम ! जब मैं त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में राजकुमार था उस समय तुम मेरे प्रिय सारथि थे और इस किसान का जीव शेर-रूप में था। उस समय मैंने सिंह को पकड़ कर चीर डाला। तब वह तड़फने लगा कि मैं इतना शूरवीर होकर भी दूसरों के द्वारा मारा गया। तब तुमने अपने शीतल वचनों से उसकी तड़फन शांत करते हुए कहा–वनराज ! तुम क्यों ग्लान भाव का अनुभव

(क) सुलभबोधित्व-सम्यक्त्व

करते हो, तुम किसी सामान्य पुरुष द्वारा हताहत नहीं किये गये हो, तुम्हें मारने वाले नरसिंह हैं, अतः तुम शोक मत करो।

तुम्हारे इन प्रेमानुरागरंजित वचनों से सिंह को शांति का अनुभव हुआ और उसने प्रसन्नता से प्राणों का त्याग कर दिया। वही सिंह का जीव कालान्तर में किसान बना है।

तुम्हारे अनुरागमय वचनों की स्मृति के कारण इस किसान को तुम्हारे प्रति प्रीति और मैंने इसको मृत्यु के द्वार तक पहुँचाया इसलिए मेरे प्रति वैर का जागरण हुआ है।[15] इसी कारण मैंने तुमको किसान को प्रतिबोधित करने हेतु भेजा था। तुम्हारे से बोध प्राप्त कर उसने एक बार सम्यक्त्व का स्पर्श कर लिया है और वह एक दिन निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त करेगा।

गणधर गौतम प्रभु से वृत्तान्त श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया और तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

संयम की ओर चरण :

विहार-यात्रा अविराम गतिमान थी। भगवान् महावीर भीषण जंगलों की यात्रा करते हुए निरन्तर विहारचर्या में निरत बने हुए, मात्र भव्य जीवों को तिराने के लिए विकट पुरुषार्थ करते हुए उग्र विहार कर वीतिभय नगर पधार गये और वहाँ के मृगवन उद्यान में तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजने लगे।

वीतिभय नगर में जिधर देखा, उधर लोग झुण्ड के झुण्ड बनाकर भगवान् के पधारने की चर्चा कर रहे थे एवं उनके दर्शन, वंदन एवं प्रवचन-श्रवण हेतु जाने को लालायित बन रहे थे। समूह में एकत्रित होकर जनसमुदाय प्रभु के प्रवचन श्रवण हेतु गमनागमन करने लगे। प्रभु ने भी श्रोताओं की उपस्थित परिषद् में धर्म-गंगा प्रवहमान की।

'उदायन नरेश ने भी प्रभु के आगमन को श्रवणकर पूरे नगर को स्वच्छ बनवाया और गजारूढ़ होकर भगवान् के सामीप्य को प्राप्त कर पर्युपासना करने लगा। उसकी प्रभावती आदि प्रमुख महारानियाँ भी भगवान् महावीर की सन्निधि में पहुँच कर पर्युपासना करने लगीं।

भगवान् ने उस परिषद को धर्मकथा फरमायी जिसे श्रवण कर उदायन नरेश इस प्रकार कहने लगे –

भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है, मुझे अत्यन्त अभीष्ट लगा है। मैं अभीचिकुमार का राज्याभिषेक करके आपश्री की सन्निधि में मुंडित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

भगवान्–देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य अविलम्ब करो।

भगवान् के ऐसा फरमाने पर उदायन राजा हस्ती स्कन्ध पर आरूढ़ होकर राजमहल की ओर लौटने लगा। राजा उदायन स्वयं महल की ओर लौट रहा है और मन अनेक प्रकार की कल्पनाओं के जाल गूंथ रहा है।

वह अध्यात्म-विचारों से अनुप्राणित होकर चिंतन करता है कि अभीचिकुमार मेरा अत्यन्त प्यारा पुत्र है। उसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है और उसका दर्शन............... दर्शन, वह तो सुदुर्लभ है। यदि मैं अपने वात्सल्य की धरोहर अभीचिकुमार को राज्य-सिंहासन दे दूँ तब उसका अमूल्य जीवन क्षणिक, निःसार काम-वासनाओं में, प्रपंचों में, राजकीय व्यवस्थाओं में ही समाप्तप्रायः हो जायेगा। इन सांसारिक कार्यों को सम्पन्न करते हुए वह राग-द्वेष से ग्रसित होकर भीषणतम कर्मों का अनुबंध कर लेगा। इतने स्वल्प क्षणिक सुख के पीछे भीषण दुःख-परम्परा को वृद्धिंगत कर लेगा। फलतः वह चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहेगा। उसकी आत्मा शाश्वत शांति का अतिशीघ्र वरण नहीं कर पायेगी। तब मैं अपने पुत्र को राज्यलिप्सा के लालच में डालकर क्यों उसका मार्ग अवरुद्ध करूँ? यदि मैं उसे राज्य नहीं दूँगा तो वह राज्य से विरक्त बनकर एक-न-एक दिन अवश्यमेव भगवान् के सान्निध्य को प्राप्त कर संसार-कांतार को पार कर जायेगा।

मैं अभीचिकुमार का राज्याभिषेक नहीं करूँगा लेकिन उसके स्थान पर किसका अभिषेक करूँ.............. किसका अभिषेक करूँ..............हाँ, हाँ मेरे भानजे केशीकुमार को अभिषिक्त किये देता हूँ। इन्हीं विचारों को दृढ़ीभूत करते हुए उन्होंने केशीकुमार के राज्याभिषेक का निश्चय किया और इसी अन्तर्मन्थन को करते हुए वे राजमहलों में लौट गये। हाथी से उतरकर राजसभा में पूर्वाभिमुख होकर राज्य सिंहासन पर बैठ गये।

सिंहासनस्थ होकर नृपति ने आदेश देकर नगर को साफ-सुथरा करवाया। नगर के साफ-सुथरा होने पर उसने राज्याभिषेक की तैयारी करवाई और तैयारी करवा कर केशीकुमार को पूर्वाभिमुख श्रेष्ठ सिंहासन पर बिठलाया। वहाँ उसको सुवर्ण आदि कलशों से स्नान करवा कर समस्त राज्यचिह्नों के साथ बाजों के महानिनाद[क] के सहित राज्याभिषेक किया। तदनन्तर अत्यन्त गंध-काषायिक वस्त्र से उसके शरीर को पौंछा, गोशीर्ष मलराज का अनुलिम्पन किया एवं कल्पवृक्ष के समान वस्त्र एवं अलंकारों से शरीर को विभूषित किया।

तत्पश्चात् हाथ जोड़कर अनेक लोगों ने केशीकुमार को जय-विजय शब्दों

(क) महानिनाद–महाध्वनि

से वर्धापित किया और मधुर गिरा से आशीर्वचन कहते हुए यों कहा—आप परम दीर्घायु बनें और सदैव अपने इष्ट परिकर से परिवृत होकर सिंधुसौवीर सोलह जनपदों का, तीन सौ तिरेसठ नगर एवं आकरों का, मुकुटबद्ध महासेन प्रमुख दस राजाओं का एवं अन्य बहुत-से राजा, श्रेष्ठी, कोतवाल आदि पर आधिपत्य करते हुए राज्यधुरा का परिवहन करो।

राज्याभिषेक की रस्म सम्पूर्ण होने पर राजा उदायन ने नवाभिषिक्त नृपति केशीकुमार से दीक्षा ग्रहण करने की अनुज्ञा प्राप्त की। केशी नृप ने उदायन राजा को दीक्षा ग्रहण की अनुमति देने के पश्चात् सम्पूर्ण नगर को स्वच्छ करवाया और उदायन राजा के अभिनिष्क्रमण की तैयारी प्रारम्भ की।

उदायन को सुवर्णमय कलशों के गंधोदक से स्नानादि करवाकर उनको वस्त्रालंकार से परिमण्डित किया और उनकी अभिलाषानुसार नापित[क] को बुलाया जो कि उनके अग्र[ख] केशों का कर्तन करने लगा। सम्पूर्ण वर्णन जमालि की तरह जानना चाहिए।

अपने दुःसह प्रिय-वियोग के दुःख से व्यथित बनी महारानी पद्मावती ने राजा उदायन के अग्रकेशों को ग्रहण किया। तदनन्तर दूसरी बार उत्तर दिशाभिमुख सिंहासन रखवाकर उदायन का स्वर्ण आदि कलशों से स्नान करवाकर अभिषेक किया और वह शिविका पर समारूढ़ होकर भगवान् के पास पहुँचा। प्रभु को वन्दन-नमस्कार करके वह ईशानकोण में अलंकार-आभूषण परित्याग करने हेतु गया। उसके आभूषणादि को पद्मावती देवी ने ग्रहण करके उदायन से कहा—"स्वामिन् ! आप संयम मार्ग में अप्रमत्त भाव से पुरुषार्थशील रहें। यों कहकर राजा केशी और उनकी मामी, महारानी पद्मावती भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके लौट गये।

अभीचि का गमन :

उदायन के संयम ग्रहण करने के पश्चात् भगवान् वीतिभय से विहार करके विदेह-स्थित वाणिज्य ग्राम नगर पधारे और वहां वर्षावास किया। उदायन राजर्षि संयम का आनन्द से अनुपालन कर रहे हैं[16] और अभीचिकुमार राज्य नहीं मिलने के कारणों से अनभिज्ञ होने से क्षुब्ध बना हुआ है। एक दिन यामिनी के अन्तिम याम[ग] में कुटुम्ब जागरणा करते हुए उसके मन में इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए कि मैं उदायन का औरस[घ] पुत्र एवं महारानी प्रभावती का आत्मज हूँ। मैं अपने पिता के रहते हुए भी उनके समस्त राजकीय कार्यों में उनका

(क) नापित-नाई (ख) अग्र-बढे हुए बाल चार-चार अंगुल छोड़कर
(ग) अन्तिम याम-अन्तिम प्रहर (घ) औरस-उदर से जन्मा

सहयोग करता रहा हूँ फिर भी मेरे भुजबल एवं पौरुष का अपमान करते हुए मेरे पिता ने अपने भानजे केशीकुमार को राज्य देकर जनता के समाने मुझे अयोग्य साबित कर दिया है। यद्यपि मैं सदैव उनके पदचिह्नों पर चलने का प्रयास करता रहा, उनके प्रत्येक आदेश का अन्तःकरण से अनुपालन करता रहा, उनके इंगित-आकार को समझता रहा, लेकिन फिर भी मुझ निरपराधी के साथ यह रूक्ष व्यवहार, यह अपमान, यह तिरस्कार मैं स्वयं सहन करने में अशक्त हूँ, असमर्थ हूँ। तब क्या करूँ? इस तरह निन्दापात्र बनकर वीतिभय नगर में रहना तो अत्यन्त लज्जा का विषय है। अतएव मुझे वीतिभय नगर का परित्याग कर देना चाहिए।

यों सोचकर अभीचिकुमार अपने अन्तःपुर, परिवार सहित समस्त भोजन, शय्यादि सामग्री लेकर वीतिभय नगर से निकल गया और अनुक्रम से गमन करता हुआ अपने मौसेरे भाई चम्पानगरी के राजा कोणिक के पास चला गया और राजा कोणिक से अपनी मानसिक व्यथा सुनाई। राजा कोणिक ने अभीचिकुमार की व्यथा को सुनकर उसे अपने यहाँ आश्रय देकर विपुल भोग-सामग्री का स्वामी बना दिया।

वहाँ अभीचिकुमार जीवाजीव का ज्ञाता बनकर श्रमणोपासक योग्य व्रतों को ग्रहण करके भी उदायन राजर्षि के प्रति वैरानुबंध से युक्त था।

अभीचिकुमार ने बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर अन्तिम समय में अर्धमासिक संलेखणा संथारा कर वैरानुबंध की आलोचना प्रतिक्रमण किये बिना कालधर्म को प्राप्त करके रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों के परिपार्श्व में, जहाँ असुरकुमारों के चौसठ लाख असुरकुमारावास निरूपित किये गये हैं वहाँ आताप नामक असुरकुमारावासों में से किसी एक आताप नामक असुरकुमारावास में आताप-रूप असुरकुमार देव के रूप में एक पल्योपम की स्थिति से उत्पन्न हुआ है।

वह वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त बनेगा और परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा।[17]

विष दापन :

उदायन मुनि ने जिस दिन संयम ग्रहण किया उसी दिन से उन्होंने वेला, तेला, चोला, पंचोला आदि तप के द्वारा कर्मजल को शोषित करते हुए अपनी देह को भी शुष्क बना डाला।

शरीर तपस्या से एकदम क्लान्त हो गया। पाचनशक्ति कमजोर पड़ गयी। फिर भी साहस जुटाकर वे ग्रामानुग्राम विहार कर रहे थे। एक वार क्षुधा पीड़ित

होकर उन्होंने अपथ्य का सेवन कर लिया। तब उनके शरीर में महाव्याधि उत्पन्न हो गयी। उस असह्य व्याधि के शमन के लिए उन्होंने वैद्य का अवलम्बन लिया। वैद्य ने बतलाया कि यद्यपि आप विदेह साधक हैं तथापि रोगोपशांति के लिए दही का उपयोग करें। राजर्षि उदायन वहाँ से विहार करके, जहाँ प्रभूत गोधन था, वहाँ पधार गये और दही का सेवन करने लगे। वहाँ रहते हुए उदायन मुनि ने चिंतन किया कि वीतिभय नगर में मेरा भानजा केशी राज्य करता है, वहाँ प्रभूत गोधन है, इसलिए वहाँ चले जाना उचित है ताकि मैं दीर्घकाल तक दधिसेवन करूँगा तो किसी प्रकार का दोष नहीं लगेगा। ऐसा विचार करके वे ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वीतिभय पधार गये।

उदायन राजर्षि को वीतिभय की ओर आया हुआ जानकर मंत्रियों ने केशी राजा से निवेदन किया–राजन् ! तुम्हारा मामा उदायन तप से संत्रस्त होकर यहाँ आया है। इन्द्रपद समान राज्य का परित्याग करके अब उसके मन में पश्चात्ताप की अग्नि जल रही होगी कि हाय राज्य छोड़कर मैंने यह क्या किया? वह राज्य पुनः प्राप्त करने की लिप्सा से ही यहाँ आया है। इसलिए तुम उदायन का विश्वास मत करना।

केशीकुमार–अरे ! स्वयं का प्रदत्त राज्य वह पुनः ग्रहण करे, उसमें चिंता जैसी कोई बात नहीं है क्योंकि धनवान व्यक्ति अपना दिया हुआ धन ले भी ले तो उसमें देने वाले को क्या चिंता?

मंत्रीगण–हे राजन् ! तुमने प्रकर्ष[क] पुण्य के उदय से यह राज्य प्राप्त किया है। तुमको किसी ने राज्य दिया नहीं और राजधर्म तो है ही ऐसा कि इसे प्राप्त करने के लिए पिता, भाई, मामा आदि से बलात्कार करके भी प्राप्त कर लेते हैं। तब फिर दिये हुए राज्य का परित्याग करना उचित नहीं है।

इस प्रकार कुविचारों के पोषण से केशी के मन में भी मलिन भावनाओं का प्रवेश हो जाता है। सद्संस्कार प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना होता है, लेकिन कुसंस्कार तो स्वतः ही, शीघ्र ही, प्रादुर्भूत हो जाते हैं। इन्हीं कुसंस्कारों से आप्लावित राजा केशी उदायन के प्रति भक्ति का परित्याग कर देता है और मंत्रियों से पूछता है–अच्छा, तुम बताओ कि अब मुझे क्या करना चाहिए?

मंत्रीगण–राजन् ! शहर में उनको रुकने के लिए कोई स्थान नहीं देगा तो ठीक रहेगा।

केशीकुमार–हाँ, ऐसी ही उद्घोषणा करवा देता हूँ। यों कहकर केशीकुमार ने नगर में घोषणा करवा दी कि जो कोई उदायन मुनि को स्थान, भोजन देगा,

---

(क) प्रकर्ष–प्रबल

उनका सत्कार-सम्मान करेगा उसे राज्यद्रोही समझा जायेगा और कालान्तर में उसे मृत्युदंड दिया जायेगा।

जब लोगों ने यह घोषणा सुनी तो उनका मन तो बहुत था कि वे उदायन मुनि का सत्कार-सम्मान करें, लेकिन वे राजा की इस घोषणा से भयाक्रान्त बन गये। इधर उदायन मुनि विहरण करते हुए वीतिभय नगर आये। वे इतना दीर्घ विहार करते अत्यन्त थकान का अनुभव कर रहे थे। लेकिन जहाँ भी जाते वहाँ उन्हें ठहरने के लिए स्थान तक नहीं दिया गया। उनकी उस दयनीय हालत को देखकर एक कुम्हार के मन में करुणा उमड़ पड़ी और उसने सोचा कि मरना तो एक बार है ही। तब यदि मरते हुए प्राणी पर दया करने से कोई मार देता है तो वह मरना भी आनन्ददायी है। ऐसा सोचकर कुम्हार मुनि को स्थान दे देता है।

तब केशी के मंत्री राजर्षि उदायन को विष देने की सलाह देते हैं। तब केशी राजा किसी पशुपालक को बुलाकर उसे कहते हैं कि तुम्हारे यहाँ उदायन मुनि जब दधि लेने आये तब तुम उन्हें विषमिश्रित दही देना। पशुपालक राजा की बात को स्वीकार कर लेता है और राजर्षि उदायन को विषमिश्रित दही दे देता है।

अहो सौम्य समभाव :

उस समय उदायन के त्याग-तप से प्रभावित होकर एक देव उदायन के प्रति अनुरक्त था। उसे जैसे ही पता चला कि राजर्षि को दही में विष दिया गया, वह दही में से विष का हरण कर लेता है और राजर्षि से निवेदन करता है—देवानुप्रिय ! यहाँ आपको विषमिश्रित दही मिलेगा इसलिए आप दही की इच्छा मत करना।

उदायन मुनि ने देव के कथन को स्वीकार कर लिया, लेकिन कर्मोदय से पुनः रोग उनके शरीर में वृद्धिंगत होने लगा, जिसका उपशमन करने हेतु पुनः उदायन मुनि दही ग्रहण करते हैं तो देवता पुनः विष का हरण कर देता है। इस प्रकार तीन बार दही में से देव विष निकाल देता है। लेकिन चौथी बार जब मुनि के पात्र में दही आता है, देवता प्रमादवश विष हरण नहीं कर पाते और उसी विषमिश्रित दही को खाने से मुनि के पूरे शरीर में जहर व्याप्त होने लगता है। तब मुनि उसी समय अनशन ग्रहण कर लेते हैं।

एक मास का अनशन करके समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त करके उदायन मुनि केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर मोक्ष पधार जाते हैं। इधर उदायन मुनि पर भक्ति रखने वाले उस देव को अवधिज्ञान से पता चलता है कि वीतिभय निवासियों ने मुनि को विषमिश्रित आहार दिया, तब वह कालरात्रि की तरह वहाँ आता है और निरन्तर धूलि की वृष्टि करता रहता है। उदायन को आश्रय देने वाला, शय्या

देने वाला कुम्भकार, जो निरपराधी होता है, उसको वहाँ से हरण करके सिन्नपल्ली[vi] में ले जाता है। वहाँ 'कुम्भकारकृत' उसके नाम का नगर बसा देता है और उसे वहाँ रखता है। शेष वीतिभय नगर को धूल से ढककर तहस-नहस कर देता है।[18] इस प्रकार उदायन राजा ने अन्तिम राजर्षि के रूप में भगवान् के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण करके आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

एक प्रचलित कथानक के अनुसार जब कुम्हार के घर मुनि रहते हैं तो वह उपचार के लिए वैद्य को बुलाता है। राजा केशी को इस घटना का पता चलता है, तब राजा वैद्य को बुलाता है और कहता है कि तुम मुनि को पुड़िया में जहर मिला देना, मैं तुम्हें एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दूँगा। वैद्य कहता है—ठीक है। तब वैद्य मुनि को पुड़िया में जहर मिलाकर दे देता है। जैसे ही राजर्षि पुड़िया लेते हैं, उनके शरीर में विष व्याप्त होने लगता है। कुम्हार को पता चलता है कि वैद्य ने मुनि को जहर दे दिया। वह समझ जाता है कि पापी राजा ने ही वैद्य से जहर दिलवाया है, तब उसके मुख से अनायास निकलता है "अहो कष्टम्—अहो कष्टम्।" अरे पापी सम्राट् ने मुनि को जहर दिलवा दिया। उसी समय मुनि बोले—नहीं, नहीं राजा पापी नहीं है, पापी तो मैं हूँ जिसने राजा को राज्य रूपी विष दिया है। इस प्रकार समभाव से उदायन वेदना सहन कर मोक्षगामी बना।

उदायन का समभाव वर्णनातीत है। ऐसा समभाव धारण करने वाला आत्म-गुणों से समलंकृत बन सिद्धिसौंध में जाता है।

इति

टिप्पणी—उदायन राजर्षि को विष देने की घटना अभीचिकुमार के चम्पा में जाने के बाद की लगती है। चम्पा में जब अभीचिकुमार गया, उस समय तक श्रेणिक की मृत्यु हो चुकी थी, क्योंकि उस समय चम्पा का राजा कौणिक बतलाया है। अतएव श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् ही उदायन को विष दिया गया है, ऐसा संगत लगता है। तत्त्वं तु केवलीगम्यम्।

अनुत्तरज्ञानचर्या का पंचम वर्ष

टिप्पणी

I चम्पा

चम्पा और पृष्ठ चम्पा की निश्रा में महावीर ने तीन वर्ष चातुर्मास व्यतीत किये थे। चम्पा के पास पूर्णभद्र चैत्य नामक प्रसिद्ध उद्यान था, जहाँ महावीर ठहरते थे। चम्पा के राजा का नाम महावीर के समय दत्त और जितशत्रु मिलता है पर पिछले जीवन में चम्पा का राजा कूणिक था।

जैन सूत्रों में चम्पा को अंगदेश की राजधानी माना है। कोणिक ने जब से अपनी राजधानी बनाई तब से चम्पा अंग–मगध की राजधानी कहलाई। पटना से पूर्व में (कुछ दक्षिण में) लगभग 400 कोस पर चम्पा थी। आजकल इसे चम्पानाला कहते है यह स्थान भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम में है।

II वीतिभय

यह नगर महावीर के समय में सिन्धु–सौवीर देश की राजधानी थी। इसके बाहर मृगवन उद्यान था। महावीर चम्पा से विहार कर यहाँ आये थे और यहाँ के राजा उदायन को प्रव्रज्या देकर वाणिज्यग्राम जाकर वर्षाकाल बिताया था। पंजाब के भेरा गाँव को प्राचीन वीतिभय बताते हैं।

III उज्जयिनी

मालव अर्थात् अवन्ति जनपद की राजधानी उज्जयिनी एक प्राचीन नगरी है। भगवान् महावीर के समय यहाँ प्रद्योतवंशी महासेन चण्डप्रद्योत का राज्य था। वह वंश परम्परा से जैन धर्मानुयायी था।

IV उत्सर्ग और अपवाद मार्ग

उत्सर्ग मार्ग सामान्यमार्ग है, अतः उस पर हर किसी साधक को चलते रहना है। जब तक शक्ति रहे, उत्साह रहे, आपत्तिकाल मे भी किसी प्रकार की ग्लानि का भाव न आये, धर्म एवं संघ पर किसी प्रकार का उपद्रव न हो अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की क्षति का कोई विशेष प्रसंग उपस्थित न हो तब तक उत्सर्ग मार्ग पर ही चलना चाहिये, अपवाद मार्ग पर नहीं।

अपवाद मार्ग पर क्वचित् कदाचित् ही चला जाता है। अपवाद की धारा तलवार की धार से भी अधिक तीक्ष्ण है। इस पर हर कोई साधक, हर समय नहीं चल सकता। जो साधक गीतार्थ है, आचारांग आदि आचार संहिता का पूर्ण अध्ययन कर चुका है, निशीथ आदि छेद सूत्रों के सूक्ष्मतम मर्म का भी ज्ञाता है, उत्सर्ग और अपवाद पदों का अध्ययन ही नहीं अपितु स्पष्ट अनुभव रखता है, वही अपवाद के स्वीकार या परिहार के सम्बन्ध में ठीक–ठीक निर्णय

दे सकता है।

जिस व्यक्ति को देश का ज्ञान नहीं कि यह देश कैसा है? यहाँ की क्या दशा है? यहाँ क्या उचित हो सकता है और क्या अनुचित? वह गीतार्थ नहीं हो सकता (वृहतकल्पभाष्य 951, 952) आचार्य भद्रबाहु और संघदास ने गीतार्थ के गुणों का निरूपण करते हुए कहा है :– जो आय–व्यय, कारण–अकारण आगाढ़ (ग्लान)–अनागाढ़, वस्तु–अवस्तु, युक्त–अयुक्त, समर्थ–असमर्थ, यतना–अयतना का सम्यक् ज्ञान रखता है, और साथ ही कर्त्तव्य कर्म का फल परिणाम भी जानता है, वह विधिवेत्ता गीतार्थ कहलाता है।

अपवाद के सम्बन्ध में निर्णय करने का, स्वयं अपवाद सेवन करने का और दूसरों से यथापरिस्थिति अपवाद सेवन कराने का समस्त उत्तरदायित्व गीतार्थ पर रहता है। अगीतार्थ को स्वयं अपवाद के निर्णय का सहज अधिकार नहीं है। बिना कारण अपवाद सेवन अतिचार बन जाता है। इसी को स्पष्ट करते हुए व्यवहार भाष्य वृत्ति उ.10 गाथा 38 में कहा है :–

प्रतिसेवना के दो रूप हैं :– दर्पिका और कल्पिका। बिना पुष्ट आलम्बन–रूप कारण के की जाने वाली प्रतिसेवना दर्पिका है और वह अतिचार है तथा विशेष कारण की स्थिति में की जाने वाली प्रतिसेवना कल्पिका है, जो अपवाद है और वह भिक्षु का कल्प–आचार है।

निशीय – भाष्य (गाथा–466) में भी कहा है :– यदि मैं अपवाद का सेवन नहीं करूँगा, तो मेरे ज्ञानादि गुणों की अभिवृद्धि नहीं होगी इस विचार से ज्ञानादि के योग्य सन्धान के लिए जो प्रतिसेवना की जाती है, वह सालम्ब सेवना है।

यही सालम्ब सेवना अपवाद का प्राण है। अपवाद के मूल में ज्ञानादि सद्गुणों के अर्जन तथा संरक्षण की पवित्र भावना ही प्रमुख है।

निशीथ भाष्यकार (गाथा 485) ने ज्ञानादि साधना के सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण उल्लेख किया है :–

वहाँ पर कहा गया है कि जिस प्रकार अंधकार के गर्त में पड़ा हुआ मनुष्य लताओं का अवलम्बन कर बाहर तट पर आकर अपनी रक्षा कर लेता है, उसी प्रकार संसार के गर्त में पड़ा हुआ साधक भी ज्ञानादि का अवलम्बन कर मोक्ष तट पर चढ़ जाता है। सदा के लिए जन्म–मरण के कष्टों से अपनी आत्मा की रक्षा कर लेता है।

V उदायन

उदायन वीतिभय नगर का राजा था। 8 राजाओं ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ली थी उनमें एक उदायन भी था। महावीर के पास इन 8 राजाओं ने

दीक्षा ली थी :– 1. वीरांगक, 2. वीरयश, 3. संजय, 4. एणेयक, 5. राजर्षि, 6. श्वेत, 7. शिव, 8. उदायन (वीतिभयनगर का राजा)

VI सन्निपल्ली

यह गाँव पूर्व दिशा से सिन्धु देश की ओर जाते समय बीच में पड़ता था। इसके आस–पास का प्रदेश विकट मरूस्थल भूमि थी। जैन सूत्रों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि सिनपल्ली के मार्ग निर्जल और छायारहित थे। एक सूत्रोल्लेख है कि सिनपल्ली के दीर्घ मार्ग में केवल एक ही वृक्ष आता है। देवप्रभसूरि के पाण्डवचरित्र महाकाव्य में उल्लेख है कि जरासन्ध के साथ यादवों ने सिनपल्ली के पास सरस्वती नदी के तटपर युद्ध किया था और युद्ध में अपनी जीत होने पर वे आनन्दवश होकर नाचे थे, जिससे सिनपल्ली ही बाद में आनन्दपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुछ भी हो पर इससे यह तो निश्चित है कि सिनपल्ली मरूभूमि मं एक प्रसिद्ध नगर था जो बाद में आनन्दपुर के रूप में परिवर्तित हो गया था। जैन सूत्रों के अनेक उल्लेखों से उक्त बात का समर्थन होता है। हमारे विचारानुसार बीकानेर राज्य के उत्तरप्रदेश में अवस्थित "आदनपुर" नामक गाँव ही प्राचीन आनन्दपुर का प्रतीक हो तो आश्चर्य नहीं है।

पुरातत्ववेता, कल्याणविजयजी

अनुत्तर ज्ञानचर्या का प्रथम वर्ष

संदर्भ

1. क. आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुत स्कन्ध, अध्ययन 15, आ. शीलांक वृत्ति, प्रका. हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला, गुजरात, सन् 1980, पत्रांक 887।

   ख. दृष्टव्य : जिणधम्मो, आ. श्री नानेश, प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, तृ.सं. 2002, पृष्ठ 29।

   ग. नानेश वाणी, निर्ग्रन्थ परम्परा में चैतन्य-आराधना, आ.श्री. नानेश, भाग 47, प्रका. श्री अ.भा सा. जैन संघ, बीकानेर, द्वि.सं. 2006, पृष्ठ 10।

   घ. तीर्थंकर महावीर, युवा. श्री मधुकर मुनि, प्रका. सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, प्र.सं. 1974, पृष्ठ 181।

   ङ. श्री महावीर चारित्र, आ. गुणचन्द्र, सप्तम प्रस्ताव, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.सं. 1994, पृष्ठ 365।

   च. श्रमण भगवान् महावीर, पुरातत्ववेत्ता पं. कल्याण विजय, प्रका. श्री क.वि. शास्त्र संग्रह समिति, जालोर, प्र.सं. वि.सं. 1998, पृष्ठ 47।

   छ. तीर्थंकर महावीर भाग 1, श्री विजयेन्द्रसूरि, प्रका. काशीनाथ सराक, बम्बई (अन्धेरी) प्र.सं. 1960, पृष्ठ 252।

   ज. श्री महावीर कथा, सम्पा. गोपालदास जिवाभाई पटेल, प्रका. जैन साहित्य प्रकाशक समिति, अहमदाबाद, प्र.सं. सन् 1941, पृ. 207।

   झ. गणधरवाद, लेखक दलसुख भाई मालवणिया, सम्पा. महो. विनय सागर, प्रका. सम्यक्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, प्र. सं. सन् 1982, पृष्ठ 20।

   ञ. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, लेखक डॉ. नेमिचंद शास्त्री, प्रका. श्री भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत परिषद्, प्र.सं. सन् 1974, पृ. 180।

2. जीवाजीवाभिगम, तृतीय प्रतिपत्ति, आचार्य मलयगिरि वृत्ति, आगमोदय समिति, बम्बई, प्र.सं. सन् 1919, प्रत्रांक 394।

3. जीवाजीवाभिगम, वही, पत्रांक 398-99।

4. प्रज्ञापनोपाङ्गम्, पूर्वार्द्ध, आ. मलयगिरि, आगमोदय समिति, बम्बई, सन 1918, पत्रांक 101।

5. वृहत्संग्रहणी, लेखक चन्द्रसूरि, अनु. श्री यशोदेव सूरि, प्रका. श्री मुक्ति कमल मोहन जैन ज्ञान मंदिर, प्र.सं. 1993, वैमानिक अधिकार, गाथा 109-10, पृ. 289।

6. जीवाजीवाभिगम, आ. मलयगिरि, तृतीय प्रतिपत्ति, वही, वैमानिक उद्देशक, पत्रांक 386-87।

7. वही, पत्रांक 395।
8. आवलिय विमाणाणं तु अन्तरं नियमसो असंखिज्जं। संखिज्जमसंखिज्जं, भणियं पुप्फावकिण्णाणं।

वृहत्संग्रहणी, वैमानिक निकाय, गाथा 99।

9. क. वृहत्संग्रहणी सूत्र, वैमानिक निकाय, गाथा 92–126, पृ. 273–301।
 ख. त्रिलोकसार, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, हिन्दी अनुवाद, प्रका. श्री शांतिवीर दिगम्बर जैन संस्थान, श्री महावीर जी, प्र.सं. वीर निर्वाण संवत 2501, पृ. 405–19।
 ग. श्रीमत् भगवती सूत्र, द्वितीयो विभाग, अभयदेव सूरि, आगमोदय समिति, मुम्बई, सन् 1919, पत्रांक 507।
 घ. श्री राजप्रश्नीयसूत्र, आ. मलयगिरि, आगमोदय समिति, सन् 1925, पत्रांक 59–90।
10. क. श्री भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, 10, 6 वही, पत्रांक 506।
 ख. श्रीमत् राजप्रश्नीय सूत्र, आ. मलयगिरि, वही, पत्रांक 59–90।
 ग. वृहत्संग्रहणी, वैमानिकाधिकार, गाथा 96, पृष्ठ 275।
11. क. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, वही–10, 6, 506–7।
 ख. राजप्रश्नीयसूत्र, युवा. श्री मधुकर मुनि, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, द्वि.सं. सन् 1991, पृष्ठ 96।
12. क. जैन तत्त्व प्रकाश, श्री अमलोक ऋषि, प्रका. श्री अमोलक जैन ज्ञानालय, धूले, उन्नीसवां सं. सन् 2005, पृ.6।
 ख. द्रष्टव्य–प्रश्नों के उत्तर, द्वितीय भाग, श्री ज्ञानमुनि, जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना, प्र.सं., वि.सं. 2021, पृ. 650।
13. क. गणधरवाद, लेखक–दलसुख भाई मालवणिया, सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, पृष्ठ 20।
 ख. श्रमण भगवान् महावीर, पुरातत्ववेत्ता पं. कल्याण विजयजी, वही, पृष्ठ 48।
 ग. तीर्थंकर महावीर, भाग–1, विजयेन्द्र सूरि, पृष्ठ 256।
 घ. उप्पन्नंमि अणंते नट्ठम्मि अ छाउमत्थिए नाणे।
 राईए संपत्तो महासेण वणम्मि उज्जाणे।।538।।
 आवश्यकसूत्र, पूर्व भाग, आ. मलयगिरि, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1928, पत्रांक–300।
14. उवसग्ग गब्भहरणं इत्थीतित्थं अभाविया परिसा।

कण्हस्स अवरकंका, उत्तरणं चंदसूराणं।
हरिवंसकुलुप्पत्ति चमरूप्पातो य अट्ठसय सिद्धा।
अस्संजतेसु पूआ, दसवि अणंतेण कालेण।
स्थानांग, हस्तलिखित, संवत् 1656, सेठिया ग्रन्थालय, बीकानेर।

15. क. आवश्यक सूत्र, पूर्व भाग, मलयगिरि वृत्ति, पत्रांक 300।
    ख. श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजयजी, पृष्ठ 48।
    ग. तीर्थंकर महावीर, भाग–1, श्री विजयेन्द्र सूरि, पृष्ठ 256।
    घ. श्री महावीर चरित्र, आ. गुणचन्द्र, अष्टम प्रस्ताव, पृ. 366।
16. क. श्री आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1932, पृष्ठ 30।
    ख. महावीर चरित्र, गुणचन्द्र, अष्टम प्रस्ताव, पृ. 366।
    ग. अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग 7।
17. रायप्पसेणियम्, पं. बेचरदास जीवराज दोशी, वि.सं. 1994, प्रका. शंभुलाल जगशीशाह, गांधी रस्तो, अहमदाबाद, पृष्ठ–52–58।
18 क. आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, आ. मलयगिरि, पृष्ठ 301–302।
    ख. महावीर चरित्र, आ. गुणचन्द्र, पृष्ठ 366।
19. क अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग 7।
    ख. आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि, पृ. 301–303।
    ग. महावीर चरित्र, आ. गुणचन्द्र, पृ. 366–67।
20. क. जिणधम्मो, आ. श्री नानेश, प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, तृ.सं. सन् 2002, पृ. 15।
    ख. जैन तत्व प्रकाश, श्री अमोलक ऋषि, प्रका. अमोलक जैन ज्ञानालय, ध ुले, पृ.11।
    ग. दृष्टव्य :– महावीर स्वामी और दीवाली, श्री गजाधरलाल जैन, प्रका. जैन धर्म प्रचारिणी सभा, काशी, सन् 1912, पृ.11।
21. क. अभियान राजेन्द्र कोष, भाग–7।
    ख. आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि, पत्रांक 301–6।
    ग. महावीर चरित्र, आ. गुणचन्द्र, पृष्ठ 367–68।
    घ. त्रिषष्टिश्लाकापुरूष चारित्र, आ. हेमचन्द्र। पुस्तक 7, पर्व 10, सर्ग 5, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.सं. 1960, पृ. 105–7।
22. भगवान् महावीर, लेखक–विराट, प्रका. अनुपम प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. सन्

1975, पृ. 46।
23. तीर्थंकरों का सर्वोदय मार्ग, लेखक डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, प्र.सं. सन् 1974, प्रका. लाला प्रेमचंद जैन, दरियागंज, दिल्ली, पृ. 28।
24. क. प्रश्न व्याकरण, अभयदेव सूरि, आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1919, पत्रांक 5।
ख. भगवान् महावीर का दिव्य संदेश (प्रथम भाग) श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम, तृ.सं. सन् 1931, पृ. 10-11।
25. क. प्रश्न व्याकरण, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 14-23।
ख. सन्मति महावीर, सुरेश मुनि, प्रका. सम्मति ज्ञान पीठ, आगरा, द्वि.सं. 1966, पृ. 73-75।
ग. भगवान् महावीर के पाँच सिद्धान्त, श्री ज्ञान मुनि, प्रका. आ. आत्माराम जैन प्रकाशनालय, लुधियाना, प्र.सं. वि.सं. 2015, पृ. 32-33।
घ. आचारांग चूर्णि, जिनदास गणि, श्री ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर संस्था रतलाम, 1941, पत्रांक 7-40।
26. क. आचारांग सूत्र, श्री शीलांकाचार्य वृत्ति, प्रथम श्रुत स्कन्ध, प्रका. हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला, गुजरात, सन् 1978, पत्रांक 53-54।
ख. जीवाजीवाभिगम, मलयगिरि, वही, पत्रांक 106-9।
ग. प्रज्ञापना, मलयगिरि, पूर्वार्द्ध, वही, पत्रांक 79-83।
घ. श्री भगवतीसूत्र, द्वितीय भाग, आ. अभयदेवसूरि, 13, 4, 604-5।
27. सूत्रकृतांग, आ. शीलांक, आगमोदय समिति, सूरत, सन् 1917 पत्रांक 121-41।
28. क. भगवान् महावीर और विश्व शांति, श्री ज्ञान मुनि, प्रका. आत्माराम जैन प्रकाशनालय, लुधियाना, चतु. सं., वि.सं. 2017, पृ. 34-35।
ख. महावीर निर्वाण और दीवाली, श्री फकीरचंद जी महाराज, प्रका. श्री मूल जी गांडालाल मेहता, कलकत्ता, प्र.सं. 1984, पृ. 4-5।
ग. भगवान् महावीर की अहिंसा और महात्मा गांधी, लेखक-पृथ्वीराज जैन, प्रका. श्री आत्मानंद जैन टैक्स्ट सोसायटी, अम्बाला, वि.सं. 2006, पृ. 2-3।
घ. तीर्थंकर महावीर, प्रो. महेन्द्र कुमार जैन, हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी, पृ. 4-5।
ङ. वर्धमान महावीर, श्री कृष्णदत्त भट्ट, प्रका. सन्मति ज्ञान-पीठ, आगरा, प्र. सं. सन् 1975, पृ. 42।
च. भगवान् महावीर के हजार उपदेश, श्री गणेश मुनि शास्त्री, प्रका. अमर

जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर, प्र.सं. 1973, पृ. 11।

29. महावीर री ओलखाण, डॉ. शान्ता भानावत, प्रका. अनुपम प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1975, पृ. 56–57।

30. महावीर के सिद्धान्त और उपदेश, उपा. अमर मुनि, प्रका. सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, प्र.सं. 1960, पृ. 32–33।

31 क. गणधरवाद, दलसुख भाई मालवणिया, पृ. 66–67।

ख. भगवान् महावीर, मूलचंद, प्रका. चैतन्य प्रिंटिंग प्रेस, बिजनौर, सन् 1931 पृ.7।

ग. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, आ.श्री हस्तीमलजी म.सा., भाग–2, प्रका. जैन इतिहास समिति, जयपुर, प्र.सं. 1974, पृ. 7–8।

32 गणधरवाद, दलसुख भाई मालवणिया, वही, पृ. 66–67।

33 क. महावीर शासन, श्री ललित–विजय जी, प्रका. आत्म–तिलक ग्रन्थ सोसायटी, पूना, वि.सं. 1978, पृ. 10।

ख. तीर्थंकर चारित्र, बालचंदजी श्रीश्रीमाल, भाग 2, पृ. 218।

34 त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, आ. हेमचन्द्र, सर्ग 10, वही, पृ. 108–9।

35 क. यह वेद वाक्य आवश्यक टीका में से लिया गया है। वृहदारण्यकोपनिषद् में यह वाक्य इस रूप में मिलता है "विज्ञान धन एवैतेभ्यो भूतेभ्यो समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञा स्तीत्वरे ब्रवीति होवाच याज्ञवल्क्यः।"

वृहदारण्यकोपनिषद् 12–938।

ख. श्री आवश्यक सूत्र, मलयगिरिवृत्ति, द्वितीय भाग, पत्रांक 314।

36 क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही–पृ.110।

ख. गणधरवाद, दलसुख माणवणिया, वही, पृ. 1–28।

37. क आचारांग चूर्णि, वही, पत्रांक 363–64।

ख. स्थानांग, प्रथमोविभागः, अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, सन् 1918, तृतीय स्थान।

ग. वृहत्कल्प सूत्र भाष्य, निर्युक्ति भद्रबाहुस्वामी, भाष्यकार संघदास गणि, चतुर्थ विभाग, तृतीय उद्देशक, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, सन् 1933, पृ. 1067–75।

38 क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 110।

ख. श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजयजी, वही, पृ. 54।

39 क. श्री आवश्यक सूत्र, मलयगिरि, द्वितीय भाग, पत्रांक 321।

ख. वाजसनेयीसंहिता (40–5) ।

ग. ईशावास्योपनिषद् में "वदेजति तन्नैजति, तद्दूरे, तदन्तिके। तदनंतरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।" यह वाक्य है।

घ. वाजसनेयी संहिता (32–2) श्वेताश्वरोपनिषद् 249 और पुरूष सूक्त में पुरूष एवेदं सर्व यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति, पाठ मिलता है।

40 क. विशेषावश्यक भाष्य, भाग–2, गणधरवाद, दिव्यदर्शन ट्रस्ट, बम्बई।

ख. श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजय जी, पृ. 54–58।

41. षड्दर्शन समुच्चय, श्री हरिभद्रसूरि, सम्पा. महेन्द्र जैन, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, आगरा, तृ.सं. 1989, पृ. 45।

42. प्रमाणनय तत्वालोक, वादिदेवसूरि, प्रका. केशवलाल लल्लूभाई झवेरी, अहमदाबाद, वि.सं. 2026, द्वितीय परिच्छेद।

43 क. स्याद्वादमञ्जरी, रचनाकार हेमचन्द्राचार्य, टीका–मल्लिषेणसूरि, प्रका. परमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगास, सन् 1979, सारिका 20, पृ. 194–95।

ख. विश्व ज्योति महावीर, उपा. अमर मुनि, प्रका. सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, द्वि. सं. संवत् 2028, पृ.3।

44. श्री नंदीसूत्र, मयलगिरि वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1924, पत्रांक 3–6।

45. श्री गणधरवाद, विमलगणिकृत।

46. विशेषावश्यक भाष्य, भाग 2, प्रका. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, मुम्बई, वि.सं. 2039।

47. आवश्यकसूत्र, मयलगिरि, द्वितीय भाग, वही, पत्रांक 327–28।
छिन्नंमि संसयंमी जाइजरामरणविप्पमुक्केण।
सो समणो पव्वइओ, पंचहिं सह खंडियसएहिं।। गाथा 616।

48. प्रमाण मीमांसा, हेमचन्द्राचार्य, प्रका. त्रिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, अहमदनगर, प्र.सं. वीर सं. 2496, पृ. 29।

49. तीर्थंकर महावीर, भाग 1, विजयेन्द्र सूरि, पृ. 298–306।

50. अपाम सोमममृता अन्नूभागमन् ज्योतिरविदाम देवान्। किमस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मृत्ये च–। ऋग्वेद संहिता 8–4, 8–3, अथर्वशिर उपनिपद्–3।

51. आवश्यकसूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि वृत्ति, पत्रांक 330–31।

52. भगवतीसूत्र, तृतीय विभाग, अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, सन् 1921, पत्रांक 909।

53. त्रिपष्टिशलाकापुरूपचारित्र, वही पृ. 113।

54. क. रत्नाकरअवतारिका, आ. रत्नप्रभ, सम्पा. दलसुखभाई मालवणिया, भाग

3, प्रका. लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, प्र.सं. सन् 1969, पृ. 72-84।

ख. Lord Mahavira and his times, Kailash Chandra Jain, Motial Banarsidass Delhi, F.E. 1974, Page -102.

55 क. त्रिषष्टिश्लाकपुरूषचारित्र, वही, पृ. 114-15।

ख. आवश्यकसूत्र, वही, पत्रांक 334-37।

56. क. सन्मति महावीर, सुरेश मुनि, पृ. 94-95।

ख. जेल में मेरा जैनाभ्यास, सेठ अचलसिंह, अचल ग्रन्थ-माला, आगरा, प्र.सं. सन् 1935, पृ. 36।

57. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 114।

58. श्री महावीर चरित्र, आ. गुणचंद, अष्टम प्रस्ताव, पृ. 377।

59 क. जवाहर किरणावली, सती वसुमति, आ. श्री जवाहर, भाग-2, प्र.सं. 1993, प्रका. जैन जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, पृ. 191-92।

ख. तीर्थंकर महावीर, श्री मधुकर मुनि, पृ. 140, वि.सं. 2031।

60. जवाहर किरणावली, सती वसुमति, वही, पृ. 193।

61. क. जवाहर किरणावली-नारी जीवन, आ.श्री जवाहर, प्रका. श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर, तृ.सं. सन् 1980, पृ. 2।

ख. जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व, भाग-2, लेखक मुनि नथमल, सम्पा. छगनलाल शास्त्री, प्रका. मोतीलाल बेगाणी चेरिटेबल ट्रस्ट, कलकता, प्र. सं. 1960, पृ. 6।

62 वशिष्ट धर्मसूत्र, 8, 14।

63 स्मृति चन्द्रिका व्यवहार, पृ. 254।

64 अत्रिस्मृति 136-137।

65 महावग्ग, पृ. 41।

66 साधुभन्ते, लभेय्य मातुगामो तथागतप्पवेदितं धम्म-विनये आगारस्या अनगारियं पव्वज्जंति। अलं गोतमि, मा ते रूञ्चि मातुगामस्स पव्वज्जा ति।" चुल्ल वग्ग, पृ. 273। प्रका. नालन्दा-देवनागरी पाली ग्रन्थमाला, बिहार, 1956।

67. अथ खो महापजापति गोतमी केस छेदायेत्वा कासायनि अत्थानि वच्छादेत्वासम्बहुलाहि साकियानीहि सद्धिं येन वेसाली तेन पक्कामि।

वही, चुल्लवग्ग, पृ. 373।

68. स चे, भन्ते, भव्वो मातुगामो तथागतप्पवेदिते, धम्म-विनये आगारस्मा अनगारियं पव्वजित्वा अरहत्तफलं ति सच्छिकातुं बहूपकारा, भन्ते, महापलापती गोतमी ...

साधु, भंते, लभेय्य मातुगामो ... पवज्जं।।

चुलवग्ग पृ. 374

69 क. स चे आनन्दे नालभिस्स मातुगामो पव्वज्जं, चिरट्ठितिकं आनन्द, ब्रह्मचरियं अभविस्स ... यस्मिं धम्मविनये लभति मातुगामो ... पवज्जं, न तं ब्रह्मचरियं चिरट्ठितिकं।

चुल्लवग्ग, पृ. 376–77।

ख. जैन धर्म और दर्शन, मुनि नथमल, सम्पा. छगनलाल शास्त्री, प्र.सं. 1960, प्रका. मन्नालाल सुराणा, कलकत्ता, पृ. 37–39।

70. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, श्री शांतिचन्द्रवृत्ति, द्वितीय वक्षस्कार, देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् 1920, पत्रांक 146।

71. तित्थं पुण चाउवन्नाइन्ने समणसंघो तं, समण समणीओ, सावया सावियाओ, भगवती 28, 8, 682 उद्धृत :- भगवान् महावीर एक अनुशीलन, आ. देवेन्द्र मुनि, पृ. 417।

72. क. तस्य तीर्थंकर नामकर्म विपाकोदयप्रभवत्वात्, उक्त चं तं च कहं वेइज्जइ? अगिलाए धम्म देसणाए इति, श्री प्रज्ञापना सूत्र, मलयगिरि, पत्रांक 1।

ख. वैशाली के राजकुमार, तीर्थंकर वर्धमान महावीर, डॉ. नेमिचंद जैन, हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर, च. सं. सन 1996, पृ. 18–19।

73. क अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं सासणस्स हियट्ठाय, तओ सुत्तं पवत्तेई। आ. निर्युक्ति, गाथा 192।

ख. भगवता अत्थो भणिता, गणहरेहिं गंथो कओ वाइयो च इति। आ. चूर्णि, जिनदास, पत्रांक 334।

ग. इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्ते।
समवायांग, अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, सन् 1918, सूत्र 136, पत्रांक 106–7।

74 क से जहाणामए अज्जो! मम नव गणा एगारस गणधरा, श्री स्थानांग सूत्र, प्रथम विभाग, आगमोदय समिति, सन् 1918, सूत्र 9।

ख. अभिधान चिंतामणि, हेमचन्द्राचार्य, देवाधिदेव काण्ड, श्लोक 31 प्रका. देवचंद लालभाई, सन् 1946, पृ.5।

75 भगवती सूत्र, तृतीय विभाग, अभयदेवसूरि, वही, शतक 25, 6।

76 जैन तत्व प्रकाश, पृ. 25–35।

77 जिणधम्मो, वही, पृ. 35।

78 क आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 192, पृ. 79।

ख. दृष्टव्य–श्री गणधर सार्द्धशतकम्, श्री जिनदत्तसूरि, प्रका. श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान भण्डार, सूरत, सन् 1944, पत्रांक 6–7।

79 क. श्रीमत् ज्ञाताधर्मकथांग, अभयदेववृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पत्रांक 123।

ख. विशेषणवती, जिनभद्र क्षमाश्रमण, प्रका. श्री ऋषभदेव जी केशरीमल जी संस्था, रतलाम, सन् 1927, पत्रांक 8।

80. समवायांग सूत्र, श्री अभयदेव सूरि, आगमोदय समिति, सन् 1918, पत्रांक 60–62।

81 समवायांग, वही, पत्रांक 63–64।

82 जिणधम्मो, वही, पृ.11।

83 क. समवायांग, वही, पत्रांक 61–62।

ख. श्री औपपातिक सूत्र, अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, सन् 1916, सूत्र 34, पृ. 78।

ग. जैन धर्म दर्शन, डॉ. मोहनलाल मेहता, प्रका. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, सन 1973, पृ. 14।

84. अलंकार तिलक 1/1।

85 प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 33।

86 निशीथ चूर्णि 11, 3618।

87 प्राकृत साहित्य का इतिहास, डॉ. जगदीश चन्द्र जैन, पृ. 427–28।

88 वृहत्कल्प भाष्य भाग–1 की वृत्ति गाथा 1231 में मगध, मालव, महाराष्ट्र, लाट, कर्णाटक, गौड़, विदर्भ आदि देशों की भाषाओं को देशी भाषा कहा है।

89 क. भगवती वृत्ति 5/4।

ख. औपपातिक वृत्ति, वही सूत्र 34, पृ. 148।

90. स्थानांग, अभयदेव, वही, स्थान 10।

ख. आवश्यक सूत्रस्योत्तरार्ध (पूर्व भागः) भद्रबाहु निर्युक्ति भाष्य, हरिभद्रसूरि वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1917, पृ. 539।

92 विशेषावश्यक भाष्य 1974।

93 त्रिषष्टिशलाका, वही, पृ. 105।

94 महावीर चरित्र, गुणचन्द्र, सप्तम प्रस्ताव, वही, पृ. 365।

95 चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, आ. शीलांक, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, सन् 1961, पृ. 299–303।

96 तओ णं समणं भगवं महावीर उप्पण्णणाण दंसण धरे अप्पाणे च लोगं च

अभिसमेक्ख पुव्वं देवाणं धम्ममाइक्खति तओ पच्छा मणुस्साणं, आचारांग 3, 15, 41।

97 दृष्टव्य :- बौद्ध साहित्य का लंकावतार सूत्र।

98 दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त, पृ. 16-22, हिन्दी अनुवाद।

99 भागवत पुराण 10, 2, 40।

100 क. समवायांग, अभयदेववृत्ति, वही, सूत्र 147, पृ. 129-32।
ख नंदीसूत्र, देववाचक, मलयगिरि वृत्ति, आगमोदय समिति, सन 1924, सूत्र 57, पृ. 235-54।

101 समवायांग, अभयदेववृत्ति, वही, पृ. 42।

102 कल्पसूत्र, भद्रबाहु, समयसुंदरगणिवृत्ति, प्रका. श्री जिनदत्तसूरि पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, सन् 1939, पृ. 211-14।

103 आवश्यकचूर्णि, भाग 1-2, रतलाम।

104 आवश्यक निर्युक्ति, 369।

105 आवश्यकवृत्ति, मलयगिरि, भाग-III, आगमोदय समिति, सन् 1916, पृ. 596-601।

106 चउपन्नमहापुरिस चरियं, आ. शीलांक (सम्पूर्ण)।

107 त्रिषष्टिश्लाकापुरूष चारित्र (सम्पूर्ण)।

108 Agama Aura Tripitaka : Eka Anuslana, Muni Shri Nagarajaji, Today and Tomarrow's Printers and Publishers, Delhi, 1986, Volume I, Page-79.

109 अनेक विद्वान इसे वीर निर्वाण 960 की रचना मानते हैं परन्तु वह शास्त्र लेखन का समय है, रचना का नहीं।

110 मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, श्री गौरीचंद हीराचंद ओझा, सन् 1951, पृ. 13।

111 भगवती सूत्र, प्रथमो विभागः, अभयदेवसूरिवृत्ति, 5, 9, सूत्र 227, पत्रांक 248।

112 मज्झिमनिकाय 56, अंगुत्तर निकाय।

113 सूत्रकृतांग चूर्णि, जिनदासगणि, श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी श्वेताम्बर संस्था, सन् 1941, पृ. 117-186।

114 क औपपातिक, अभयदेव वृत्ति, आगमोदय समिति, सन 1916, पत्रांक 9-22।
ख विश्व इतिहास की झलक, जवाहरलाल नेहरू, प्रका. सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि.सं. 1952, पृ. 35।

115 उत्तराध्ययन, शान्त्याचार्य, वृहद्वृत्ति, प्रका. देवचन्द लालभाई, सन् 1917, पत्रांक 473।

116 उत्तराध्ययन, नेमिचंद, दिव्यदर्शन ट्रस्ट, बम्बई, 20, 34, पृ. 179-80।
117 दीघनिकाय 3, 11, पृ. 312-13।
118 तिलोयपण्णत्ति, यति वृषभाचार्य विरचित, सम्पा. आदिनाथ उपाध्याय, हीरालाल जैन, प्रथम भाग, शोलापुरीयो जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सन् 1943; 4, 54, पृ. 209।
119 प्रश्नव्याकरणवृत्ति, अभयदेवसूरि, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पृ.99।
120 श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजय जी, पृ. 74।
121 श्रेणिक चारित्र के अनुसार, श्रेणिक राजा की माता का नाम कलावती था।
122 त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 116-18।
123 सुलसा चारित्र, जयतिलकसूरि विरचित, सर्ग 2-3, श्री जैन विद्याशाला, अहमदाबाद, सन् 1899।
124 क त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही पृ. 121-23।
ख श्री महावीर कथा, सम्पा. गोपालदास जीवाभाई पटेल, पृ. 232-36।
125 क यहां वर्णन त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र के अनुसार है लेकिन श्रेणिक चारित्र एवं जैन कथा माला भाग 37 में नंदीग्राम का वर्णन है, अतएव वहीं से दृष्टव्य है।
ख. महावीर कथा, वही, पृ. 236-39।
126 श्रेणिक रास एवं श्रेणिक बिम्बिसार में भरत चित्रकार का उल्लेख है तथा सुज्येष्ठा के स्थान पर चेल्लना का चित्र बनाया, ऐसा उल्लेख मिलता है। जैन कथामाला, युवा. श्री मधुकर मुनि, भाग 7, पृ. 47।
127 जैन कथामाला, युवा. श्री मधुकर मुनि, प्रका. मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर, द्वि. सं. 1986, सप्तम भाग, पृ. 48। दृष्टव्य : जैन धर्म का मौलिक इतिहास, भाग-2, पृ. 256।
128 क. महावीर कथा, वही, पृ. 239।
ख. जैन कथा, भाग 37, उपा. श्री पुष्कर मुनि, तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, पृ. 78-93।
129 क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही. पृ. 130-3।
ख. जैन कथा, 37, वही, पृ.93-95।
130. क. सुलसाचारित्र, वही, सर्ग 3, पृ. 73।
ख. भगवान् महावीर, लेखक-कामता प्रसाद, प्रका. मूलचंद किशनलाल कापड़िया, सूरत, प्र.सं. वीर संवत् 2450, पृ. 142।
131 क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 131।

ख. सुलसाचारित्र, वही सर्ग 5।

32 निरयावलिका, प्रथम वर्ग, प्रथम अध्ययन, चन्द्रसूरि विरचित वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1922, पत्रांक 9–12।

33 ज्ञाताधर्मकथांग, अभयदेव वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पत्रांक 12–38।

34 वही, पत्रांक 38।

35 मेघकुमार, प. छोटेलाल यति, प्रका. जीवन कार्यालय, अजमेर, सन् 1934, पृ. 24।

36 जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वितीय वक्षस्कार, श्री शांतिचन्द्र वृति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1920, पृ. 136–37।

37. जैन धर्म का इतिहास, लेखक मुनि सुशील कुमार, अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स भवन, दिल्ली, सन् 1958, पृ. 194–95।

38 क. उत्तराध्ययन, भावविजयजी, प्रका. श्री जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, सन् 1918, पृ. 410–11।

ख. उत्तराध्ययन (काव्यमय) मुनि वीरेन्द्र, प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, अध्ययन–20।

39 क. दशवैकालिक, टीका उपा. श्री आत्माराम जी म.सा., सम्पा. अमरमुनिजी, प्रका. श्री ज्वालाप्रसाद माणकचंद जैन, महेन्द्रगढ़, सं. 1989, पत्रांक 808।

ख. दशवैकालिक सावचूरि, आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज, प्रका. राव बहादुर मोतीलाल बालमुकुन्द मुथा, सतारा, प्र.सं. पृ. 254।

ग. उत्तराध्ययन, भावविजयजी, वही, पत्रांक 411।

40 क. हरिभद्रीय आवश्यक, वन्दनाध्ययन, पत्रांक 518।

ख. प्रवचनसारोद्धार, पूर्वभाग, आ.श्री नेमिचंदजी, प्रका. देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, गाथा–103–123।

ग. जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, श्री भैरोदान सेठिया, प्रका. सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, प्र.सं. वि.सं. 1997, पृ. 357–363।

41 क. उत्तराध्यन, शान्त्याचार्य, वही, पत्रांक 466–81, सन् 1917।

ख. उत्तराध्ययन, नेमिचन्द जी, प्रका. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, मुम्बई, पृ. 178–82।

42 त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही 10,6, 8।

43 भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल, पृ. 62।

44. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, पृ. 65।

145 जैन धर्म का मौलिक इतिहास, आ.श्री हस्तीमल जी म.सा., भाग–2, पृ. 256।

146 जैन कथा माला, भाग–7–8, लेखक युवा. मधुकर मुनिजी, पृ. 9–10।

147 वही, पृ. 10।

148 दशाश्रुतस्कन्धसूत्र, टीका. श्री घासीलाल जी महाराज, प्रका. अ.भा.श्वे. स्था. जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट, द्वि.सं. सन् 1960, पृ. 332–365।

149 ज्ञाताधर्मकथांग, अभयदेववृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पत्रांक 46। इन्द्रादि महोत्सवों के लिए द्रष्टव्य ग्रन्थ।

<u>इन्द्रमहोत्सव</u> :–

क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, पर्व 1, सर्ग 6, श्लोक 214–15।

ख. वासुदेवहिण्डी, पृ. 184।

ग. निशीथचूर्णि, पत्रांक 1174।

घ. वृहत्कल्प लघुभाष्य, प्रका. श्री जैन आत्मानंद सभा, सन् 1938, भाग–5, श्लोक 5153, पृ. 1371।

ङ आवश्यक चूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र 315।

<u>स्कन्द महोत्सव</u>: –

क. वृहत्कल्प, भाग–4, गाथा 3465, पृ. 967।

ख. आवश्यकचूर्णि, पूर्व भाग, जिनदास महत्तर, प्रका. श्री ऋषभदेवजी, केशरीमल जी संस्था, रतलाम, सन् 1928, पत्रांक 315।

<u>रूद्रमह</u> :–

क. निशीथचूर्णि, पत्रांक 236।

ख. व्यवहार भाष्य, भाग 7, सप्तम उद्देशक, प्रका. वकील केशवलाल, प्रेमचंद, अहमदाबाद, गाथा 313।

<u>मुकुन्दमह</u> :–

आवश्यक चूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्रांक 293–94।

<u>शिवमह</u> :–

क. वृहत्कल्पसूत्र (लघुभाष्य), सटीक, भाग–1, वही, पृ. 253 की पाद टिप्पणी।

ख. वृहत्कल्पसूत्र (लघुभाष्य), पंचम विभाग, श्लोक 5928, पृ. 1563।

<u>वेसमणमह</u> :–

जीवाजीवाभिगम, तृतीयप्रतिपत्ति, मलयगिरिवृत्ति, पत्रांक 281।

<u>नागमह</u> :–

वासुदेव हिण्डी, पृ. 304–5।

त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, पर्व-2, सर्ग 5-7।

<u>यक्षमह</u> :-

जक्खपिसाय महोरग गंघव्वा साम किंनरा नीला।
रक्खस किंपुरूसा वि य, धवला, भूया पुणो काला।।
चन्द्रसूरि प्रणीत संग्रहणी गाथा 39, पृ. 109।

<u>भूतमह</u> :-

उत्तराध्ययन 36/205।

150. व्याख्याप्रज्ञप्ति, शतक 14, 8, अभयदेववृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पत्रांक 654-55।

151. जम्बद्वीपप्रज्ञप्ति, प्रथम वक्षस्कार, पूर्व भाग, प्रका. देवचन्दलालभाई जैन पुरत्तकोद्धार समिति, सन् 1920, पृ. 74।

152. क श्रुत्वा तां देशना, भर्तुः सम्यक्त्वं श्रेणिकोऽम्मयत्।
श्रावकधर्मं त्वभयकुमाराद्याः प्रपेदिरे।।
त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र 10, 6, 376।

ख. जैन कथामाला, भाग 7-8, वही पृष्ठ 169।

विशेष विवरण हेतु दृष्टव्य :- आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, पृ. 310-18।

153. क दशाश्रुतस्कन्ध मूलनिर्युक्तिचूर्णि, श्रीमणिविजयजी ग्रन्थमाला, भावनगर, वि.सं. 2011, पत्रांक 88।

ख. पञ्चाशक, हरिभद्रसूरि, अभयदेववृत्ति, जैन धर्म प्रसारक सभा, भावपुर, सन् 1912, पत्रांक 247-49।

154. क. श्रीदशाश्रुतस्कन्ध, श्री घासीलालजी म.सा., वही, पृ. 366-448।

ख. मानव अधिकार संहिता (या शांत सुधानिधि), मुद्रक-युनियन प्रिंटिंग प्रेस कम्पनी लिमिटेड, अहमदावाद, सन 1698, पृ.20।

155. समवायांग, अभयदेववृत्ति, आगमोदय समिति, सन् 1918, पत्रांक 158-59।

156 क. ज्ञाताधर्मकथांग, अभयदेवसूरि, पत्रांक 97-59।

ख. जिनागम कथा संग्रह, सम्पा. वेचरदास दोशी, जैन साहित्य प्रकाशान, ट्रस्ट, अहमदावाद, द्वि.सं. 1940, पृ. 35-38।

ग. भगवान् महावीर, विराट, पृ. 56।

घ. जैन धर्म का इतिहास, मुनि सुशील कुमार, प्रका. सम्यक्ज्ञान मंदिर, कलकत्ता, संवत् 2016, पृ. 73।

157. भगवान् महावीर का आध्यात्मिक हित वोध एवं हित शिक्षाएं आदि का संकलन, संकलनकर्ता-आनन्दमल चोरड़िया, अजमेर, प्र.सं. 1974, पृ. 40-41।

158 संगीत श्री मेघकुमार, चन्दनमुनि जी, जैन पुस्तक प्रकाशन समिति, गीदड़ बाहमण्डी पंजाब, प्र.सं. 2029, पृ. 46।

159 क ज्ञातधर्मकथांग, वही, पत्रांक 60–71।
 ख सद्धर्ममण्डन, अनुकम्पाधिकार, आ.श्री जवाहर, प्रका. श्री अ.भा. सा. जैन संघ, बीकानेर, द्वि.सं., सन् 1966।
 ग. अनुकम्पा विचार, ढाल पहली, प्रका. धन्नोमल कपूरचंद जौहरी, दिल्ली, वि.सं. 1989।

160 क. आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र 559।
 ख. आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र 171।
 ग. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, 10, 6, 408–439।
 घ. चतुर महावीर, लेखक–स्वामी सत्यभक्त, प्रका. सत्याश्रम वर्धा इतिहास, संवत, 1944, 133–42।
 ङ हरिभद्रीय आवश्यकवृत्ति, पूर्वार्द्ध पत्रांक 430–31।

161 वृहत्कल्पसूत्र, उद्देशक 3, दृष्टव्य–निशीथ सूत्र, उद्देशक–16।

162 वृहत्कल्पसूत्र उद्देशक–3।

163 दशवैकालिक चूर्णि, जिनदास महत्तर, श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् 1933, पृ. 112।

164 क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 142–44।
 ख. जैन कथामाला, युवा. श्री मधुकरमुनि, अष्टमभाग, वही, पृ.110।
 ग. जैन कथाएं, भाग–37, पृ. 188–95।

165 त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 145–49।

166 त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 150।

167 क. वही, पृ. 225–26।
 ख. श्रमण महावीर, आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, सन् 2003, पृ. 237–42।

168 त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 226–31।

अनुत्तरज्ञानचर्या का द्वितीय वर्ष

संदर्भ

1 क. आचारांग, द्वितीयश्रुत स्कन्ध, आ. शीलांका, अध्ययन 15।
ख. कल्पसूत्र, देवेन्द्रमुनिजी, सूत्र-7, पृ.43।
ग. आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्रांक 236।
2. भगवतीसूत्र, द्वितीयो विभाग, अभयदेवसूरि, पत्रांक 456।
3. क. व्याख्याप्रज्ञप्ति, अभयदेव सूरि, प्रका. हीरालाल हंसराज जैन भास्करोदय प्रेस, जामनगर पत्रांक 243, शतक 2 उद्देशक 5।
ख. श्री भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेववृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1919, 9, 33, पत्रांक 457।
ग. श्रीराम उवाच, आ. श्री रामलाल जी म.सा., प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, भाग-7, प्र.सं.2006, पृ. 117।
4. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयेदवसूरि, वही पत्रांक 460।
5. क. भगवतीसूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, वही, पत्रांक 460-61।
ख. महावीर-चरित्र, आ. गुणचंद, अष्टम प्रस्ताव, वही, पृ. 380-82।
ग. त्रिषस्टिश्लाकापुरूशाचारित्र, वही, पृ. 163-64।
6. क. स्थानांग, अभयदेवसूरि, उत्तरार्द्ध, श्री आगमोदय समिति, सन् 1918, पत्रांक 410।
ख. उत्तराध्ययन, शान्त्याचार्य, वही, पत्रांक 53।
ग. उत्तराध्ययन, नेमिचंदवृत्ति, पृ. 69।
घ. इदैव भरतक्षेत्रे कुण्डलपुरं नाम नगरम्। तत्र भगवतः श्री महावीरस्य भागिनेयो जमालिनाम राजपुत्र आसीत्।
विशेधावश्यकभाष्य, पत्र 935।
ङ. कुण्डपुरं नगरं, तत्थ जमालि सामिस्स भाइणिज्जो।
आवश्यक हारिभद्रीय, पत्रांक 312।
7. क. तस्य भार्या श्री म. महावीरस्य दुहिता।
विशेपावश्यकभाष्य. सटीक, पृ. 935।
ख. तस्य भज्या साहिमणो धूओ।
उत्तराध्ययन, नेमिचंद 69।
8. क भगवती सूत्र, अभयदेववृत्ति, वही, पत्रांक 471।
ख. श्री आचारांग सूत्रम, शीलांकाचार्य, हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रन्थ माला, गुजरात,

सन् 1978, प्रथम विभाग, प्रथम अध्ययन।

ग. दशवैकालिक चूर्णि, जिनदास, सन, 1933।

घ. आचारांग चूर्णि, जिनदास, श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् 1941, प्रथम उद्देशक पृ. 165–205।

ङ. श्री पिण्डनिर्युक्ति, भाष्यकार–भद्रबाहु, मलयगिरिवृत्ति, देवचंदलाल भाई, सन् 1918, पत्रांक 32–40।

च. ओघ निर्युक्ति, श्रीभद्रबाहु स्वामी, देवचन्दलालभाई, सन् 1974, पत्रांक 262–70।

छ. जीतकल्प सूत्र, जिनभद्रगणि, प्रका. गिरधरलाल पारख, अहमदाबाद, वि. सं. 1994, गाथा 35।

9. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, पत्रांक 475।

10. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 164–65।

ख. महावीरचारित्र, आ. गुणचन्द्र, अष्टम प्रस्ताव, वही, पृ. 391।

11. भगवती सूत्र, अभयदेववृत्ति, द्वितीय विभाग, पत्रांक 461, 9,33।

12. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 164।

ख. महावीर चारित्र, आ. गुणचन्द्र, वही, पृ. 384।

13. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, पृ. 164।

14. महावीरचारित्र, आ. गुणचन्द्र, पृ. 391।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का तृतीय वर्ष

संदर्भ

1. क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ.।
   ख. श्री महावीर कथा, वही, पृ. 280-82।
2. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, सर्ग 8, पृ. 171-73।
3. श्री भगवतीसूत्र, द्वितीयो विभाग, अभयदेववृत्ति, वही, पत्रांक 558।
4. उदयन को विपाकसूत्र में हिमाचल की तरह महान प्रतापी राजा बतलाया है। विपाकसूत्र, 1, 5।
5. भगवतीसूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, वही, पत्रांक 558-61।
6. महावीर कथा, वही, पृ. 285।
7. क. वही, पृ. 285।
   ख. श्रमणभगवान् महावीर, श्री कल्याण विजयजी, पृ. 85।
   ग. अन्तगड़ अनुत्तरोववाइयदसाओ, पृ. 34 (एन.पी. वैद्य द्वारा सम्पादित) उद्धृत भगवान् महावीर एक अनुशीलन, आ. देवेन्द्र मुनि, वही, पृष्ठ 435।
8. तीर्थंकर महावीर, लेखक-मधुकर मुनि, पृ. 169, वही।
9. श्री उपासक दशाङ्सूत्र, आ. श्री आत्माराम जी म.सा., प्र.सं. 1964, प्रका. आ. श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना, पृ.9।
10. क. उपासकदशांग, युवा. श्री मिश्रीमल जी महाराज, प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, सन 1980, पृ. 5-25, प्रथम अध्ययन।
    ख. द्रष्टव्य :- वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्धमान महावीर, डॉ. नेमिचंद जैन, प्रका. श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर, प्र.सं. 1972, पृ. 216।
11. क. उपासकदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 10-12।
    ख. गृहस्थधर्म भाग 1, 2, आ. श्री जवाहर, श्री जवाहर साहित्य प्रकाशन समिति, भीनासर।
12. उपासकदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 13।
13. वही, पत्रांक 13।
14. क. जिणधम्मो, 681-86।
    ख. उपासकदशांक, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 17-22।
15. जिणधम्मो, वही पृ. 621-24।
16. उपासकदशांग श्री घासीलाल जी, प्रथम अध्ययन।

17. उपासकदशांग, श्री आत्मारामजी म.सा., वही, पृ. 57।
18. क. जिणधम्मो, वही, पृ. 650-62।
 ख. उपासकदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 33-34।
19. क. उपासकदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 35-42।
 ख. प्रवचनसारोद्धार, संस्कृत व्याख्या, श्री नेमिचंद जी, प्रथम भाग, देवचंदलाल भाई जैन पुस्तकोद्धार, पत्रांक-76-76।
20. उपासकदशांग, आ.श्री आत्माराम जी म.सा., पृ. 68-87, दृष्टव्य-धर्म और धर्मनायक, आ.श्री जवाहर, तृ.सं. वि.सं. 2041, पृ. 176-78।
21. उपासकदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 63-64।
22. उपासकदशांग, आ.श्री आत्मारामजी, पृ. 87-103।
23. श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजयजी, पृ.85।
24 क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 231-32।
 ख. जैना कथाएँ, भाग 38, पृ. 83-85।
25. धन्नाशालिभद्र चौपाई, रमणलाल शाह, प्रका. रमणलाल शाह, बम्बई, प्र.सं. 1983, पृ. 152-54।
26. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 234-35।
 ख. जैन कथाएँ, भाग-38, उपा. पुष्कर मुनि, वही, पृ. 96।
27. धन्ना शालिभद्र चौपाई, वही, पृ. 154-55।
28. जैन कथाएँ भाग-1, उपाध्याय पुष्कर मुनिजी, प्रका. तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, द्वि.सं. सन् 1990, पृ. 1-70।
29. क. शालिभद्रचारित्र, आ.श्री जवाहर, प्रका. जवाहर समिति, भीनासर, च.सं. 2036, पृ. 63-103।
 ख. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 218।
30. क. जैन कथाएँ, भाग-1, वही, पृ. 74।
 ख. धन्य शालिभद्र महाकाव्यम्, पूर्णभद्रगणि विरचिता प्रका. श्री जिनदत्त सूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार, सूरत, वि.सं. 1991, तृतीय सर्ग।
31. शालिभ्रद चारित्र, आ. श्री जवाहर, वही, पृ. 120-29।
32. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 235-40।
 ख. जैन कथाएँ, भाग 41, पृ. 142-52।
 ग. धम्मपद, अट्ठकथा।
33. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 240।
34. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 241।
 ख. जैन कथाएँ, भाग-38, पृ. 99-122।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का चतुर्थ वर्ष

संदर्भ

1. भगवान् महावीर एक अनुशीलन, आ. श्री देवेन्द्र मुनि जी, प्रका. श्री तारक गुरू जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, सन् 1974, पृ. 439-42।
2. श्री भगवती अवचूरि, श्री देवचंदलाल भाई, प्र.सं. 1974, पत्रांक 76।
3. क. वही, श्री भगवती अवचूरि पृष्ठ 76।
   ख. भगवतीसूत्र, अभयदेववृत्ति, प्रथमोविभाग, पत्रांक 499।
4. क. भगवती, अभयदेवसूरि, प्रथम विभाग, वही, पत्रांक 499।
   ख. प्रवचन सारोद्धार, भाग-2, ले. नेमिचंदसूरि, श्रीमती हरकोरचतुर्भुज, पालीतणा, सन् 1922, पत्रांक-437-38, द्वार 154।
   ग. जीवसमास प्रकरण, मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि, आगमोदय समिति, सन्-1927, पत्रांक 94-109।
5. क. वही, पत्रांक 202-05।
   ख. श्री अनुयोगद्वाराणि, मल्लधारी हेमचन्द्र सूरि, प्रका. आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1924,पत्रांक 160-63।
6. जैन कथामाला, युवा. श्री मधुकर मुनि, भाग-13, द्वि.सं. 1988, पृ. 34।
7. क. उपदेश माला, सटीक, गाथा 20, पत्र 256।
   ख. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, भाग-1, पत्र 107।
   ग. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 318।
8. शालिभद्रचारित्र, आ.श्री जवाहर, वही, पृ. 140।
9. धन्यशालिभद्र महाकाव्यम्, वही, सर्ग 4, पत्रांक 55-56।
10. शालिभद्र चारित्र, आ.श्री जवाहर, वही, पृ. 20।
11. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, सर्ग 10, पृ. 219।
12. शालिभद्रचारित्र, वही, पृ. 210।
13. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 220।
14. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 220।
    ख. शालिभद्रचारित्र, वही, पृ. 244।
15. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 220।
    ख. धन्यशालिभद्र महाकाव्य, सर्ग-4।
16. जैन कथाएँ, भाग-1, पृ. 74।
17. वही, पृ. 135।
18. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 222।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का पंचम वर्ष

संदर्भ

क. विपाकसूत्र, अभयदेवसूरि, प्रका. श्री सिद्ध क्षेत्रस्थ-मोहन विजय, जैन पुस्तकालय, पाछियापुरा, वि.सं. 1976, पत्रांक 115।

ख. प्रवज्या के विस्तृत विश्लेषण हेतु दृष्टव्य :-
पञ्चवस्तुक, लेखक हरिभद्र सूरि, प्रका. देवचन्द्र लालभाई, सन् 1927, पत्रांक 1-18।

ग. उपासगदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 92-94।

घ. उपासगदशांग, आ.श्री. आत्माराम जी म.सा., पृ. 161।

ङ. तीर्थंकर महावीर, युवा. श्री मधुकर मुनिजी, पृ. 174-75।

क. पन्नवणासूत्त स्तोक मंजूषा, भाग-।, प्रका. अगरचंद भैरोदान सेठिया, बीकानेर, तृ.सं. 2007, पृत्र 12।

ख. बौद्ध साहित्य जातक (जातक हिन्दी अनुवाद, भाग-4, पृ. 139) दिव्यावदान, पृ. 544, महावस्तु (जौंस अनुदित) भाग-3, पृ. 204, में सिन्धु सौवीर राजधानी 'सेरूवा' (रूख) बतलाई है।

भगवती, द्वितीय भाग, अभयेदववृत्ति, 13, 6, वही, पत्रांक 618।

क. उत्तराध्ययन, भावविजयगणि, पत्रांक 381।

ख. आवश्यकचूर्णि, उतरार्द्ध, पत्रांक 164।

क. प्रभावती देवी समणोवासिया, आव. चूर्णि पत्रांक 399।

ख. उत्तराध्ययन, नेमिचन्द्र वृत्ति, पत्रांक 253।

ग. उत्तराध्ययन, भाव विजयजी वृत्ति, 18,5, पत्रांक 380।

उद्दायण राया तावस भत्तो, आवश्यक चूर्णि, पत्रांक 399।

उत्तराध्ययन, भावविजयजी वृत्ति, 18, 84, 383।

त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 251।

प्रश्न व्याकरण, चतुर्थ अधर्मद्वार, अभयदेववृत्ति, आगमोदय समिति, बम्बई 1819, पत्रांक 89-90।

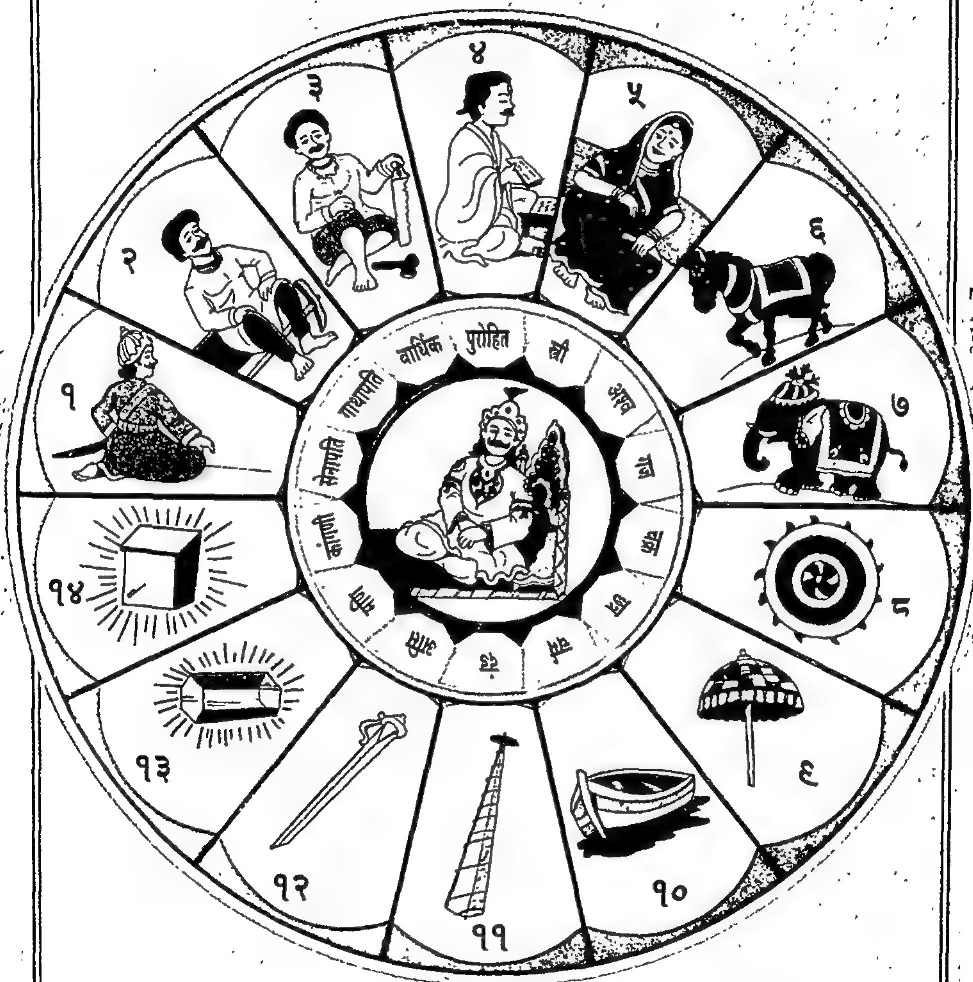
क. प्रेरणा की दिव्य रेखाएँ, आचार्य श्री नानेश, प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, सन् 1979।

ख. प्रश्नव्याकरण, युवा. श्री मधुकर मुनिजी, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, द्वि.सं. 1993, पृ. 278-79।

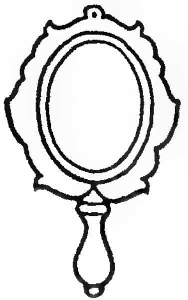
ग. प्रश्नव्याकरण, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 89-90।

11. क. भगवान् महावीर एक अनुशीलन, वही, पृ. 450।
ख. Agama Aura Tripitaka : Eka Anuselana, Muni Shri Nagarajaji, Volume I, Page-311.
12. वृहत्कल्पलघुभाष्य, भद्रबाहुवृत्ति, भाष्यकार संघदासगणि, द्वितीय-विभाग, प्रथम उद्देशक, भाग-2, गाथा 997-99, पृ. 314-15, प्रका. श्री जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, सन् 1936।
13. Agama Aura Tripitaka : Eka Anuselana, Volume I, Page-311
14. महावीर चारित्र, आ. गुणचन्द, अष्टमप्रस्ताव, पृ. 435।
15. महावीर चारित्र, आ. गुणचन्द, अष्टमप्रस्ताव, वही, पृ. 435।
16. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेव सूरि, पत्रांक 620।
17. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेव सूरि, वही, पत्रांक 620।
18. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, पृ. 262-63, सर्ग-12।

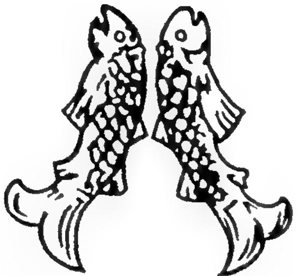
चउद्दसरयण-१४ रत्न.



आधार-अर्द्धमागधी शब्द कोष



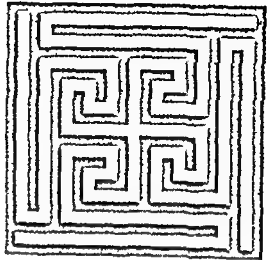
दर्पण

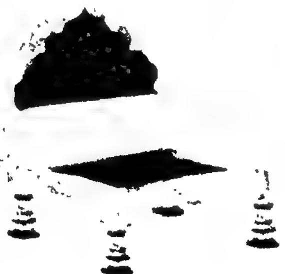


मस्त्यजुगल



श्रवत्स

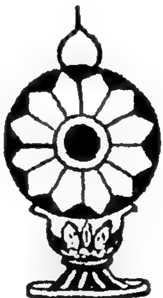




भद्रासन



कुंभ



संपुट



स्वस्तिक

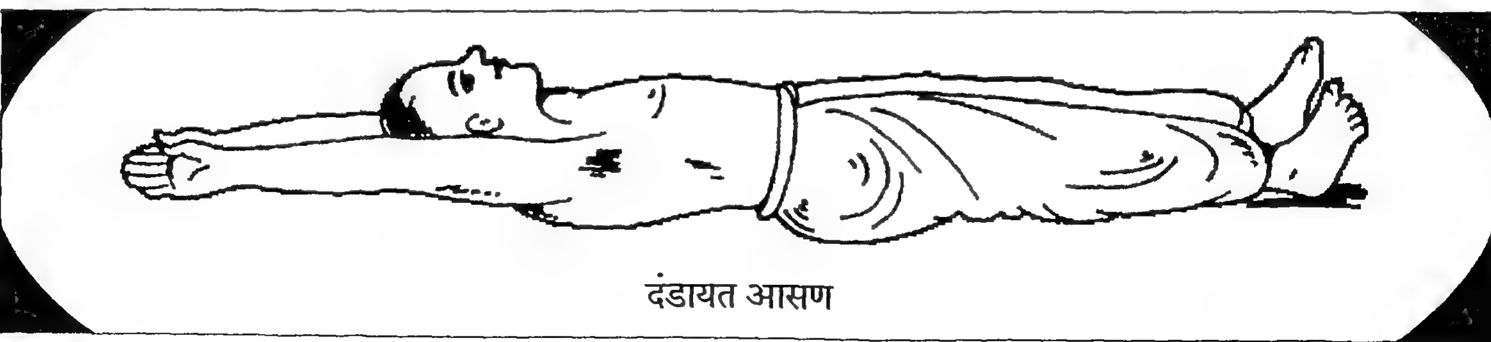
अट्ठमंगल–आठ मंगलिक

आधार–अर्द्धमागधीशब्द कोष


घीरासण


हक्कुडुय आसण


गोदोहिया आसण

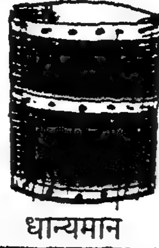

दंडायत आसण

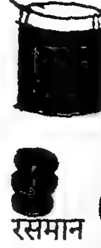
आधार-अर्द्धमागधीशब्द कोप

१. मापा-मान



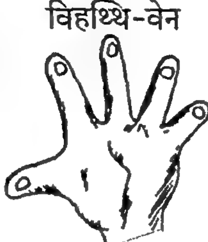


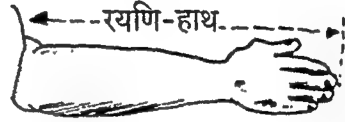




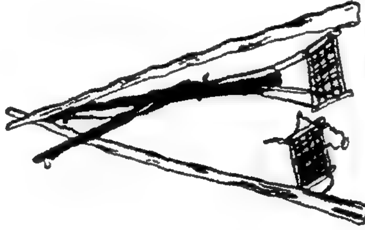




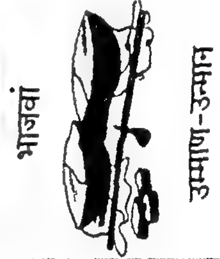




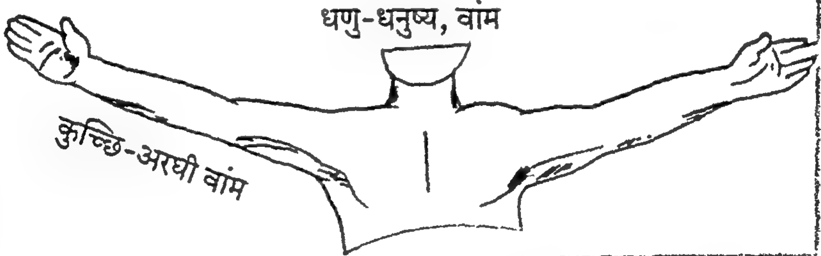
२ घोडी-कांटो



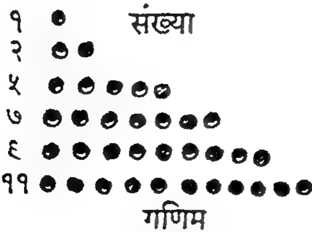




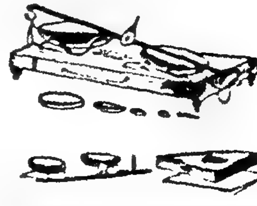
३ ओमाण-अवमान



४ पमाण-विभागनिष्फन्न

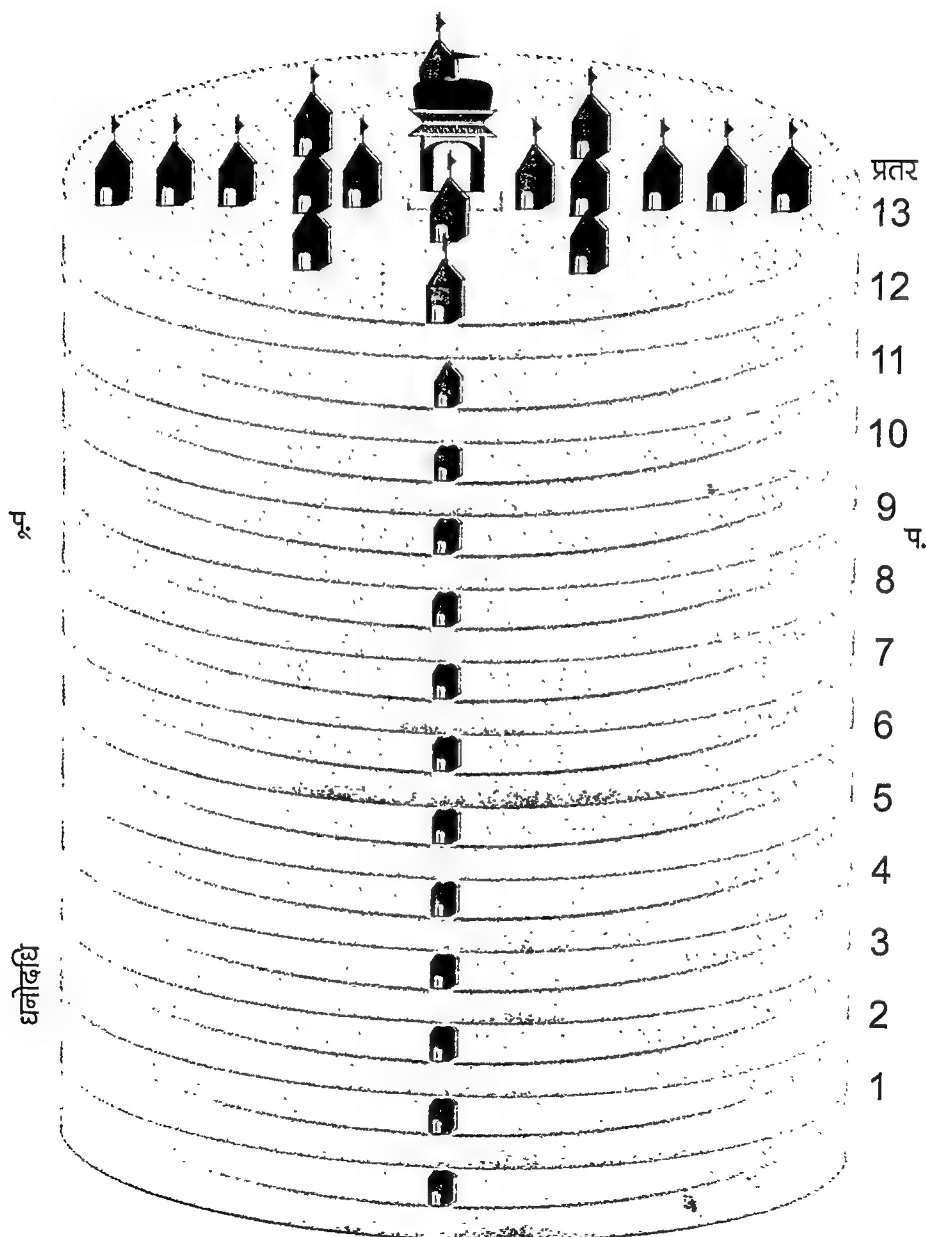


५ पडिमाण-प्रतिमान

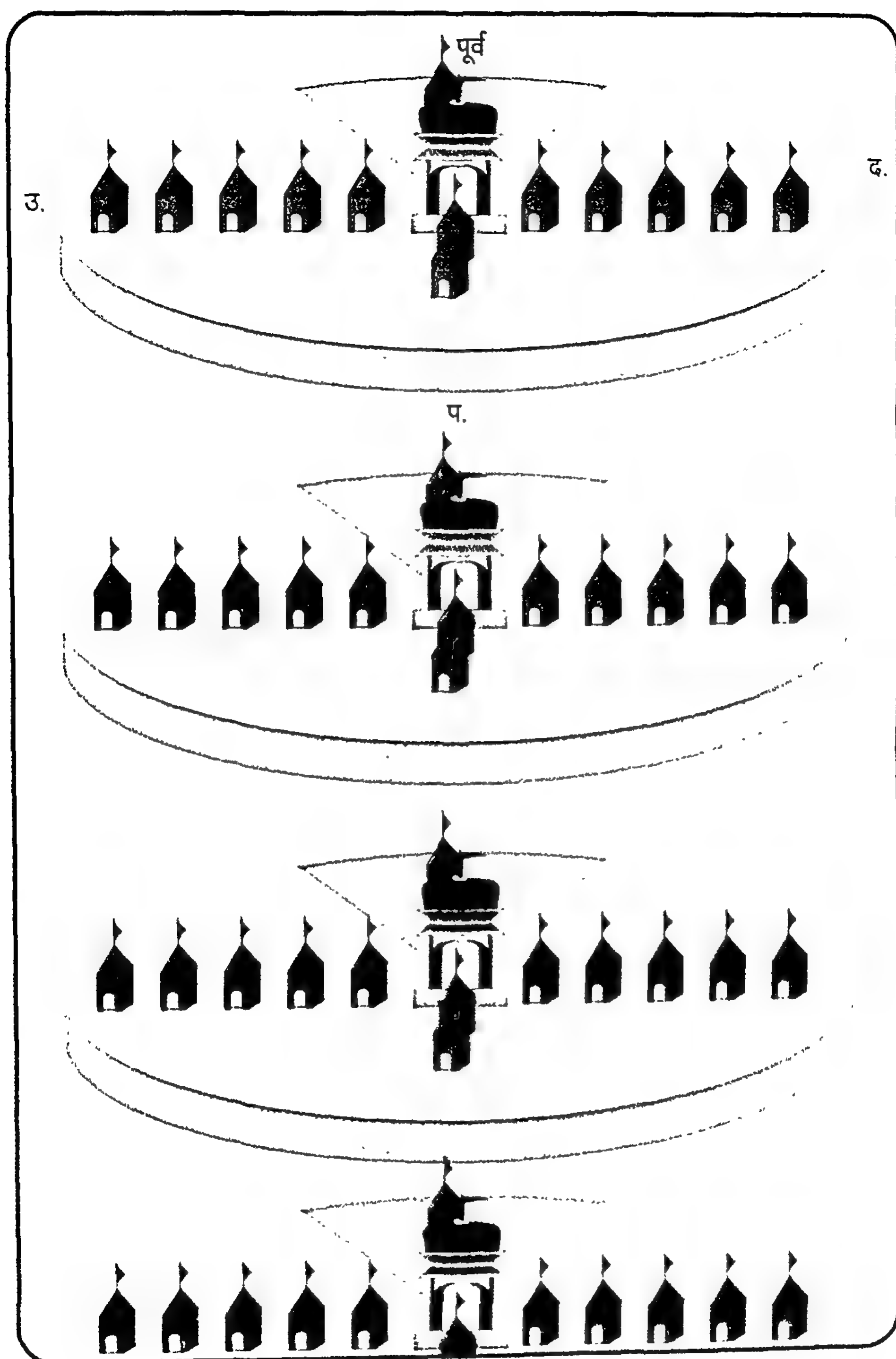


आधार-वृहत्संग्रहणी

सौधर्म कल्प के तेरह प्रतरों का दृश्य

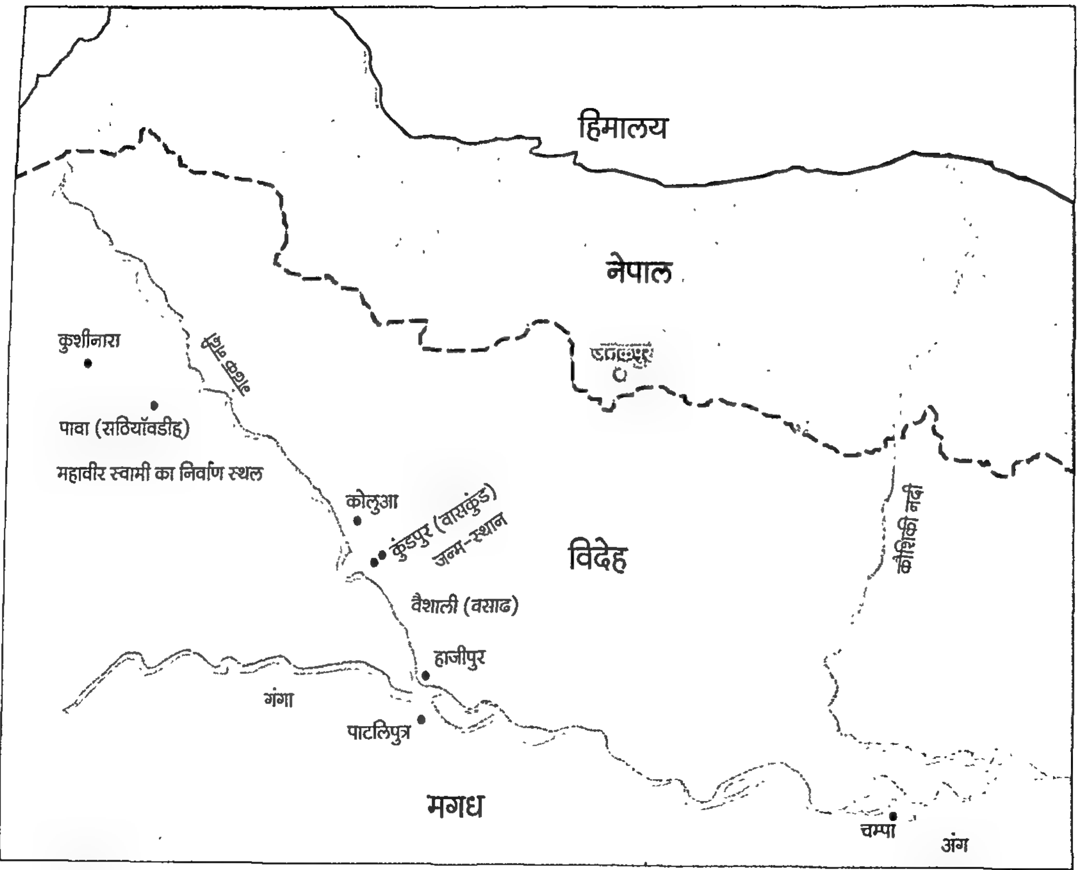


आधार - वृहत्संग्रहणी



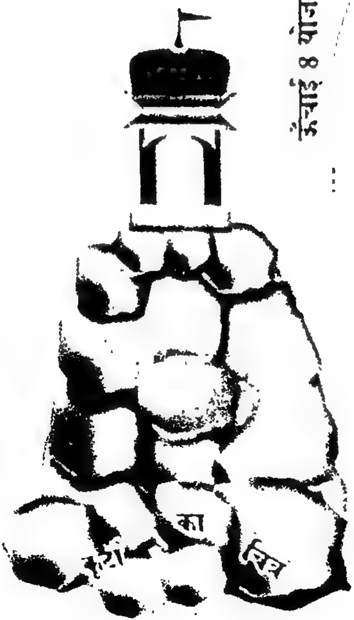
वैमानिक निकाय के प्रतरों का दूरवर्ती दर्शन

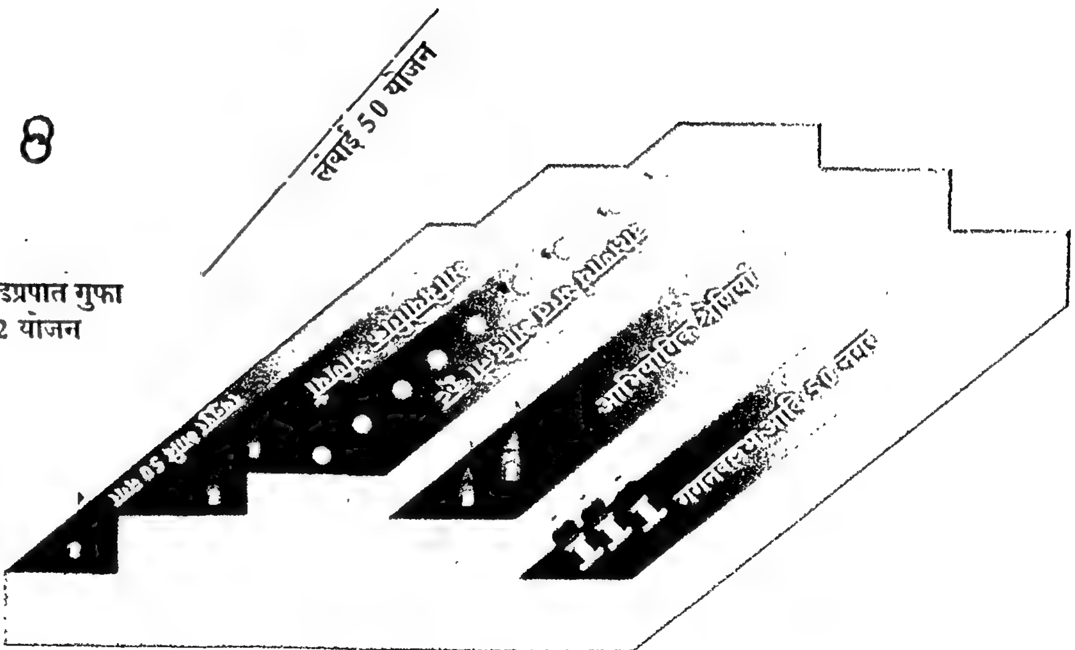
आधार – बृहत्संग्रहणी



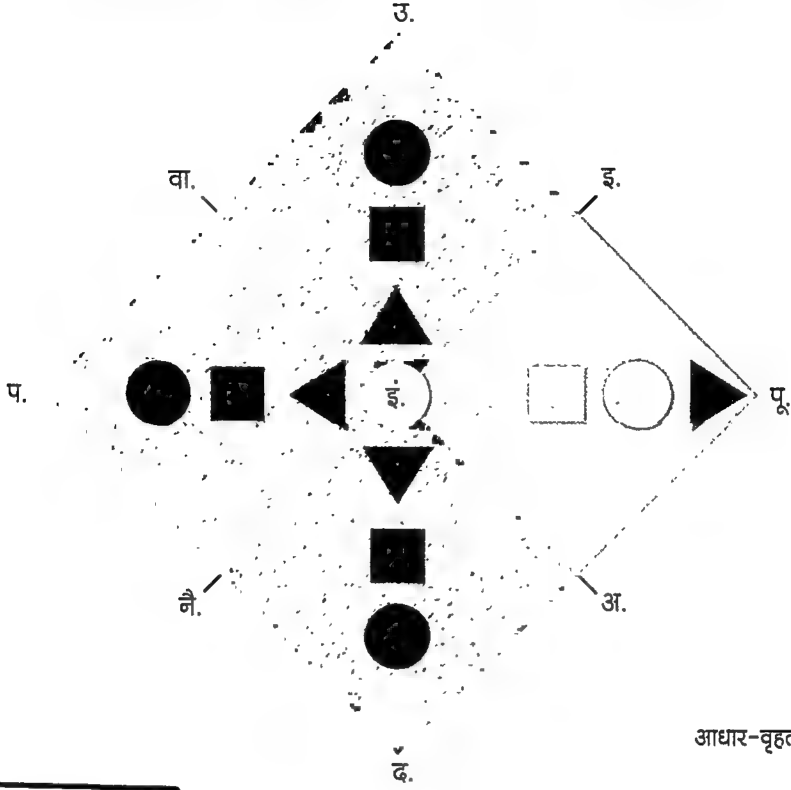
आधार – श्रमण भगवान महावीर

पुरातत्ववेत्ता श्री पुण्यविजय जी


ऊँचाई 8 योजन

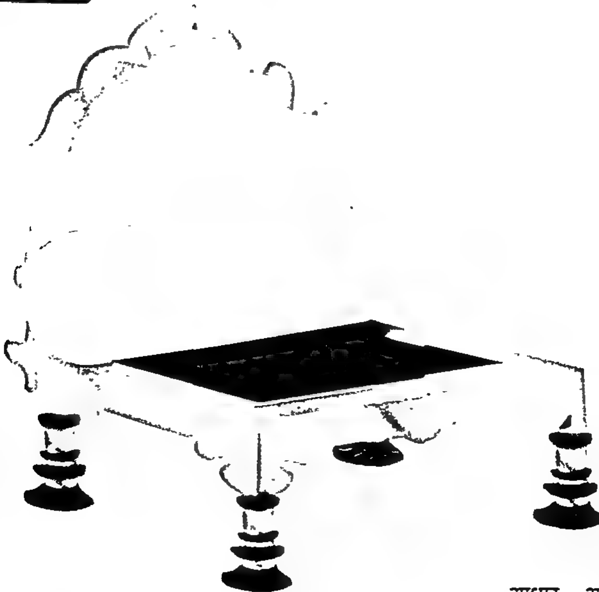

लंबाई 50 योजन
तमिस्त्र व खण्डप्रपात गुफा
चौड़ाई 12 योजन

आवलिया पविट्ठ – आवलिकाबंध विमान



आधार–वृहत्संग्रहणी

भद्रासन



आधार – अर्द्धमागधी शब्दकोष







विमाण-विमान

उ.

पुष्पावकीर्ण विमान

आ. वि.

पु. वि.

आ. वि.

आवलिकाबध वि.

प.

इ.

पू.

पु. वि.

आ. वि.

पुष्पावकीर्ण विमान

आधार-वृहत्संग्रहणी

द.

विमान अर्थात् वैमानिक देवताओं के निवास स्थान :- वे निवास स्थान दो तरह से रहे हुए है । एक पुष्पावकीर्ण है (जो बिखरे हुए फुलों के आकार में है) और दूसरे आवलिक अर्थात् पंक्तिबद्ध है, पंक्तिबद्ध विमानों की आकृति तीन प्रकार की होती है- 1. गोल, 2. त्रिकोण, 3. चतुष्कोण है। गोल में एक दरवाजा, त्रिकोण में तीन दरवाजे और चतुष्कोण में चार दरवाजे है- गोल विमान में चारों तरफ कंगुरे वाला कोट है। त्रिकोण विमान के दो तरफ कोट और एक तरफ वेयड़ा (पद्मवर वेदिका) है, चतुष्कोण विमान के चारों तरफ वेदिका है।

वृत्त वैताढ्य

पंडक वन

उपरि तन कांड ३६००० योजन ऊँ . सर्वथा जम्बूनद मय

सौमनस वन

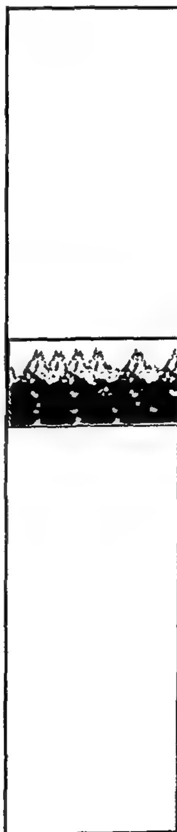
मध्यम कांड ६३००० योजन ऊंचा, ४ प्रकार का है अंक रत्न मय स्फटिक मय स्वर्ण मय, रजत मय

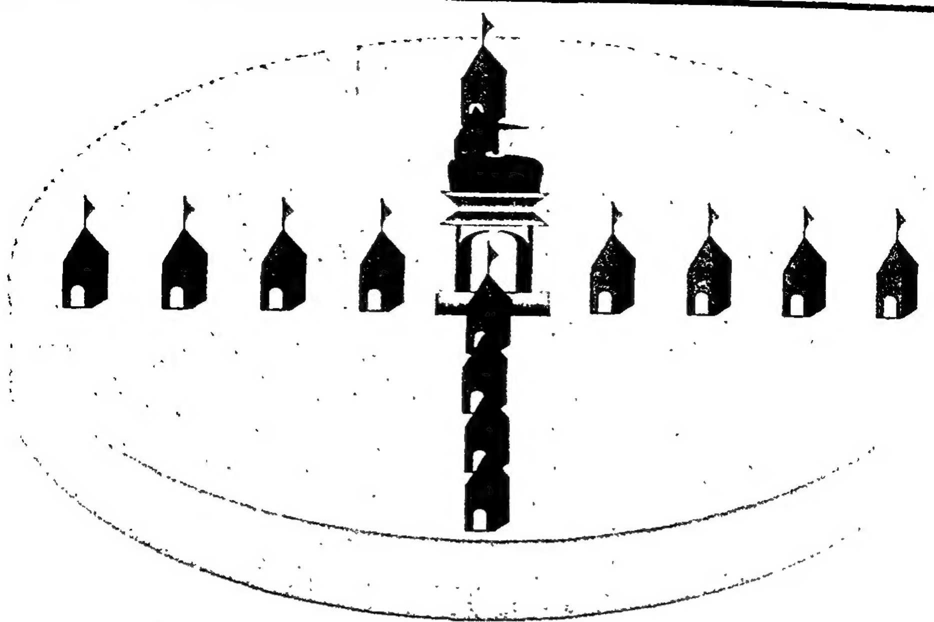
नन्दन वन

भद्रसाल वन

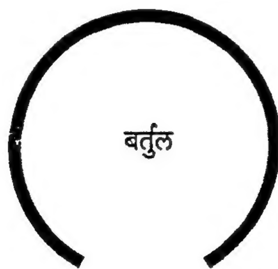
अधरत्तन कांड १००० योजन जमीन में गहरा, ४ प्रकार है पृथ्वी (मृतिका रूप), उपल-पाषण रूप, वज्र-हीर - कमय, शर्करा - कडकर रूप



















वैमानिक निकाय का प्रतर १
(वैमानिक निकाय का आवलिका-श्रेणिबद्ध तथा पुष्पावकीर्ण विमान युक्त प्रतर)

आधार - वृहत्संग्रहणी

